प्रथमावृत्तिकी भूमिका ।

सबसे प्रथम, सकल कलाओं के भण्डाररूप इस अखिल संसार के सृजनहार एवम् समस्त कलाओं के केन्द्ररूप तथा अनुपम, अव्यक्त, अद्वितीयादिक अनन्त विशेषण विशिष्ट पूर्ण ब्रह्म परमात्मा को सानुनय कोट्यानुकोटि अभिवंदन करता हूं कि जिसके कृपाकटाक्षसे यह **कलाविलास** नामक पुस्तक, अपनी कलाओं की कान्ति को विस्तृत करता हुआ जगत् में प्रकाश को प्राप्त हुआ ।

इसके अनन्तर इसकी रचना और प्रागट्य का हेतु वर्णन करना आवश्यक समझता हूं।

विक्रमीय सम्वत् १९४७ में मैं अजमेर नगर के 'राजस्थान समाचार' नामक पत्र के कार्यालय में नियुक्त था । उस समय परिवर्त्तन में आनेवाले भिन्न २ भाषाओं के समाचारपत्र देखने का सुअवसर मुझे उपलब्ध हुआ । मैं यथावकाश सबही भाषा के पत्रों को यत्किञ्चित् अवश्य देखा करता था । एक दिन दौलत बाग में बैठा हुआ गुजराती भाषा का 'गुजराती' नामक पत्र देख रहा था कि उस में विषयानुक्रमणिका सहित 'कलाविलास' का विज्ञापन मेरे दृष्टिगोचर हुआ । विषयसूची ने मेरे चित्त पर ऐसा प्रभाव डाला कि तुरन्त पुस्तक मंगा भेजा । जब मुझ को गुजराती कलाविलास प्राप्त हुआ, मैं ने बड़ी अभिरुचि के साथ आदिसे अन्त तक उस का अवलोकन किया । जैसे २ आगे पढता जाता था वैसे २ ही उसे विशेष उपयोगी, विनोदकारक और उपदेश से परिपूर्ण पाता था । जितने हिन्दी भाषा के पुस्तक मेरे दृष्टिगोचर हुए हैं उनमें से किसी में यह लटका मैं ने नहीं पाया । इस में १४ सर्ग इस प्रकार से हैं—पहला सर्ग दम्भ विषयक, दूसरा लोभ विषयक और तीसरे में स्त्री का वर्णन है । चौथे सर्ग में वेश्या का वर्णन है । पांचवें में कायस्थ, दारिद्री और कुमार्ग की कलाओं का निदर्शन है । छठे सर्ग में मद (अभिमान) का निदान और उत्पत्ति की कथा है । सातवें सर्ग में गायक का वर्णन किया है । आठवां सर्ग सुनार की चालाकी से भरा है इस में सोना तोलना, गलाना, कसोटी आदिका भेद खोला गया है । नवें सर्ग में तीन साहूकारों (चोरों) की कथा लिखी है अर्थात् चोर, व्यभिचारी और शराबी इन तीनों की कपटकलाओं की चर्चा छेड़ी गई है । दीवान के चरित्र और उस के भले बुरे कामों का वर्णन दसवें सर्ग में किया है ।

ग्यारहवें सर्ग में भांति २ के ६४ धूर्तों का वर्णन किया है कि जिस का जानना प्रत्येक मनुष्य के लिये अत्यन्त आवश्यक है । बारहवें सर्ग में सद्गृहस्थ और सुगृहिणी के आचरण करने के योग्य, उत्तम कलाओं का कथन किया है। तेरहवें सर्ग में १४ विद्या, ६४ कला, बहत्तर कला आदि के नाम लिखकर उन का निरूपण किया है। और चौदहवें सर्ग में शिष्टजनसम्मत और शास्त्र के अनुकूल विविध कलाओं का वर्णन किया है । सब के अन्तमें सर्वोत्तम कला लिखी गई है कि जो सर्व मतसम्मत और मनोवाञ्छित फल की देने वाली है।

इस पुस्तकमें १४०० कलाओं के नाम दिये हैं। मूल संख्या १५०१ है, किन्तु बहुतसे नाम दुहराए गये हैं; तथा बहुतसी कलाएं दूसरी के अन्तर्गत समझे जाने के योग्य होने से सब मिलकर इस में १४०० कलाओं का समावेश हुआ है। इस ग्रन्थ में कलारूप से जो प्रविष्ट किया गया है सो कहीं हुनर रूपसे, कहीं चतुराई की रीतिसे, कई एक स्थलों में धर्म लक्षण रूप से और कई जगह छल-प्रपंच रूप से व्यवहृत किया गया है। इस में की बहुतसी कलाएं स्पष्ट समझी जा सकती हैं उन पर टिप्पण करना व्यर्थ है; परन्तु कई एक समझाने के योग्य कलाओं का विवरण करादिया है तिस पर भी कई एक ऐसी हैं कि आवश्यकता होने पर भी ग्रन्थ विस्तार के भय से रह गई हैं। तथा बहुतसी कलाओं का भेद नहीं खुला परन्तु सर्व साधारण से इच्छित सहायता मिलेगी तो द्वितीयावृत्ति में समस्त त्रुटि का अभाव करने का प्रयत्न किया जायगा।

इस में स्त्री और वेश्या का वर्णन आया है वह ग्लानिकारक होने के बदले उपदेशजनक और परम उपयोगी है। इस पुस्तक में कई एक जातियों पर आक्षेप किया हुआ दृष्टिगोचर होगा परन्तु इस से किसी को दुःख नहीं मानना चाहिये, क्यों कि जिस समय मूल ग्रन्थ लिखा गया था उस समय ऐसे ही गुण लक्षणोंवाले लोग होंगे।

मूल संस्कृत ग्रन्थ के साथ मिलान करने पर यह अनुवाद नितान्त नवीन ढंग से लिखा गया विदित होगा; क्यों कि गुजराती ग्रन्थकर्त्ता ने इस में यथेच्छ परिवर्त्तन कर इसे सर्व कलासम्पन्न कर दिया है। एतदर्थ मैं ने स्थल विशेष पर किञ्चित् हेरफेर और कहीं २ टिप्पण किया है।

सम्वत् १९४८ के आषाढ मास में 'क्षत्रियहितोपदेशक' संज्ञक मासिकपत्र के सम्पादन के लिये गुराया नामक स्थान में जाने का अवसर आया। वहां,

क्षत्रियधर्मपरायण चहुआन चूडामणि क्षत्रियकुमार श्रीयोधसिंहजी वर्मा धीरवीर के आश्रय में कार्तिक मास पर्यन्त निवास हुआ। उस अवसर पर मैं ने यह अनुवाद प्रस्तुत किया, किन्तु कई एक कारणों से—विशेष कर हिन्दी भाषा की दुर्दशा एवम् एतद्देशियों की अरुचि देखकर इसे प्रकाशित करने का साहस नहीं होता था तत् पश्चात्, २ वर्ष व्यतीत हो गये परन्तु इस के मुद्रण संस्कार का अवसर नहीं आया। इस बीच में एक बार ऐसा दृढ़ निश्चय किया था कि इस को मुद्रित करवा देना चाहिये परन्तु फिर भी मनोरथ सफल नहीं हुआ।

कई एक विद्वान् और अपने इष्ट मित्रों से इस पुस्तक की चर्चा करने पर मेरे कुम्हलाये हुए चित्त में कुछ २ उत्साहरस का संचार होने लगा। एक समय परमप्रवीण सज्जनेन्दु श्री पं० किसन लालजी महोदय के साथ इस विषय में पत्र व्यवहार हुआ। उक्त महोदयने इस का खर्डा मंगाकर अवलोकन करने के अनन्तर मुद्रित करवाने का विचार प्रगट किया। इन के अनुरोधसे मैं ने इस की शुद्ध प्रति लिखने का आरम्भ किया किन्तु व्याधिवश होजाने से फिर भी कुछ नहीं कर सका। निदान गत माघ मास में, भगवद्भक्तिपरायण वैश्य—कुल—भूषण सेठ साहब श्री गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजी का कृपापत्र प्राप्त कर कल्याण आया। यहां पर श्रीसेठ साहब ने अपने यंत्रालय में संशोधक के कार्य का भार सौंपा। इस अवसर पर उक्त पंडितजी ने इस के प्रकाशन का सर्व प्रबंध कर परम उपकार किया जिस को मुक्तकण्ठ से स्वीकार कर शतशः धन्यवाद देता हूं।

गुजराती पुस्तक का अनुवाद करने की आज्ञा प्राप्त कराने के कारण मुम्बई निवासी रा० रा० पंडित ॐकारलालजी शर्मा तथा गुजराती क० वि० के कर्त्ता रा० रा० इच्छारामसूर्यरामजी देसाई अनेकानेक धन्यवाद के पात्र है कि जिन की कृपा से आज भारत की हिन्दी भाषा जानने वाली प्रजा को इस सम्पूर्ण पुस्तक को आनन्दानुभव करने का अवसर मिला। अब यदि पाठकवर्गने एक बार भी अद्योपान्त इस का अवलोकन कर कुछ भी लाभ उठाया तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूंगा।

ग्यारहवें सर्ग में भांति २ के ६४ धूर्तों का वर्णन किया है कि जिस का जानना प्रत्येक मनुष्य के लिये अत्यन्त आवश्यक है। बारहवें सर्ग में सद्गृहस्थ और सुगृहिणी के आचरण करने के योग्य, उत्तम कलाओं का कथन किया है। तेरहवें सर्ग में १४ विद्या, ६४ कला, बहत्तर कला आदि के नाम लिखकर उन का निरूपण किया है। और चौदहवें सर्ग में शिष्टजनसम्मत और शास्त्र के अनुकूल विविध कलाओं का वर्णन किया है। सब के अन्तमें सर्वोत्तम कला लिखी गई है कि जो सर्व मतसम्मत और मनोवाञ्छित फल की देने वाली है।

इस पुस्तकमें १४०० कलाओं के नाम दिये हैं। मूल संख्या १९०१ है, किन्तु बहुतसे नाम दुहराए गये हैं; तथा बहुतसी कलाएं दूसरी के अन्तर्गत समझे जाने के योग्य होने से सब मिलकर इस में १४०० कलाओं का समावेश हुआ है। इस ग्रन्थ में कलारूप से जो प्रविष्ट किया गया है सो कहीं हुनर रूपसे, कहीं चतुराई की रीतिसे, कई एक स्थलों में धर्म लक्षण रूप से और कई जगह छल—प्रपंच रूप से व्यवहृत किया गया है। इस में की बहुतसी कलाएं स्पष्ट समझी जा सकती हैं उन पर टिप्पण करना व्यर्थ है; परन्तु कई एक समझाने के योग्य कलाओं का विवरण करादिया है तिस पर भी कई एक ऐसी हैं कि आवश्यकता होने पर भी ग्रन्थ विस्तार के भय से रह गई हैं। तथा बहुतसी कलाओं का भेद नहीं खुला परन्तु सर्व साधारण से इच्छित सहायता मिलेगी तो द्वितीयावृत्ति में समस्त त्रुटि का अभाव करने का प्रयत्न किया जायगा।

इस में स्त्री और वेश्या का वर्णन आया है वह ग्लानिकारक होने के बदले उपदेशजनक और परम उपयोगी है। इस पुस्तक में कई एक जातियों पर आक्षेप किया हुआ दृष्टिगोचर होगा परन्तु इस से किसी को दुःख नहीं मानना चाहिये, क्यों कि जिस समय मूल ग्रन्थ लिखा गया था उस समय ऐसे ही गुण लक्षणोंवाले लोग होंगे।

मूल संस्कृत ग्रन्थ के साथ मिलान करने पर यह अनुवाद नितान्त नवीन ढंग से लिखा गया विदित होगा; क्यों कि गुजराती ग्रन्थकर्त्ता ने इस में यथेच्छ परिवर्तन कर इसे सर्व कलासम्पन्न कर दिया है। एतदर्थ मैं ने स्थल विशेष पर किञ्चित् हेरफेर और कहीं २ टिप्पण किया है।

सम्वत् १९४८ के आषाढ मास में 'क्षत्रियहितोपदेशक' संज्ञक मासिकपत्र के सम्पादन के लिये सुराया नामक स्थान में जाने का अवसर आया। वहां,

क्षत्रियधर्मपरायण चहुआन चूडामणि क्षत्रियकुमार, श्रीयोधसिंहजी वर्मा धीरवीर के आश्रय में कार्तिक मास पर्यन्त निवास हुआ। उस अवसर पर मैं ने यह अनुवाद प्रस्तुत किया, किन्तु कई एक कारणों से—विशेष कर हिन्दी भाषा की दुर्दशा एवम् एतद्देशियों की अरुचि देखकर इसे प्रकाशित करने का साहस नहीं होता था तत् पश्चात्, २ वर्ष व्यतीत हो गये परन्तु इस के मुद्रण संस्कार का अवसर नहीं आया। इस बीच में एक वार ऐसा दृढ़ निश्चय किया था कि इस को मुद्रित करवा देना चाहिये परन्तु फिर भी मनोरथ सफल नहीं हुआ।

कई एक विद्वान् और अपने इष्ट मित्रों से इस पुस्तक की चर्चा करने पर मेरे कुम्हलाये हुए चित्त में कुछ २ उत्साहरस का संचार होने लगा। एक समय परमप्रवीण सज्जनेन्दु श्री पं० किसन लालजी महोदय के साथ इस विषय में पत्र व्यवहार हुआ। उक्त महोदयने इस का खर्डा मंगाकर अवलोकन करने के अनन्तर मुद्रित करवाने का विचार प्रगट किया। इन के अनुरोधसे मैं ने इस की शुद्ध प्रति लिखने का आरम्भ किया किन्तु व्याधिवश होजाने से फिर भी कुछ नहीं कर सका। निदान गत माघ मास में, भगवद्भक्तिपरायण वैश्य—कुल—भूषण सेठ साहब श्री गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजी का कृपापत्र प्राप्त कर कल्याण आया। यहां पर श्रीसेठ साहब ने अपने यंत्रालय में संशोधक के कार्य का भार सौंपा। इस अवसर पर उक्त पंडितजी ने इस के प्रकाशन का सर्व प्रबंध कर परम उपकार किया जिस को मुक्तकण्ठ से स्वीकार कर शतशः धन्यवाद देता हूं।

गुजराती पुस्तक का अनुवाद करने की आज्ञा प्राप्त कराने के कारण मुम्बई निवासी रा० रा० पंडित ॐकारलालजी शर्मा तथा गुजराती क० वि० के कर्त्ता रा० रा० इच्छारामसूर्यरामजी देसाई अनेकानेक धन्यवाद के पात्र हैं कि जिन की कृपा से आज भारत की हिन्दी भाषा जानने वाली प्रजा को इस अपूर्व पुस्तक को आनन्दानुभव करने का अवसर मिला। अब यदि पाठकवर्गने एक वार भी अद्योपान्त इस का अवलोकन कर कुछ भी लाभ उठाया तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूंगा।

शीघ्रता, अनवकाश, विघ्नों का आधिक्य (कि जिन का लिखना प्रयोजनरहित है) और असुविधादि कारणों से जो कुछ न्यूनाधिक रहा हो उसे विद्वज्जन सुधार कर पढ मुझे कृतकृत्य करें यह विनती है।

द्वितीयावृत्ति की भूमिका।

आज १६ वर्ष पीछे इस की द्वितीयावृत्ति का सुअवसर प्राप्त हुआ है, यह भी उसी जगत्पिता की इच्छा है. परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, हिन्दी प्रेमियोंने, आशा से अधिक इस को पसन्द किया. मांगपर मांग आने से इस की पुनरावृत्ति; आज से कई वर्ष पहले होचुकी होती, परन्तु कई एक अवर्णनीय बाधक कारणों से ऐसा नहीं होसका, अब इस की द्वितीयावृत्ति श्री परम मान्य सेठ **खेमराजजी श्रीकृष्णदास**जी अध्यक्ष "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस बम्बई, निज अधिकारसे छापकर प्रकाशित कर कलाविलास के प्रेमी पाठकों को भेंट करते हैं. यदि यह आवृत्ति हाथों हाथ बिक जायगी तो मैं अपने परिश्रमको सफल समझूंगा. यद्यपि इस बार इस पुस्तकको पुनर्वार लिखने (re-write) की आवश्यकता थी, और प्रथमावृत्ति की भूमिका में ऐसा करनेका उल्लेख भी किया गया था, तथापि मेरी अस्वस्थता आदि कारणोंसे ऐसा नहीं होसका सो आशा है कि उदार पाठक मुझे क्षमा करेंगे ।

पाण्डे रामप्रताप स्वर्ग.

भाद्रपद सुदी ३ सं० १९६६. रतलाम

सहस्र कला प्रदर्शन ।

वणिक् कला ६४ । स्त्री जातिकी ९२ कला । वेश्याकी ६४कला । गणिका की ३६ कला । कायस्थकी १६ कला । दरिद्रीकी १२ कला । जुआरीकी १६ कला । मदकी ३२ कला । गवैयेकी १२ कला । सुनारकी ६४ कला । चोरकी ३६ कला । मद्यपकी १६ कला । कामी पुरुषकी ६४ कला । दीवानकी १६ कपट कला तथा १६ सत्य कला । धूर्त्तकी ६४ कला । सच्चरित्रशीला स्त्रीकी ६४ कला । स्त्रियोंकी दूसरी ६४ कला । गृहस्थकी २९ कला । विद्याकी १४ कला । अर्थकी ६४ कला । अर्थकी ७२ कला । अर्थकी ७६ कला । स्वात्मबुद्धिकी ९ कला । शुक्राचार्यकी ६४ कला । विशेष ७२ कला । तीसरे प्रकार की ७२ कला । स्त्रीकी ६४ कला । स्त्रियोंकी दूसरी ६४ कला । धर्मकी ६४ कला । योगकी २२ कला । विशेष १० कला । सत्पुरुष निर्मित १०० कला अमर कला १ । सब कला १५०१ ।

कलाविलासकी अनुक्रमणिका ।

विषय. पृष्ठ.

विषय. पृष्ठ.

॥ श्रीः ॥

प्रथम सर्ग।

नगर वर्णन।

जहां मणिमय भूमिमें प्रतिविम्ब रूप पडी हुई मोतियों की मालाएं नगर की हवेलियों के धारण करने के लिये अनेक रूप कर आए हुए शेष-नाग की नाई शोभा दे रही थीं; जहां, रात्रिरूपी ललना के अंधकार रूप कृष्णवस्त्र को हरण करनेवाले लुटेरे सदृश, मंदिरों में जटित स्फटिक मणियों-की कांति का समूह अभिसारिकों को विघ्नकारक होता था; जहां शंकर के तृतीय नेत्र की ज्वाला से भस्म हुआ कामदेव, उस नगर—निवासिनी ललित ललनाओं के मुख की कान्ति रूप अमृत का पान करके अमर होगया था, जहां, सुरत संग्राम में शिथिल हुई ललनाओं के सुन्दर प्रस्वेदके जलविन्दुओंके कारण से शीतल भान होता हुआ पवन, सुरत संग्राम के कारण कांताओं के बिथुरे हुए केशों में टंगे हुए पुष्पों के प्रसंग से, अति सुगंध युक्त बहता था जहां, कमलके वनमें नवीन कमलांकुर खाने से कलहंसका मधुर कल रव लक्ष्मी के चरण में के झनझनाहट करते हुये नूपुर की नाईं चहुं ओर फैल जाता था; जहां, मुग्ध मयूर नृत्य करते थे ऐसी स्नानभूमियां इन्द्रायुध और वृष्टि से छाई हुई मूर्त्तिमती वर्षाऋतुके सदृश भान होती थीं; जहां, सुधाकर की मयू-खावलि से छाए हुए स्फटिक—मणिमय मंदिरोंमें खडी हुई प्रमदाएं क्षीर समुद्र की श्वेत तरङ्गों में से प्रगट होती हुई अप्सराओं की नाईं शोभा देती थीं; वहां, लक्ष्मी के सुन्दर आलिंगन से मंगल का मंदिर रूप, रत्नों के कारण से अति उज्वल ऐसा श्रीकृष्ण के वक्षस्थल की नाईं, लक्ष्मी की अपार समृद्धि को

---

१ नवनायिकाओं में से वह एक जो स्वयम् पति के पास जाती है ॥

लिये मंगल के मंदिर सदृश और रत्नादि विविध पदार्थों के लिये देश देशान्तर में अति प्रसिद्ध एक विशाल नगर था । नगर में अनेक मायावी धूर्त्तों को पराजित करने वाला और सकल कलाओं में अति प्रवीण मूलदेव नामक एक धूर्त्त शिरोमणि रहता था । इस धूर्त्तराट् के पास बहुतसे धूर्त्त देश देशान्तर से धूर्त्त-विद्या सीखने के अर्थ आया करते थे । मूलदेव ने अपने अनुपम गुण के प्रतापसे चक्रवर्तीकी नाईं अपार द्रव्य संग्रह किया था ।

प्रस्तावना ।

एक समय वह मूलदेव भोजनानन्तर अपने मित्र—मण्डल के साथ सभा में विराजमान था ऐसे समय में हिरण्यगुप्त नामक एक धनिक अपने चंद्रगुप्त नामक पुत्र को लेकर उस की सभामें उपस्थित हुआ । उस धनिक ने आते ही अनेक बहुमूल्य मणिमाणिक तथा पुष्कल सुवर्ण उस को भेंटकर प्रणाम किया मूलदेव ने उस धनिक को आसन देकर भलीभांति सत्कार किया । तदनन्तर दो घटिका विश्राम करके हिरण्यगुप्त विनय से मस्तक नमाकर मूलदेव को इस प्रकार कहने लगा:—

सकल कला में निपुण और सम्पूर्ण विद्यासंपन्न महाराज ! अल्प-परिचय युक्त मेरी प्रतिभाशून्य वाणी, नगरनारीके चातुर्य के सन्मुख जिस प्रकार ग्रामीण स्त्री का चातुर्य्य नहीं चलता ऐसेही आप के सन्मुख चतुराई भरी नहीं गिनी जायगी परन्तु जो आप सारग्राही हैं इसलिये जो कुछ मैं निवेदन करता हूं उस में से सार २ को आप ग्रहण कर लीजिये । आपकी विशाल-बुद्धिका ऐसा प्रभाव है कि जिसके आगे बृहस्पति की बुद्धि भी पानी भरती है । भगवान् अंशुमालिन् की किरणें जिस प्रकार दिशा विदिशाओं को प्रकाशित करती हैं वैसे ही आपकी बुद्धिका प्रसार हमारी आशा को उत्तेजित करता है । मैं ने अपने जन्म दिन से लेकर अद्यपर्यन्त अनेक मणि मोती तथा सुवर्ण के भंडार भर कर धरे हैं और अपनी अन्तिम अवस्था में केवल यही एक पुत्ररत्न मुझ को लब्ध हुआ है । आप जानते हैं कि बाल्यावस्था मूर्खता का एक बड़ा स्थान है । एवम् तरुणावस्था अतिशय

उन्मादकारिणी है। और द्रव्यके बडे २ भंडार, पवन के कारण से चलायमान कमलपत्र पर लगे हुए जल की नांई चंचल हैं। ऐसे धनके भरपूर भंडार को नष्ट होते विलम्ब नहीं लगता, क्योंकि जहां धन होता है वहां मृगनयनी प्रमदाएं तरुण के मन को मोहकी फांसी में डालती हैं और धूर्त्त लोग जैसे भ्रमर कमल को चूसलेते हैं वैसेही धनपात्र को चूसकर निर्धन कर छोडते हैं—वे अनेक उपायों से धनवान को लूटते हैं। ये ऊपर दर्शाई हुई आपत्तियाँ एक दिन मेरे इस प्रिय पुत्र पर भी अवश्य आवेंगी कारण कि धूर्त्त लोग लक्ष्मीवान के घर में उत्पन्न हुए मूर्ख लड़कों को अपने हाथके गेंद की नाईं समझ, नाना प्रकार के छंदों में फंसा कर उन को उलटे सीधे गोते देते हैं। तथा, वेश्याएं उन्हें अपने चरण में के नूपुर की मणिवत् बनाकर अपने अधीन कर छोडती हैं, अतएव धनवान के पुत्र को एक भी अंकुश नहीं। जिस भांति देश और शत्रु से अज्ञात, पक्षी के बच्चे पूरा चलना न सीखने परभी, मुखके स्वादके कारण लडखडाते हुए आगे चलते हैं और उनको बिलाव खाजाते हैं। वैसेही देशकाल से अजान, चपल मुखवाले, धनवानों के सन्तान, शक्तिहीन होने परभी आगे जाने का साहस कर बाहर निकलते हैं और उन को धूर्त्त लोग लूट खाते हैं। ऐसे २ संकटों में से इस भोले बालक को पार उतारने के लिये आप की शरण में लाया हूँ अतः आप इस को अपना आश्रित मानिये और यह इस संसार में किसी से न ठगा जाय ऐसा सावधान इसे कीजिये यही इस दास की विनती है।

मूलदेव ने, इस धनिक के कथन को उचित समझ कर अपने ओष्ठों की ललाई से लाल किरणें फैलाते हुए प्रेम से कहा--"साहजी! आपका पुत्र मेरे घर में मेरे पुत्र की भांति भले ही रहे। मैं शनैः २ इस कुमार को सम्पूर्ण कलाओं का रहस्य ऐसा समझाऊंगा कि यह धूर्त्तसम्राट् से भी न ठगावेगा, समग्र कलाओं का अंजन ऐसा आंजूंगा कि किसी प्रकार से यह धोखा न खावेगा।"

मूलदेव के इस प्रकार के वचन श्रवण कर बुद्धिशाली हिरण्यगुप्त अपने प्रिय पुत्र चन्द्रगुप्त को वहीं छोड कर और मूलदेव को प्रणाम कर अपने घर को विदा हुआ।

रात्रि-वर्णन ।

जैसे धूर्तों से पराजित किया हुआ तेजहीन जुआरी अपने वस्त्र छोड़कर भाग जाता है वैसेही किरणों के मन्द होने से धूसरे रंग का दृष्टि पड़ता सूर्य गगनमण्डल में धीरे २ अस्त होगया । सूर्य्याऽस्त होने के पश्चात् अन्धकार रूप हस्ती पर आरूढ होकर सिन्दूर पूर्ववत् लाल रंग की सन्ध्या देवी प्रकाशने लगी—सूर्य्य, दिनप्रभा देवी का सदा त्याग करता था तो भी वह उस के पीछे २ जाती थी, परन्तु रक्ता होते भी सन्ध्या देवी अपने पति—सूर्य के पीछे नहीं गई । स्त्रियों के हृदय की बात कौन जान सकता है ? ज्योंही सन्ध्या देवी आकाशमण्डल से आई हुई, कमल की वाटिका में, धीरे २ आसक्त होगई (सन्ध्याकाल ज्योंही अस्त होने को हुआ और उसकी केवल लाल झांखी पड़ने के पश्चात्) त्योंही भ्रमर जैसा काला, निराधार बना हुआ अंधेरा विकल की नाईं इतस्ततः भटकने लगा—चहुं ओर फैल गया, सूर्य भगवान का विरह होने से पृथ्वी देवी अन्धकार रूप मोह में मग्न हो गई । चाहे जैसा प्रचण्ड—क्रूर पति हो तब भी जब वह विदेश जाता है तब स्त्री को अत्यन्त वल्लभ हो जाता है तो पृथ्वी को सूर्य के विरह का दुःख हो इस में क्या आश्चर्य ? तदनन्तर, बहुतसे श्वेत रंग के तारा गण रूप मोतियों की मालाओं से शृंगार की हुई और सदा के परिचय में आये हुये अंधेरे रूप मोरपिच्छ का आभूषण धारण करने से मोती की माला और मयूरपिच्छ का आभूषण पहनने वाली भिल्लनी के सदृश दृष्टि पड़ती हुई रात्रिदेवी झनझम ठमठम पग धरती हुई पूर्ण बहार में प्रगट हुई । तत्पश्चात् विरहिनी स्त्री को अग्निवत् भान होता हुआ, कमल वन को जागृत करने में दूत जैसा शोभता हुआ और चक्रवाक् की स्त्री को दुःख उपजानेवाला चन्द्रमा धीरे २ उदय हुआ । कामदेव के श्वेत छत्र जैसा ज्ञात होता, दिशा रूप प्रमदा के स्फटिक मणि के दर्पण सदृश दिखाई पड़ता, रात्रि देवी के श्वेत तिलक जैसा शोभा देता, अपनी किरणावलि द्वारा कुमुदवन के साथ विलास करता, श्वेत कांतिवाला चन्द्र, आकाशगंगा के तट पर बैठे राजहंस की नाईं शोभायमान था ।

---

१ सन्दूर । २ रक्ता का अर्थ लाल है परन्तु यहां सन्ध्या को स्त्री ठहरा कर रक्ता का प्रेम वाली ऐसा श्लेष में अर्थ बताया है ।

उस चन्द्रमा के सम्बन्ध से श्याम रंगवाली रात्रि अत्यन्त शोभायमान् भान होती थी। रात्रिके सम्बन्ध से कामदेव एवम् कामदेवके प्रसंग से वसन्तोत्सव दीपने लगा। वसन्तोत्सव के कारण से मदाच्छादित अन्तःकरण में हर्षित होती हुई प्रमदाओं का मनोहर गान अत्यन्त रसीला जान पडता था। इस समय समृद्धि पर अपना कार्यभार चलानेवाले धूर्त्त भ्रमर कुम्हलाई कमलिनी को छोड विकसित कमलवन में आनन्द से प्रवेश करते थे। नक्षत्र रूप अस्थि की माला धारण करने से तथा चांदनी रूप श्वेत भस्म शरीर में रमानेसे, अस्थि की माला पहरनेवाली भस्म रमानेवाली और खप्पर को धारण करने वाली कापालिकी की नांई भान होती हुई रात्रि अपने हस्त में चन्द्रमण्डल रूप खप्पर लेकर प्रविष्ट हो गई थी अर्थात् पूर्णतया छागई थी।

अथ कलाऽरम्भ।

जब प्रौढता प्राप्त चंद्रमा की मनोहर मयूखावलि का शुभ्र प्रकाश सुंदर भुवनों पर बराबर होने लगा, तब स्फाटिकासन पर जिस प्रकार अपना प्यारा मित्र चन्द्रमा विराजमान था वैसेही मूलदेव महाराज भी अपने स्फाटिकासन पर विराजमान हुए और तुरन्तही कन्दलि आदिक उस के मुख्य शिष्य उनके पादपीठके आसपास आकर बैठ गए। तदनन्तर मूलदेव शंकासमाधानार्थ दूर देशागत अन्य धूर्त मनुष्यों का समाधान करने के पश्चात् लक्ष्मीपात्र के पुत्र चंद्रगुप्त की ओर दृष्टिपात करके—उस कुमारको भलीभांति देखकर अपनी दशनपंक्ति की श्वेत किरणावलीके कारणसे चंद्रिका को लज्जालीन करता हुआ बोला:—वत्स चन्द्रगुप्त! धूर्तों की कलाएं अत्यंतही कुटिल हैं, उन कलामात्र का रहस्य—भीतरका सार तुझको सिखाता हूं, सुन. जो तू उनका उत्तम अध्ययन करेगा तो प्यारे! तेरे दयालु पिता की शुभेच्छा पूर्णता को प्राप्त होगी, और तू किसीसे भी नहीं ठगाजायगा, तो भी इन मेरे पास से सीखी कलाओं का तू कदापि दुरुपयोग मत करना, क्योंकि ऐसा करनेसे अनेक अनर्थ होते हैं जैसे खड्ग हमारी रक्षा करता है अर्थात् शत्रुके प्राण लेता है वैसेही असावधानी रहनेसे हमको हानि पहुंचा सकता है। इसी प्रकार मेरी सिखाई हुई ६ कलायोंके द्वारा चोर, या, व्यभिचारी, स्मरण रख कि जो

---

१ शिवधर्म पालनेवाली जोगनियें। दक्षिण देशमें किसी २ जगह अबभी यह जाति वर्तमान है।

मनुष्य मुझसे कलाओंका अध्ययन करताहै उस कलानिपुण नरकी सेवा में वह लक्ष्मी भी, जो क्षणिक प्रेम रखनेवाली होनेके कारणसे जगत् में चपला के नामसे प्रसिद्ध है, स्थिर होकर रहती है ॥

दम्भवर्णन ।

इस संसार में अत्यन्त गहरा और निराधार एक बडा कूप है जोकि पत्तों और मिट्टी आदिसे ढंका हुआ है उस में मूर्ख पशु बारम्बार गिराकरते हैं । वह कुआ चंचल लक्ष्मीका अपार भंडारहै और स्वभावहीसे वह अनन्त गहराहै । इस विचित्र कूपके मुख के आस पास जगतमें बहुतसे कुटिल और क्रूर लोग घेरा डाल कर बैठे हैं । जिस का नाम दम्भ है. यह दम्भ कपटका गुप्तमित्र[१] है । मनवांछित वस्तुको प्राप्त कराने में इसका प्रभाव चिन्तामणि के तुल्य है और महिमा बढाने में यह एक अनुपम हेतु है । चंचल लक्ष्मी के वश करने के लिये धूर्त्त लोगोंका वशीकरण अर्थात् मोहनी मंत्र है । जैसे विना हस्त पादादि के जलमें चलनेवाले मच्छों की गति जलमें ज्ञात नहीं होती वैसेही दम्भ का चालचलन कोई नहीं जान-सकता कारण कि उसके हाथ पैर और मस्तक नहीं है तोभी वह सर्व कार्य साधन करनेमें अति कुशल है । एवम् वह बलवान और सर्वव्यापी है तथापि उसका रूप कैसा है यह कोई नहीं जान सकता । मंत्र के पराक्रम से कपटी लोग वश होसकते है खोटे यंत्र और चिट्ठीसे मूर्खोंको वश करसकते हैं, निर्भय स्थल पर जालादि फैलाकर जानवरों को पकड सकते हैं; परन्तु मनुष्य दम्भहीसे वश किये जासकते है अतः दम्भ सबसे अधिक विजयी है । दम्भ मनुष्यके हृदयको हरण करने वाला है, मायाका एक स्तम्भ है, जगत को जीतनेका यह एक आरम्भ है; अमर है निराकार—आकार रहित है एवम् माया के वृक्ष को उत्पन्न करनेवाला मुख्य बीज रूप है ।

जुआरी इत्यादि से तू तेरी, तेरे कुटंबकी, और तेरी संपत्तिकी रक्षा भली भांति करसकेगा इस में संदेह नहीं किन्तु यदि भूल कर भी अथवा मोह शोक लोभमें फंसकर, मुझसे सीखी हुई कलाओंको अजमाने लगेगा तो अवश्यही तू नष्ट भ्रष्ट होजायगा, तेरी कीर्त्ति और संपत्ति विलीन होजायगी और तेरे पिताकी आशा और मेरा परिश्रम मिट्टी में मिल जायगा.

---

१ गुप्त सम्मति ।

दम्भ स्वरूप—उस के नाम।

निरंतर गोलाकार फिरते हुए अति कडे एवम् सहस्त्र धार वाले माया के कपटचक्र में मुख्य नाभि—मध्य चक्र दम्भ है । इस के अतिरिक्त दम्भ नाम का एक झाड है, हे पुत्र ! उसका स्वरूप सुन । चंचल नेत्रों को पलकों की ओट में कर लेना यह उसका मूल है, पवित्रता उस के पुष्प हैं। यह दम्भतरु स्नान करने से भींगी हुई शिखा का जल पानकर सुख रूप सैकडों शाखा फैलाता है अर्थात् विस्तार पाता है। व्रत और नियमों में वकदम्भ उत्पन्न हुआ है, गुप्त नियमों से कूर्मजदम्भ की उत्पत्ति है और सव से श्रेष्ट मार्जारदम्भ है जिस की उत्पत्ति नेत्रों को धीरे २ आडे टेढे फिराने से हुई है।

ऊपर गिनाये हुए दम्भों में वकदम्भ दम्भराज कहलाता है, कूर्मजदम्भ दम्भमहाराज कहलाता है; एवम् मार्जारदम्भ एक चक्री—चक्रवर्त्ति महाराजा-धिराज के पद को प्राप्त है।

जिस के नख, डाढी, केश अधिक मोटे हों, जिस के जटाजूट हों, जो बहुतसी मृत्तिका काम में लाता हो, थोडा बोलता हो, (जीव मरेंगे ऐसी घृणा से) सावधानी से जूते धर कर चलता हो, बडी गांठवाली पवित्री पहनता हो, हाथ में पात्र लेने से मानो हाथ रुक गया हो वैसे खाक में धोती डालकर हाथ को खडा रखता हो, उंगलियें टेढी कर अधिक कल्पना करता हो, नाना वाद कर अपनी पंडिताई चलाता हो, मनुष्यों के समक्ष होंठ हिलाकर जप करनेका ढोंग करता हो, तथा नगर के मार्ग पर ध्यान करने में तत्पर रहनेवाला, तीर्थोमें अभिनय के साथ आचमन करने वाला एवम् अनेक वार स्नान करनेका ढोंग करके सम्पूर्ण मनुष्यों को रोक रखनेवाला, वारवार सहज वात में कान को स्पर्श करनेवाला, दांतों से "सी सी" शब्द करके हेमन्त ऋतु में स्नान की अतिशय कठिनता को प्रगट करनेवाला मोटा तिलक करके ऐसा प्रगट कर-नेवाला कि मैं देवता की महा पूजा करता हूं, ऊपर से मानो काम की दृष्टि मस्तक पर पडी हो तैसे अपने मस्तक पर पुष्प को धारण करनेवाला इत्यादि मनुष्यों को दाम्भिक जानना चाहिये । दाम्भिक पुरुष सदा शठ लोगों में ही पुजाता है—बुद्धिमानों में नहीं । दम्भी, गुणवानों पर दृष्टि नहीं करता और

अपने प्यारे कुटुम्बियों से भी द्वेष रखता है । वह दूसरे लोगों पर अपनी अधिक दया प्रगट करता है एवम् यश की प्राप्ति के लिये नाना प्रकार के उपाय करता है ।

जम्भासुर—दम्भासुर ।

यह दाम्भिक अपना स्वार्थ साधने के हित सहस्रों प्रणाम करता और मधुर वचन बोलता है और इस प्रकार से दूसरे के मन को पिघला कर अपना कार्य साध लेता है । परन्तु कार्य सिद्ध होने के पश्चात् क्रूर दृष्टि कर, भृकुटी चढा कर और मौनावलम्बन करके रहता है । पूर्व काल में देवताओं की समृद्धि को नाश करनेवाला जम्भासुर नाम का एक असुर था वही अब दम्भासुर का स्वरूप धारण कर पृथ्वीतल पर लोगों में निवास करता है । इस दम्भ के और २ नाम भी हैं सो सुन । एक शुचिदम्भ, दूसरा स्नातक[१]दम्भ, तीसरा शम दम्भ, और चौथा समाधिदम्भ है, परन्तु इन सबमें समाधिदम्भ सब से अधिक है जिसकी समानता शतांश में भी शेष तीन दम्भ नहीं कर सकते । पवित्रता और आचारविषय में वादविवाद करने वाला, बहुतसी मृत्तिका काम में लानेवाला, दूसरों को न हटक कर अपने कुटुम्बियों को एकान्त में निर्भय हटकनेवाला ढोंगी मनुष्य शुचिदम्भ के प्रताप से इस संसार में विश्वामित्रत्व को प्राप्त होता है । समझ बूझकर अपने पराक्रम को गुप्त रख ऊपर से दया प्रगट करनेवाला और स्वामीरहित सम्पत्ति को बतानेवाला अहिंसा दम्भ वडवाग्नि की नांई सब को भक्षण करजाता है ।

भोगी—विलासप्रिय दम्भ, परमहंस, मुण्डा, नागा, ब्रह्मचारी, छत्रधारी, दंडी, संन्यासी, अतिथि, भस्मधारी—खाखी, जटाजूट वाला, स्थूल शरीर वाला, कृश, मुनिवेष धारी, शिर पर शाल बांधने वाला, और मंदिर के शिखर जैसी शाल को खेंच कर बांधने वाला, ऐसे २ मनुष्यों में दिशा विदिशाओं में दृष्टिगोचर होता है । दम्भ का पिता लोभ है. जो अति वृद्धावस्था में है और जगत में इतना फैलगया है कि उस के प्रताप से उस का प्यारा पुत्र दम्भ सर्वत्र पहले दृष्टि पडता है । दम्भ की जननी का नाम माया है, असत्य उस का

---

१ अनेक बार स्नान करनेवाला ।

भाई है, उस की स्त्री का नाम कुटिलाकृति है और लोभ का पोता तथा दम्भ का पुत्र हुंकार है।

दम्भोत्पत्ति ।

सृष्टि की आदि में भगवान् प्रजापति चौदह लोक और प्राणीमात्र की रचना कर अन्त में बहुत काल तक निठल्ले बैठे रहे। कार्यरहित बैठे रहने के समय में ब्रह्माजी अपने मन में विचार करने लगे कि मेरी सृजी प्रजा की स्थिति कैसी है सो जानना चाहिये। इस विचारको पूरा करने के लिये समाधि लगाकर विधाता ने अपनी प्रजा की ओर दृष्टिपात किया तो प्रजामात्र को निराधार देखी। बिचारी प्रजा जैसी सृजी गई थी तैसी निष्कपट थी और सत्यताके सहारे झूल रही थी। यह देखकर प्रजापति विचार करने लगे कि यह प्रजा अपने शुद्ध मन की ओर भोली है इस कारण वह द्रव्योपार्जन नहीं कर सकेगी और न इस का व्यवहार किसी प्रकार चलेगा, ऐसा होने से अन्त में सृष्टि-चक्र का घूमना बंद होजायगा। अतएव ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि यह स्थिर और शून्य सृष्टि हिलचल करने लगे, इस के व्यवहार चलने लगें और सृष्टि चक्र अपना कार्य आरम्भ करे। मन में ऐसा दृढ निश्चय करके क्षणिक नेत्र मूंद कर माया की समाधि चढाई; अपनी भोली भाली प्रजा को आजी-विका और वैभव देनेवाला एक अपना विश्वासपात्र महादेव उत्पन्न किया और उसका नाम दम्भदेव रक्खा।

इस प्रकार से उत्पन्न हुआ सृष्टि का आधार दम्भदेव दर्भा की पूली, पुस्तक, माला, जलका कमण्डलु, उस के अन्तःकरणकी कुटिलता-वक्रता को प्रगट करनेवाला वक्र सींग, दण्ड, काले हरिणका पवित्र चर्म और चरणपादुका लेकर क्रोधारूढ नेत्रोंके कनारी से हुंकार सहित भृकुटी और मुख की चञ्चलताके कारण से तथा अधिक तिरस्कार के कारण से ऐसा प्रगट करता हुवा कि मैं सर्व में श्रेष्ट हूं और किसी दूसरे से स्पर्श न होजाने की सावधानी रखता एवम् पवित्रता को प्रकाशित करता हुआ ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के पास गया। ब्रह्म-सभा में जाकर वह आसन पर मौनावलम्बन करके खडा रहा परन्तु नीचे न बैठा। उस ने अपने कान पर बडी पवित्री चढा रक्खी थी, हाथ जलसे स्वच्छ किये हुए थे, धुलीहुई मूलीवत् मस्तक पर दर्भ से घिरी हुई शिखा की

जड में श्वेत पुष्प टंके हुयेथे, ग्रीवा लकडी की नाई सीधी थी, होठ जप के कारण से हिलते हुए दीख पडते थे, नेत्र समाधिलीन अर्थात् मुंदे हुए थे, एक हाथ में रुद्राक्ष का मणिया पहने हुए था और दूसरे हाथ में मृत्तिका से भरा-हुआ एक पात्र था।

ब्रह्मसभास्थित सप्तर्षि और अन्य सब उस के ऐसे वेषके विचित्र आडम्बर से भ्रमित और बिना प्रजापतिकी आज्ञा के न बैठने से चकित होकर ऐसा विचार करते हुए खडे हुए कि यह कोई परमेष्ठी महाऋषि हैं और दोनों हाथ जोड-कर सब प्रणाम करने लगे। इस समय जिस देवराज ने इस संसारकी रचना क्षणमात्र में की थी ऐसे ब्रह्मर्षि दम्भदेव के दर्शन कर उसकी प्रशंसा में मोह और आश्चर्य को प्राप्त होगए और भूल में हर्ष से सीधे तथा कुछेक कम्पायमान हुए अगस्त्य मुनि उसके कडे नियम को देख कर आश्चर्यग्रस्त होगए; वसिष्ठ अपने अल्पतप के लिये लज्जालीन होकर पीछे की ओर हट गये; अति सरल मुनि का आचार पालने से निर्दोष कौत्स उसके दर्शनमात्र से कांपने लगे; नारद अपने निष्कपट व्रत में उदासीन होगए; और यमदग्नि अपना मुख जानुओं की संधि के पास करके बैठ गए। तदनन्तर सूत में पिरोए गए की नाईं निरा सीधा खडा हुआ, अति गर्व से भरा हुआ, स्थूल शरीरवाला दम्भ जो आसन मिलनेकी आशा में खडाहीथा, कारण यह कि बिना आसन के वह बैठताही नहीं, उसके सन्मुख ब्रह्माने देखा। उस समय ब्रह्मा की दशनपंक्ति की किरणें चहुं ओर फैलजाने के कारण उनका वाहन श्वेत हंसभी अधिक श्वेत होरहाथा। तब ब्रह्माजी कहने लगे कि "हे पुत्र! गुणगण की गौरवता को बतानेवाले विचित्र नियमके कारण से तू मानपात्र है अतः यहां आ मेरी गोदमें बैठ।" जगत्पिता के प्रेमपूरित भाषण को सुनकर दम्भदेव उनकी गोद में जल छींट कर उनकी गोदको पवित्र कर अतिशय श्रमसे शङ्का और संकोच सहित उस में बैठा और कहने लगा कि "आप उच्चस्वर से मत बोलना। यदि आप को मुझे कुछ अवश्य कहना हो तो अपने हस्तकमलसे मुखको आच्छादन कर इस प्रकार बोलना कि आपके मुखका पवन मेरे शरीरको लेशमात्र न लगे!" प्रजापतिने दम्भदेवकी ऐसी पवित्रताको देख मुसकराकर कहा कि 'ऐसा क्या? चल! तू

दम्भ है । झट उठ खडा हो. यहांसे निकल समुद्ररूपी कटिमेखलासे शोभायमान पृथ्वीपर जाकर अवतार ले तथा नाना प्रकारके भोग भोग । विद्वान्भी तेरे स्वरूपको वस्तुतः नहीं जान सकेंगे"।

इस रीतिसे ब्रह्माकी ओरसे आज्ञा मिली तो दम्भदेव संसारमें अवतार ले संसारियोंके कंठमें पत्थर बंधाता हुआ सर्वत्र पुजने लगा। वह लोगोंको पृथक् २ फंदोंमें फंसाने लगा। सबसे प्रथम दम्भदेवने वनमें निवास किया, तिस पीछे नगरोंमें अपना प्रकाश किया और तदनन्तर बंगालमें अपनी विजयपताका खडी की *। तत्पश्चात् विजयपताका प्रताप प्रत्येक दिशामें स्थित करनेके लिये चहुं-ओर भ्रमण कर अन्तमें वाह्लीकदेशवासियोंके वचनमें निवास करने लगा, दक्षिण दिशामें वसनेवाले लोगोंके व्रत और नियमोंमें वास किया, कीर देशस्थ लोगोंके अधिकारमें जाकर वसा और बंगालमें तो उसकी विजयपताका प्रथमहीसे फहरा रही है क्योंकि वह पहलेसे ही सर्वत्र व्याप्त दम्भदेवका ठाम था। जो दान करानेवाले है, जो श्राद्ध कराने वाले हैं, जो ललाट में सिद्धिदाता लाल, पीला तिलक-करने वाले हैं, जो प्रभातमें भस्म धारण करते हैं, और जो व्रत, पूजा, यज्ञ आदिके करने वाले हैं, ये सब दम्भको सहायता देनेवाले है कारण कि ऐसे कामोंसे दम्भ पुष्टिको प्राप्त होता है।

दम्भ देवने पृथ्वीतल पर निवास करनेवाले लोगोंकी जातिके सहस्रों विभाग कर उन सबके जो २ अग्रणी थे उनके मुखमें वाचालता रूपसे निवास किया है जिससे वे सब झूंट बोलनेमें निर्भय होगए हैं। दम्भराजने पहले तो गुरुके मुखारविन्दमें वास किया, तत्पश्चात् शिष्यके कर्णमें वास किया, तदनन्तर तपस्वियोंके मनमें जाकर वसा. इससे पीछे दीक्षितोंके मनमें और अन्नमें पंडितों, जोतिषियों, वैद्यों, और चाकर, सुतार, कुंभार, वनिये, सोनी, नट, भाट, गायक, कत्थक, वनिजारे आदि सबके मनोंको अपना निवास स्थान बनालिया अर्थात् ये सब दम्भ देवकी शरण लेकर उसकी सहायतासे द्रव्योपार्जन करने लगे। नदी और सरोवर आदिके जलमें

---

* १०-११ वीं शताब्दिमें बंगालादि प्रदेशोंमें धर्मका अधिक ढोंग चला था इसलिये वहां दम्भका निवास कवियोंने कल्पना किया। प्रबोध चन्द्रोदयमें भी दम्भका निवास स्थान बंगालही कल्पना किया है।

एक टांगसे खडे रहने वाले बकभक्तकी कठिन तपश्चर्या और ढोंग देखनेसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उसने पक्षियोंमें भी निवास किया है। वटादि वृक्ष मोटी जटा और वल्कल वस्त्र धारण कर तीक्ष्ण धूप और भारी शीतादि सहकर वनमें बसते हैं, और केवल जलपान कर तपस्वीकी नाईं शरीरको अत्यन्त दुर्बल दर्शाते हुए सीधे खडे रहकर एकनिष्ठतासे ध्यान धरते हैं, इस परसे जान पडता है कि वृक्षोंमें भी दम्भने अपना निवासस्तम्भ गाडा है, इस प्रकारसे इस संसारमें सर्वत्र दम्भ व्याप्त है। कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जिसपर दम्भ देवने कृपा न की हो—जिसमें दम्भ न हो। इस कारण उसकी विविध कलाएं कपटी लोगोंही को ज्ञात हुई समझी जायं तो वह उनको नहीं फब सकता है। धूर्त लोग दम्भके विस्तारको कल्पवृक्ष सदृश गिनते हैं कारण कि वे दम्भके प्रभावसे अपना मनचीता कार्य कर सकते हैं। पूर्व कालमें विष्णु भगवान्ने वामनका ढोंग करके बलिका सम्पूर्ण राज्य अपने आधीन कर लिया था यह सब प्रताप दम्भराजका जानना चाहिये।

मूलदेवने इस प्रकार हिरण्यगुप्तके पुत्र चन्द्रगुप्तको प्रथम कला सिखलाई और उसपर विचार करनेके लिये कहकर शिष्य मंडलको विदा किया।

द्वितीय सर्ग।

लोभ वर्णन—वणिक चरित्र।

दूसरे दिन फिर रात्रिके समय ज्योंही चन्द्रमाने अपनी छटा दिखाना आरम्भ किया त्योंही धूर्त—नर—तारागण शिरोमणि मूलदेव कलानिधि ने भी अपने शिष्यसमुदाय को आस पास बिठाकर तथा चन्द्रगुप्त को सम्बोधन कर अपनी कला प्रकाश करना आरम्भ किया कि वत्स चन्द्रगुप्त! इस संसार में जन्म लेकर मनुष्य को दूसरी जिस कलाका जानना अत्यावश्यक है वह लोभ है॥

प्रिय पुत्र! लोभसे सदा सर्वदा डरते रहना चाहिये क्योंकि लोभी मनुष्य को कार्याकार्यका विचार नहीं रहता। जिस के मनमें लोभ ने निवास किया है वह विचार शून्य हो जाता है. लोभसे उस की आंखें भले बुरे को नहीं देख

सकती है । इस कारण ऐसे मनुष्य का सबको डर लगता है । कपट से एक वस्तु के बदले दूसरी दे देना एवम् एक दूसरे को धोखा देना आदि विचित्र माया सर्वत्र घूमती है उन सब का मूल ऐसा करने को उत्तेजित करनेवाला लोभ है । वह लोभ परिश्रम से संग्रह कर धरे हुए द्रव्य का हरण करता है । लोभियोंको अपना द्रव्य बढाने की अतिशय चाह होती है इसलिये वे दूसरे को सौंपते हैं और दूसरे लोग जो धूर्त्त होते हैं वे दिवाला आदि निकाल कर उनके रुपये को पचा जाते है । इस लोभ को शास्त्रवेत्ताओं ने अपने सत्य, शम, दम और तप के कारण से पराजय कर दिया है इस कारण उसने अन्यत्र अपना बचाव न देख कर बनियें के कुटिल हृदय में जाकर निवास किया है । अतएव हे वत्स! तू इन लोभ के घर कुटिल नरों का विश्वास कभी मत करना । क्योंकि "अकुलीन पवित्र नहीं और वणिक मित्र नहीं ॥

जब से वणिक के अन्तःकरण में लोभ ने वास किया है तबसे उसने लेन देन में माप तोलनें, द्रव्य और वस्तु इन सबमें कपट करना आरम्भ किया है । वह घटता देने लगा, अधिक लेने लगा, खोटे तोले रखने और दिवाला निकाल कर दूसरों की धरोहर दबाने लगा है । वह निधडक होकर आनन्द से दिन दहाडे मनुष्योंको लूटने लगा है । नानाप्रकार के कपट कर दिन भर लोगोंका द्रव्य लूटने पर भी जब अपने घर पर कोई धनव्यय करने का कारण होतो एक कौडी भी व्यय नहीं करता । कोई पवित्र मन वाला वैश्य कभी कथा श्रवण करने जाता है, पर उस कथा में कहीं दान करने की बात आवे तो जैसे काले सर्पसे दूर भागता है वैसे ही उस बात से तटस्थ हो जाता है । द्वादशी हो, श्राद्ध का दिन हो, या सूर्य चन्द्र का ग्रहण हो तो अधिक बार तक स्नान किया करता है परन्तु दान एक कौडी का नहीं करता । जो तीर्थ स्नान में स्नान करने को जाता है तो ज्योंही जल में से निकला त्योंही; कोई मुझ से दक्षिणा लेने आवेगा इस भय से चहुँ ओर देखता हुआ चोर की नाईं छिपता २ आडे टेढे मार्गमें होकर लोभी वणिक पलायन कर जाता है । यदि कभी उसने २ दमडी दान कर दी हो तो ७० जगह गर्जना करैगा । वह लोभ का ऐसा चेला है कि खुद भी नहीं खाता तो विचारे लडकों को किस प्रकार खिलावे ? यह सब लोभ-

---

१ वणिया मित्र न वेश्या सती । कागा हंस न गधा जती ।

देवकी ही कृपा जानना । कपटी वणिया जब व्यापार करने बैठता है तो बगुले की नाईं मौनावलम्बन कर बैठा रहता है परन्तु जब किसी को धरोहर रखने को आता देखता है या किसीके हाथ में रुपये देखता है तो तुरन्त खड़ा होकर प्रणाम करता है और आसन दे कर कुशलता पूछता है, जलपान और पान सुपारी की भी मनुहार करता है और इस प्रकार से बाल गोपाल की कुशल पूछने लगता है मानो चिरकालीन दृढ परिचयी है वह कहता है, भाई कैसे हैं ? बड़ी भाभी बहुत दिन हुए ज्ञात नहीं हुई, बड़ी बहन तो सासरे होगी ! सासरा तो भला मिला है ? " इसी प्रकार की बात करके मानो उस का तन मन हो ऐसी प्रीति दर्शाता है । तत् पश्चात् धर्म सम्बन्धी बात चीत कर ईश्वरको पूर्ण-तया पहचान कर दम्भ देवका आराधन करता है । यह सब कार्य वह धन हरण करने को ही करता है ऐसा जानना चाहिये । इस विषय में एक वणिक की वार्ता अति प्रसिद्ध है सो कहता हूं तू चित्त देकर सुन ।

लोभी शाह का चरित्र ।

पूर्व कालमें किसी नगरमें एक महान् धनाढ्य वैश्य रहता था जो अपनी जाति के अनुसार कपटकला में अत्यन्त निपुण था । उसने अपने समय में अनेक लोगोंको लूटकर धनहीन करादियाथा जिसके कारण से उसके पास अपार द्रव्य संचित होगया था । यह सेठ लोभियों में अग्रगण्य था और अपार द्रव्य होने परभी ऐसे मनुष्योंको जो एक पैसे के दो पैसे करना चाहते थे, बुलाया करता था । सच है पैसा किसको प्यारा नहीं लगता ? क्यों कि सर्व सुखों का साधन सम्पत्ति ही तो है ॥

एक समय उस धनिक के निकट कोई दूसरा छोटा लोभी आकर इस प्रकार कहने लगा कि भाईजी ! मेरी इच्छा आपके यहां अपने सब रुपया व्याज़ धरके कल्ह परदेश जाने की थी पर कल्ह सबेरे विष्टि[1] है अतएव अब मुझको क्या करना चाहिये सो कहिये—मेरा जाना रुकता है । ऐसी बात सुनकर वह धनिक मनमें फूला नहीं समाया परन्तु ऊपर से खेद प्रकाश कर मानो उस के कार्य के विषय

[1] जिस नक्षत्र में कोई कार्य किया जाय तो उसका शुभ फल नहीं होता, उसे विष्टि योग कहते हैं ।

में विचार करता हो ऐसे उस आगत लोभी मनुष्यकी ओर बारम्बार दृष्टि करता हुआ बडी देर के पश्चात् कहने लगा:—

सेठजी ! यह दुकान आपकी ही है जैसी आप की इच्छा हो सो करो, परन्तु मैं आप के रुपये थोडे दिन रक्खूंगा—अधिक दिनों तक हम अपनी दूकान में किसी के भी रुपये नहीं रखते हैं । साहजी ! आप जानते हो कि नहीं, कि आज कल देशकाल बहुत बदल गया है, कोई किसीका विश्वास करने योग्य नहीं मैं नहीं होऊं और मेरे लडकों की नियत बिगड जाय तो तुम तो मुझ को ही भांडने लगोगे । इस कारण यदि वर्ष छः महीने में ही अपना द्रव्य पीछा लेजाना हो तो निस्संदेह रखजाओ—आप की दूकान है । तुम भले आदमी हो इस लिये ऐसा करना पडता है, आप का तो मैं दास हूं । कल्ह तुम विष्टिका योग बताते हो उस में कोई अडचन नहीं तुम सुखसे आजही धरोहर रखजाओ व्यापार धंदा करने से तुम्हारा रुपया दुगना होगा और जो लाभ होगा सो तुम्हारा है अपने तो दलाली के भागी हैं. इस विषय में जो लेन देन करते हैं उनको भली भांति अनुभव है और तुम से कुछ छिपा नहींहै ॥

उसने फिर कहा "सेठजी विष्टि व्यतीपात की तो कोई हरकत नहीं पर मुझ को इस के सम्बन्ध में एक बात स्मरण हो आई है । थोडे दिन पहले एक मेरे मित्र ने मेरीही दूकान पर विष्टि नक्षत्र में धन रक्खा था सो उस के रुपये दूने होगये और बिना अडचन अपना धन झट ले गया" इस प्रकार अनेक झूँठी सच्ची गप्पें मारकर, अपने मनोरथ में आडे टेढे गोते खानेवाले पापी सेठने, मूर्ख छोटे लोभी के पास से उसका धन लेकर, अपनी पेटी में रक्खा । दूसरे दिन धरोहर सौंपनेवाला परदेशको चला गया ॥

उस सेठ ने उन के द्रव्य से व्यापार करना प्रारंभ किया और इतना लाभ उठाया कि अपार द्रव्य संचित हो जाने के कारण वह कुबेरकी नाईं कीर्तिवन्त होगया । धनसे धन पैदा होता है, उसमें भी कपट किये विना लक्षाधिपति को-ट्याधिपति नहीं हो सकता । कपट धूर्त्तोंका एक अखूट भंडार है । कपटके आधार से उस लोभी शाहने हजारों लाखों सुवर्ण के घडे अपने घर में एकत्रित किये, पर उन में से एक भी सेठ के काममें नहीं आया ! वे सुवर्ण के घडे, बालविधवा के स्तनों की नांई अत्यन्त क्लेश भोगने लगे । इन सोने के घडों को

उपयोग नहीं होता यह कोई अश्चर्य नहीं, कारण कि वैश्य सुवर्ण को कमाकर केवल उस की रक्षाही करते है पर उस को उपयोग में नहीं ला सक्ते और न उस का दान कर सकते हैं । ऐसे लोभी वणिक को इस संसाररूप जीर्णघर में भयंकर मूषक रूप जानना चहिये । उन चूहों के धन का उपयोग करने में बाधा करनेवाला पुरपति नाम का एक भयंकर सर्प है । उस सर्पका फण अतिशय भय से भरा हुआ और दुःखद है । उस सर्पके शरीर के ऊपर चारों ओर बहुत से कंटक हैं जो सदा किसी को फसाने को ऐसे वैसे किया करते हैं । इन के भय से भयभीत मूसे अपनी संग्रहीत वस्तु का उपभोग नहीं कर सकते । सो हे प्यारे ! 'मूसे (वणिक) खोदे (संग्रह) करे और भुजंग (राजा) भोगे (छीनले) ऐसी ही दशा लोभी शाह की हुई ॥

कुछ काल पीछे धरोहर रखनेवाला पहला मनुष्य प्रदेश से अपने ग्राम को पीछा आया और जहां अपनी धरोहर धर गया था उस सेठ की दूकान पर गया परन्तु वहां सेठ का पता नहीं मिला ऐसा देखतेंही बिचारा धन के नष्ट हो जाने की शंकासे मतिभ्रष्ट और विकल हो गया और भयभीत होकर इधर उधर फिर कर लोगों से पूछने लगा कि वह धनाढ्य सेठ कहां गया? यह सुन कर एक मनुष्य पास आकर इस प्रकार कहने लगा कि' भाई ! अब तो उस की लक्ष्मी विचित्र प्रकार की हो गई है ! उस के घर में नाना प्रकारके बढिया २ वस्त्र, आभूषण, कस्तूरी, केसर, अंबर, चन्दन, कर्पूर, सुपारी, इलायची, तज; लवंग आदि वस्तुओं के भंडार भरे हैं । जहां तहां लक्ष्मी के प्रताप से उस की हवेली चंचलापुरी सी जान पडती है—चारों ओर झलाझल भलाभल होरही है । जब वह रुपया गिनता है तो रुपयोंसे भरेहुए कोठों पर खडिया की लकीर कर एक मुहूर्त्त में करोडों मुहरें और रुपये गिन डालता है; छोटी रकम गिनने का तो उसे समय ही नहीं मिलता । देखो ! उस मेरु पर्वतवत् ऊंची हवेली में वह रहता है । इस नगर का राजाभी उस का अत्यन्त आदर करता है और अपने बराबर आसन देता है, क्या तू उस को पहचानता नहीं? वह दीन वैश्य उस की बात सुनकर 'बहुत बडा उपकार हुआ ऐसा कह उस सेठ के घर की ओर जाने लगा । यह मैले फटे कपडों

१ राजा के भय से वा अपने भाग का न होने से वणिक रूप चूहे जो कुछ इकट्ठा करते है वे उस को भोग नहीं सकते और अन्त में वह राजा के अधीन होजाता है ।

सहित उस सेठ के द्वार पर जा खडा हुआ। उस के मुख पर भयभीत और शंकशील होने से कुछ तेज नहीं रहा, इस कारण से वह अति दरिद्रावस्थावाला दीनदास दीख पडता था। कुछ देर के पश्चात् उस धनिक ने अपने झरोखे में बैठे हुए ही द्वार की ओर दृष्टि फैलाई और उस धरोहर धरजानेवाले को देखा। बस, देखते ही मानो उस पर वज्र गिर गया हो इस प्रकार वह महाधनी मूर्च्छित हो गिर गया और उसका वारम्वार चलता श्वास भी पल भर बंद होगया।

वह धरोहर धरनेवाला धनहीन मनुष्य कुछ देर द्वार पर खडा रहने के पश्चात् द्वारपाल की आज्ञा पाकर धीरे २ सेठ के पास भीतर गया और लज्जा करता हुआ एक कोने में बैठ गया। जब सब भीड हट गई तो उस ने सेठ के निकट जाकर अपना नाम बताकर पहचान कराई और अपना पूर्वदत्त धन मांगने लगा। यह बात सुनते ही उस महाधनिक ने अपने हाथ पृथ्वी पर पटके और भौंहें चढाकर, टेढी चितवन कर धां फां करता कहने लगा— 'अरे! यह कैसा कलिकाल आया है? हर! हर! महादेव! कैसे असत्यवादी मनुष्य पृथ्वी पर बसते हैं सो तो देखो! यह कोई धूर्त्त भूखा पापी कहाँ से आया है! तू कौन है रे? तेरा नाम क्या है? तेरे बाप का नाम क्या है? मैं ने तुझको कभी देखा हो यह मुझे तो याद नहीं, तब मेरी दूकान में धरोहर धर जाने की तू कहता है यह कैसे संभव हो सकता है? अरे रे! तू ने कब और किस के यहां धरोहर रक्खी है और रक्खी है तो कितनी? सो तो कह। पर तुझ से कहलाने का मेरा क्या प्रयोजन है? सब जानते हैं कि यह मत्त—पागल है, गले पड कर धन लेना चाहता है। और हमारी दूकान में हरगुप्त के वंश[1] की कोई धरोहर हो ऐसा सम्भव नहीं। तथा झूठ बोल कर मैं मिथ्याभाषण के पातक का भागी होऊं ऐसा मुझ से कदापि नहीं हो सकता। तथापि कोई सच्चा हो वा झूठा, जो हम से कुछ कहने को आवे तो हम को उस की भी अवश्य सुनना चाहिये। बडों का यह धर्म है कि सब की सुनना परन्तु किसी का भी अपमान नहीं करना, इसी लिये तेरे ये दो वचन भी सुने, नहीं तो तत्काल तुझे सिपाहीके आधीन कर देते। तू ने जिस दिन खाता डलाया हो वह दिन बता और उस

---

१ धरोहर सौंपनेवाला उसी वंश का था।

समय की लिखी हमारी वहियों में सब मेल देख ले। मेरी वृद्धावस्था होगई है इस कारण मैं ने अपनी दूकान का सब बोझ अपने पुत्रके ऊपर डाल रक्खा है, सब काम काज वही करता है। परन्तु पिछला जो कुछ उसमें लिखा है वह सब मेरे हाथ का है सो देख कर ढूंढ ले।'

लोभी सेठजी के ऐसे वचन सुन कर हरगुप्त–वंशावतंश के होश उड गए। परन्तु फिर अपने मन को ठिकाने पर ला और धीरज धर सेठ की आज्ञा लेकर तुरन्त उस के लडके के पास गया। वहां जाकर उस ने अपनी धरोहर मांगी। इस पर पुत्र ने कहा "पुरानी बात मैं नहीं जानता वह तो पिताजी ही जानते हैं।' वह पीछा सेठ के पास गया। सेठ ने साफ उत्तर दिया कि 'उसी को पूछ, मैं इस विषय में कुछ नहीं जानता'। तब वह विचारा फिर उस के लडके के पास गया। सेठ के पुत्रने उत्तर दिया कि "लिखनेके सम्बंधका जो काम है उसमें मेरे पिताजी ही ज्ञाता हैं पर मैं नहीं, लिखनेका काम उनका है।" इस प्रकार पिता और पुत्र उस धरोहर धरजानेवाले वैश्यको गेंदकी नांई इधर उधर फेंकने लगे पर दोनोंमेंसे एकने भी उसका निपटारा नहीं किया।

इस प्रकार थोथे गोते खानेसे हारकर अन्तमें विचारा कचहरीमें गया और अपने वृत्तान्तको राजापर प्रगट किया। राजाने उसका सम्पूर्ण दुःख ध्यान धरकर सुना और सेठकी अनुचित कार्यवाहीसे अप्रसन्न होकर उसको पकडवा मंगाया। ढीली धोती और पीली पगडीवाले सेठजी जब राजसभामें उपस्थित हुए तो राजाने पूछा कि 'क्या इस मनुष्यने तेरे यहां कोई धरोहर धरी है?' उसने कहा-"नहीं महाराज!' यह सुनतेही नरपतिके शरीरमें क्रोधाऽग्नि प्रज्वलित होगई क्योंकि उस धनहीन धरोहर धरनेवाले वैश्यके कथनके दृढ प्रमाण मिलनेसे राजाको पूर्ण विश्वास होगया था कि वह महा लोभी शाह अन्याय करता है। इस कारण नरपतिने साहजीकी सेवा करनेकी आज्ञादी। आज्ञा पाते ही सिपाहियों ने फडाफड सडासट कोडे मारना आरम्भ किया और दूसरे शस्त्रोंका उपयोग भी किया तथा घोर यातना दी, परंतु उसने तो एक पाई भी देना स्वीकार नहीं किया। उसका तो यह प्रण था कि 'चाम टूटे पर दाम न टूटे'। घोर यातना सहकर भी, देना तो दूर रहा, उसने उलटा यह कहा कि 'महाराज वह निरा झूठा है, उसने मुझे फूटा बदाम भी नहीं दिया'। इस रीतिसे उसने अतिशय

अपमान और दुःख सहन किया पर तो भी स्वभावही से लोभी उस सेठ ने धन देना स्वीकार नहीं किया। लोभी अपने शरीरको तृण की नाई वरतता है परन्तु द्रव्य में से एक कौडी भी काम में नहीं लाता, अन्त को मरना स्वीकारता है पर द्रव्य नहीं देता। जब दारुण दुःख भोगने पर भी लोभी सेठने धन देना स्वीकार नहीं किया तो और कुछ उपाय न देखकर राजाने उसको छोड दिया और वह विचारा अर्थी अपने द्रव्यको रो बैठा।

पुत्र चन्द्रगुप्त! एक के दो करने का लोभ बहुत बुरा है आधी को छोड सारी को दौडता है वह आधी भी खो बैठता है। मनुष्यों में लोभ है वैसे ही देवताओंमें भी है। इस पर शास्त्रकी एक वार्ता है सो कहता हूं।

शुक्राचार्य और कुवेर की वार्ता।

एक समय शुक्राचार्य के मन में आई कि मैं निर्धन हूं इस कारण अनेक प्रकारका कष्ट भोगना पडता है सो धन को प्राप्त कर सुख भोगना चाहिये। ऐसा विचार कर जिस के पास सर्व सम्पत्ति वसती थी उस लक्ष्मीके भंडार, अपने वालमित्र कुवेर के पास जाकर कहा कि, मित्र! देव और दानवों की अपेक्षा भी अधिक तेरा पूर्ण वैभव मित्रको अतिशय आनन्द देता है, और शत्रुओंको दुःख। तेरी अपार कीर्ति का कुछ वारापार नहीं रहा। पर तुझ जैसे धनाढ्य मित्रके होतेहुए मैं दरिद्री रहता हूं। तू जानता है कि मुझको एक वडे कुटुम्ब का पालन पोषण करना पडता है इस कारण इस समय मैं अपनी दरिद्रताकी वात स्वतंत्रासे अपने मित्रको ही कहने में समर्थ हूं। वहुतेरों का ऐसा मत है कि दुःख और सुख में समान भाग लेनेवाले मित्रको सहायता करनेके लिये अवश्य कहना चाहिये, अतः मैं तुम्हारे पास आया हूं। सत्कुल में जन्मे हुए महापुरुष याचक का भी पोषण करते हैं। तव उनके मित्र उनके वैभव का उपयोग किस लिये न करें? अधिक पुण्य से प्राप्त कर यत्नोंके कारण से संग्रह कर धरा हुआ भंडार जैसे अनुपम सुख दे, सुख दुःखमें सहायता करता है, वैसे ही पूर्वपुण्य से प्राप्त मित्रमणि भी सदा सुख और दुःखमें सहायकारी होता है। इस प्रकार से शुक्राचार्यने एकान्त में अपने परम मित्र कुवेरको कहा। तव मित्रके स्नेहसागरमें

डूबा हुआ और लोभ जालमें फंसा हुआ कुबेर बहुत देर तक विचार करनेके अनन्तर इस प्रकार कहने लगाः—

'तू मेरा मित्र है, मैं तुझ को पहचानता हूं । परन्तु प्राणवण सदृश अति वल्लभ इस अपार धन में से तुझको किञ्चित्मात्र भी नहीं दे सकूंगा । मित्रों की मित्रता कर स्नेह इच्छा रखना चाहिये पर द्रव्य की आकांक्षा नहीं करनी चाहिये। द्रव्यका कोई काम पडता है तो बहुतसे मित्र हो जाते हैं । तथा पुत्री पुत्र आदि प्राप्त करते भी कुछ देर नहीं लगती । संसारमें द्रव्यसे सब वस्तु मिलसकती हैं परन्तु द्रव्य किसी से नहीं मिलता । धनोपार्जन करनेमें अत्यंत परिश्रम होता है। एतदर्थ द्रव्य को व्यय करना यह एक अति साहसिक, अत्यन्त कठिन और आश्चर्यपूरित कार्य है । जो अपने शरीर को दान में अर्पण करने से नहीं डरता, वह भी द्रव्य खर्च करते समय अधिक हिचकिचाता है ।' इस प्रकार कुबेर ने नाहीं करके शुक्राचार्य की आशा भंग की तो वह मूर्ख की नांई लज्जा के कारण नीचे देखता अपने घर चला गया ।

अपने स्थान पर जाने के पश्चात् शुक्राचार्य गहरे विचारसागर में निमग्न हो-गया । तदनन्तर अपने कार्य भारियोंके साथ बहुत बार तक संकेत करके माया का रूप धारण कर कुबेर के अपार धनको हरण करने के विचार से शुक्राचार्य ने उस के शरीर में प्रवेश किया । शरीर में प्रवेश करने से पूर्वही शुक्राचार्य ने अपने आश्रितों को समझा रक्खे थे कि जब मै कुबेर के शरीर में प्रविष्ट होऊं तब तुन कुबेर से धन मांगने को आना । मै कुबेर के शरीर में बैठा हुआ उसको उभारूंगा तो वह तुम को बहुतसा द्रव्य देगा । इस संकेतानुसार ब्राह्मण कुबेर के निकट आये और कुबेर ने उनको अपार उदारता से धन देना आरम्भ किया ! धन देते २ जब कुबेर के अपार भंडार भी रिक्त हो गये तब शुक्रा-चार्य उसके शरीर से निकल कर अपने घर चले गये । तब कुबेर ने जाना कि यह सब शुक्राचार्य का रचा कपटजाल था जिस में फंसकर मैंने अपना सारा माल लुटा दिया तो वह ऊंचा स्वास लेकर अपने शिरपर हाथ धर कर अत्यन्त पश्चात्ताप करने लगा और अपने शंख, मुकुन्द, कुन्द, और पद्म आदि भंडार पैंदाझाड खाली होजाने के खेद से अत्यन्त गहरा निश्वास डाल कर बोला, कि 'हा ! मेरे मित्र दैत्यगुरु ने कपट कर मुझ को धोका दिया ! मेरा द्रव्य

हरण कर उस ने मुझ को तृणवत् कर दिया! हाय! यह अपार दुःख किस से कहूं? क्या करूं? कहां जाऊं! हाय! हाय! मनुष्य भी तो निर्धन से बातचीत नहीं करते। जो द्रव्यहीन होताहै उसको किसी प्रकारकी भी सहायता नहीं मिलती। जहां तहां निर्धन का अपमान होता है और जब मनुष्यका अपमान होताहै तब उस के शरीर में बड़े २ दुःख उत्पन्न होते हैं। इस लिये धर्मविषय में भी सहायता करनेवाला धन मनुष्य को प्राणप्रियहै, इस में कुछ भी सन्देह नहीं। जब वह धन नाश पाता है तब सर्वस्व नष्ट हुआ समझना। विद्वान् समझाजाना शरीर का सुन्दर कहलाना, कीर्तिवन्तों में प्रवेश होना, कुछ महत्व प्राप्त करना, शूर वीरों में सुभट समझाजाना ये सब द्रव्य के आधीन हैं अर्थात् धन से बन सकते हैं। जो मनुष्य निर्धन है वह विद्वान होने पर भी मूर्ख गिना जाता है। इस प्रकार कुबेर के मन में शोकाग्नि भभककर जलने लगी। शोक से उसके शरीर में अत्यन्त दाह होने लगी। तदनन्तर उस ने अपने कार्यभारियों से सम्मति ली कि क्या करना चाहिये? तब मंत्री ने कहा कि आप श्रीशंकर के पास जाकर विपतवार्त्ता कहो। यह सुनकर कुबेर तुरन्त शंकर के पास गया और अपने दुःखकी वार्ता कह सुनाई॥

कुबेर की टेर सुनकर शंकरने शुक्राचार्य को भूत दूतद्वारा बुलवा भेजा। आते ही धनाढ्य शुक्राचार्य ने अपने रत्नजटित मुकुट पर दोनों हाथ धर कर शंकर को प्रणाम किया और सन्मुख उपस्थित हुआ॥

तब महादेव ने कहाः—तू ने कृतघ्न होकर अपने मित्रमणि को ठग कर काचवत् बना दिया है, यह बहुत ही अनुचित कार्य तू ने किया; कारण कि कृतघ्न भी मित्र से द्रोह नहीं करता। यश की कुछ चाह न करनेवाले, अपनी मर्यादा को लोप चलने वाले कृतघ्नी मनुष्य जैसी ठगाई करते हैं वैसी ही ठगाई अपने प्रेमपात्र एकमात्र मित्र से करना तुझ सदृश के लिये उचित नहीं गिनी जाती। अरे सुमति! क्या ऐसा कार्य तेरे जैसे विद्वान को उचित कहावेगा? क्या वह तेरे आचरणों के अनुकूल कहावेगा? वा तेरे कुल के योग्य गिना जायगा? कभी नहीं। ऐसे आचरण सद्गुणों का नाश करते हैं। तू ठग बना सो क्या यह अपनी अति श्रम से पठन की हुई नीति का परिणाम है अथवा शान्ति है! वा

तुझ को तेरे पुरखाओं की ओर से मिला सदुपदेश है? या तेरी बुद्धि का सहज भ्रम है! कह यह क्या है।

इस संसार में धन किस को वल्लभ नहीं और धन के लिये में किस का मन नहीं ललचाता? लोग धन के लिये स्मसान में रहना भी स्वीकार करते हैं परन्तु यश रूप धन की आशा रखने वाले महा पुरुष दुराचरण करके द्रव्य प्राप्त नहीं करते। तू भृगुके निर्मल वंशको किस लिये कलङ्क लगाता है? लोभ रूप मेघमण्डल यश रूप राजहंस का परम शत्रु है। जो मनुष्य अपनी अविनाशी कीर्त्तिका त्याग कर पवन में चलायमान् (अर्थात् बहुतही हलके) कमलपत्र पर लगे जल की नांई क्षणमात्रमें नाश होनेवाले धनको ग्रहण करते हैं ऐसे मनुष्यों को धूर्त्तों की जाति में कौनसी जाति को गिनना चाहिये? जो खल मनुष्य अपने सदाचरण को परित्यक्त कर दूसरों को धोखा देते है उन्हों ने मानो अपनी ही पवित्रात्मा को दगा दिया ऐसा समझना चाहिये। यशस्वी की लक्ष्मी सदा जगमगाती रहती है पर अपयशी मनुष्य की कमलसी कोमल लक्ष्मी भी अपयश रूप विषैले झाड़ की भयंकर दुर्गंधसे सदा मूर्छित रहती है और कदापि सतेज नहीं होती तथा न वह वृद्धि पाती है। अपमान प्राप्त मनुष्य चाहे जिस प्रकार से कहते हैं तो भी सत्पुरुषों की कीर्त्ति में कुछ भी मलीनता नहीं आती। इसलिये मूर्खता को लिये हुए तेरा जो अनुचित और मलीन कर्म प्रसिद्ध में आया हैं उस कलंक के कर्म को निर्मल करने के लिये तू कुबेर को उसका धन पीछा सौंपदे और अपवाद रूप धूल से धूसरित अपने यश को पुनः शुद्ध कर ऐसा मेरा कहना है।"

तीन भुवन के देव श्रीशंकर का कहना सुन शुक्राचार्य दोनों हाथ जोड़ कर विनय सहित बोला:-- 'महाराज! जो भाग्य अच्छे हों तो इन्द्रके मुकट पर विश्राम करनेवाली--इन्द्रादि देवों से स्वाकृत आपकी आज्ञा को कौन नहीं स्वीकार करेगा? सर्व स्वीकार है। परन्तु जिस दरिद्री के घर में लड़की, लड़का नौकर चाकर आदि दुःखी रहते हों उस को पराये का धन हरण करने में बुरे भले का विचार नहीं रहता। अभी मेरी भी यही दशा है; इस से मैं ने विचार किया कि कुबेर मेरा मित्र है; वह इस घोर विपत्ति में मेरी सहायता करेगा। इस के विषयमें मेरे मन में बहुत बड़ी आशा थी कि वह अवश्य मेरा दुःख दूर करेगा। अतः मैं लज्जा छोड कर और निर्भय होकर कुबेर के पास गया और अत्यंत

नम्र होकर मैं ने इस की याचना की । पर शठशिरोमणि लोभी कुबेरने तो स्पष्ट अस्वीकार किया और मेरी आशा नष्ट करदी । यह उसनें विना शस्त्र के मेरा वध किया, विना विष विषपान कराया और विना अग्नि के उस ने मुझे दग्ध किया । इस कारण ऐसे परम शत्रु को छलना कोई नीच कर्म नहीं गिना जाता, वरञ्च उत्तम विजयी कर्म गिना जाता है । तथा दुर्बल मनुष्य कपट से कभी द्रव्य एकत्र करे तो भी उस को अपवाद नहीं लगता । आप ने धन लौटा देने के लिये मुझे बहुत कहा पर मैं आप को एक विनती करता हूं कि मुझ को किसी को भी अणुमात्र धन नहीं देना है. कारण कि धनही जीवनका सच्चा मूल है । द्रव्य का नाश होने से प्राण का नाश होता है । अरे ! प्राण जाना तो ठीक, पर धन जाना बहुत बुरा है ।

इस रीति से शुक्राचार्य ने उत्तर दिया और शंकर के उपदेश का उस पर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ; इस कारण महादेव को अत्यन्त क्रोध हुआ, जिसके वशीभूत होकर शुक्राचार्य को तुरन्त निकल गये । शंकर के उदरमें जाने के पश्चात् शुक्राचार्य जठराग्नि से दग्ध होने लगे और इस दुःख से चिल्लाने लगे । यह सुनकर शंकर बोले:—"हे शुक्र ! कुबेर का धन उसे लौटादे ।" शुक्रने उत्तर दिया कि "महाराज ! प्रभु २ करो । लिया हुआ धनभी पीछा दिया कहीं आपने सुना है ? प्राणान्त तक उस का धन पीछा नहीं दूंगा । आप इस बातका हठ छोडो ।" तब अधिक कुपित पशुपति की उदराग्नि में दग्ध होते हुए शुक्रने उच्चस्वरसे चिल्लाना आरम्भ किया । फिर शिवजी बोले "अरे दुराग्रही ! तू दूसरे का धन किस कारण दबा बैठा है ? मेरे उदरमें पडा हुआ, जठरानल से क्यों दग्ध होता है ? हठ छोड, देह को बचा, देह होगी तो द्रव्य मिल सकेगा, परन्तु द्रव्य, देह को नहीं लावेगा ।" इसके उत्तर में शुक्राचार्य ने कहा—"अस्थि और मज्जाको जलादेनेवाली जठराग्नि में जलमरना अच्छा पर मरने तक भी मैं तो एक कौडी देने वाला नहीं ।" इतना कहकर भयंकर जठराग्नि की प्रचण्ड ज्वाला में ज्योंहीं अपनी मृत्यु पास आई देखी त्योंहीं शुक्रने पार्वती की स्तुति करना आरम्भ किया । स्तुति के प्रतापसे पार्वतीजी अपने मनमें अत्यन्त्य प्रसन्न हुए और महादेवसे विनती करने लगीं । शंकर अपनी प्राणप्यारी की विनय से विनीत हो प्रेम में मग्न होगये तो शुक्राचार्य को कुछ जीने की आशा बंधी । फिर थोडी देर पश्चात्

शुक्र शंकर के शुक्र[1] द्वारा बाहर निकल अपना कार्य करने लगे; पर कुबेर का हरा धन तो पीछा दियाही नहीं ।

हे चन्द्रगुप्त ! लोभी मनुष्य इस प्रकार असह्य दुःख सहते हैं परन्तु अपने प्राण जाने तक भी हलके लोगों की नांई अपनी कुटिलता नहीं छोडते; तथा सहज मिल-सके ऐसे धन का भी त्याग नहीं करसकते । इस कारण लोभी होना उत्तम नहीं और लोभी का संसर्ग भी अनुचित है। जिस मनुष्य के मन में लोभसहित कपट कलाओं ने निवास किया है वह उनके कारण से अत्यन्त मायावी होता है । वह दूसरों को छलता है और समय पर आप भी छला जाता है । परन्तु जो निर्लोभी हैं वे न ठगते और न ठगाये जाते हैं ॥

हे वत्स ! ऊपर कहे हुये महा अनर्थकारक लोभ ने जिन में मुख्य करके निवास किया है ऐसे जो वैश्य उस लोभ के आश्रित होने से अपने में जो ६४ कलाएं रखते हैं वे तुझे बताता हूं तू लक्ष देकर सुन ॥

बणिक की ६४ कला।

१ घटता देना, २ बढतालेना ३ याद भूलजाना ४ मूंछ नीची कर बतांना पर ऊंची रखना[2] ५ लोभ को गुप्त रखना ६ ईश्वर का नाम बारम्बार लेना ७ राज

---

१ शंकरके वीर्यद्वारा बाहर निकलने के कारण उनका नाम शुक्र पडा । संस्कृत में शुक्र वीर्य को कहते हैं.

२ दिल्ली में एक सेठ और एक मुसलमान उमराव की आमनेसामने हवेलियां थीं । अपने २ झरोखे में सवेरे बैठने के समय मुसलमान उमराव अपनी मूछों पर हाथ फेरता तब सेठ भी उसी प्रकार करता, जिस से उमराव को बड़ा क्रोध आता । एक दिन उमराव ने कहा " अबे बनिये मूंछ तो हम अमीरों की ऊंची होगी तेरी मूंछतो नीचेही रहनेवाली है । " सेठने कहा " मियां चलो २ ऐसी बातें छोडदो, मूंछतो मेरी ऊंची है" इस प्रकार विवाद बढ जानेपर यह निश्चय हुआ कि छः महीने बाद दोनें लडाई लडें और उसमें जो हारे उसकी मूंछ नीची । मियां भाई ने तो उसी दम लश्कर रक्खा और छः मास में टेक पूरी करने के लिये सब मिल्कियत गिरवी धरदी । उसी सेठने परोक्षमें गिरवी धर रुपये दिये । सेठने सिर्फ ४ आदमी नोकर रक्खे । ज्योंही रोज सवेरा हो त्योंही मियां साहब को सुनाने के लिये सेठ के जमादार आकर कहें कि " साहब ! ३००० सिपाही तो कल्ह रक्खे और २००० आज रक्खे । " सेठ—

दरवार में जाकर भोला बन जाना ८ बावले की सी चेष्टा करना (जिस से दूसरे यह समझें कि यह तो कुछ समझता ही नहीं) ९ स्त्रियों में बड़ी २ बातें करना १० तीन दमड़ी दान करके तेरह जगह कहते फिरना ११ सुरत इच्छा हो तो उस समय बावलापन बताना, १२ झूठी शूरवीरता बताना, १३ मौन-वृत्ति का ढोंग करना, १४ ठगने के लिये सगा कुटुम्बी बनना, १५ व्यापार में माया फैलाके कइयों को रुलाना १६ तीर्थ यात्रादि करके धर्मीपन का दिखाव दिखाना १७ नांवा लेखा में छक्का पंजा खेलना, १८ सौगन्ध खाने में तत्पर रहना और सौगन्ध दिलाने में शीघ्रता कर अंजन आंजना. १९ अपने को सावधान मा के लड़कोंमें समझना, २० त्रिलोक की बात करना, २१ त्रि अर्थी भाषा बोलना, २२ हिसाब करने में देते समय पांच वीसी सौ और लेते समय सात बीसी सौ करना, २३ सच्चे के साथ शत्रुता रखना, २४ कार्य साधने के समय कुशलता से वेटा बनजाना, २५ कार्य सिद्ध होने पर बाप बन बैठना, २६ लम्पटपन गुप्त रखना २७ स्त्रियोंकी बोली ठोली पर ध्यान न धरना, २८ और उनको गुप्त रखना, २९ अपनी स्त्रीका अनुचित कर्म देखना तो उसकी निन्दा करनेके बदले उसके उत्तम गुणोंका वर्णन करना और अपनाही दोष बताना, ३० लोग दिखाऊं स्त्रीको गाली देना और धमकाना,

---

–उनको अधिक २ रखने का हुक्म देताजाय परन्तु जमादारोंको उसने समझा रक्खे थे सो वे एक आदमी को भी नहीं रखते थे। मियां साहब सेठ की बातें सुनकर रोज २ आदमी बढातेही जायं। छःमास हुए तब उमरावने कहा कि "बोलवे वनिये! तेरी मूछ ऊंची कि नीची? ऊंची रखना होतो चल लडने को।" सेठने भोला बनकर कहा कि "नहीं साहब! तुमतो अमीर हो, हम वनियों की, क्या चलाई? लो भाई हमारी मूंछ एक बार नहीं पर सौ बार नीची।" यह सुनतेही अमिल उमरा फूलगया और कहा कि "अब साला कैसा ठिकाने आया!" अमीर ने सब सेना तोडदी और तब जान-पडा कि १० लाख का नुकसान हुआ! सेठने उसकी मिल्कित गिरवी धरली थी इसलिये अमीर उसी को पूछने को गया, इससे सेठकी मूछ नीची भी हुई और ऊंची भी।

१ दरबार में जाते हुए सिपाही धप्पा मारे तो वह भी खालेवे और कहे कि "सिपाही बाबा! माफ करो बडी महरबानी" ऐसे कहता पाग संभालता घुस जाय।

३१ किसी अवसर पर अपनी स्त्रीकी निन्दाकी बात स्वयम्ही कहना और वह बात कहकर मर्दमी बताकर उसको राजी रखना, ३२ बडोंको मारना, छोटोंको बचाना और धर्मी कहलाना, ३३ प्रीतिमें अपूर्ण होनेपर भी पूर्णता बताना ३४ अति आहारी, बहुत विषयांध, निद्राल, सहज २ डरने वाला और क्रोधी होते भी इन पांचोंको गुप्त रखना, ३५ हरेक बात समझनेकी चेष्टा करना, ३६ बहिरा वा गूंगा बनकर कार्य करना, ३७ सम्पूर्ण शास्त्रोंमें निपुणता बताना, ३८ साधु सन्तकी बातें सुननेमें रक्त, पर दक्षिणा देने में विरक्त, ३९ बीचों बीचसे बात उडा देना, ४० बात करते २ भूल जाना अर्थात् बातमें भुलावा देनेके लिये "भाईको कहूं कि, सुणो भाई, सुणो साहब" ऐसे वैसे झटपट कर प्रयोजनकी बात उडा देना, ४१ लोभ बताकर एकके दो कर देनेके लिये द्रव्य लेना, ४२ नपुंसकपन छुपानेके लिये पांचवां व्रत लेना[२] ४३ निर्लज्ज होना, ४४ काम साधनेके लिये धप्प मारा तो खेह उड गई' ऐसा समझलेना ४५ परन्तु उसका फिर कभी वैर लेना[३], ४६ मित्र रहित रहना[४], ४७ फिर भी मैत्रीकी टेक रखना[५],

१ एक समय एक राजा की दो रानियों की दो दासियां मार्ग में लडपडीं वहां एक वणिक का लडका देखने को खडा था। दासियों की मारपीटकी फर्याद राजा के पास गई, और अपने २ बचाव में उस वणिक के पुत्र को उन्हों ने साक्षी बताया। राजा की रानियों ने विचार किया कि जो वह लडका अपनी ओर साक्षी न दे तो उस को दंड दिलाना। यह बात उस को ज्ञात होने पर वह बनिया घबराया और फिर जब साक्षी देने गया तब राजाने उसे प्रश्न पूछे कि–तू कुछ जानता है?' तो उसने कहा 'हा हा हा!' क्या जानता है?, 'लडी लडी लडी लडी' ऐसे कितनेक उतर पागल की नांई देने पर राजाने जाना कि यह तो पागल है इस कारण उस को वहां से हांक दिया।

२ जैनी लोगों के लिये यह नियम है। वे पांचवां व्रत धारण करते हैं। इस व्रत में स्त्री का संसर्ग सदा के लिये त्याग करते हैं।

३ एक समय मार्ग में किसी राजा के वैश्य दीवान के एक मनुष्य ने धप्प मारा। जो वह उस समय कुछ बोले और कुछ शासन करे तो लोगों में फजीहती हो कि 'दीवान ने धप्प खाया', इस से उस समय तो चला गया पर वही मनुष्य दूसरे कार्य प्रसन्न से पकडा गया तब उस समय का वैर रखकर उसे पूरा दंड दिया।

४ कहावत है कि 'बनिया कायथ मित्र नहीं, अकुलीन पवित्र नहीं।

५ मुद्रा राक्षस नाटक में का चन्दनदास जौहरी इस दृढता के लिये विख्यात है।

४८ अधिक बोलना (लबारपन), ४९ न्हाने धोनेमें कुशलता, ५० समझाना ५१ सदा उद्योगी रहना, ५२ विनाखर्च करनेके अपने कुटुम्बके यशका भूखा, ५३ हर किसीको रुलानेमें कुशल, ५४ रुपया प्राप्त होनेपर थोडेका सोना आदि लेकर बहुतसेको गाड रखना, ५५ द्रव्य होते भी दरिद्री रहना, ५६ फटे पुराने वा साधारण वस्त्र पहन कर मैला कुचेला फिरनेकी प्रकृति रखना, ५७ मन्नत लेनेमें तत्पर, पर पालनेमें पीछे रहना, ५८ दुःखमें धीरज रखना, ५९ अधिक लोभी

१ एक समय एक वैश्य किसी दूसरे गांव को उघाई को जाता था तब मार्ग में उस को एक बाघ दीख पडा और शरीर ठंडा पड गया तो उसने मान्तली कि 'हे सचराचर व्यापक प्रभु ! जो ई वगत तू म्हने उबारसी तो मैं १०००० ब्राह्मण जिमास्यूं' इस प्रकार बोलता २ एक वृक्ष पर चढ गया। दैवेच्छासे बाघ दूसरे मार्ग जाने लगा और बनिया घर लौटने लगा। मार्ग में विचार करने लगा कि '१०००० ब्राह्मण ! गजब—इतरा आपणा सूं क्या न जिमाया जाय ! ५००० ही घणा।' फिर विचार किया कि "पांच हजार भी घणा होय है, अढाई हजारही घणा" ढाई से सवा और सवा से छःसौ और छः सौ से तीन सौ; इस प्रकार उतरता २ एक ब्राह्मण पर उतर आया सो भी जिमाने का मन नहीं। विचार किया कि आगे देखा जायगा। एक समय एक ब्राह्मण उस के वहां आया और याचना की। ब्राह्मण बडा दुर्बल, मांसरहित, केवल हाड तथा चर्म वाला पंजर मात्र था; और दूसरे दिन कपिलाषष्ठी थी इसलिये वणिक ने विचारा कि कल्ह इस ब्राह्मण को जीमने को बुलाना। ब्राह्मण को निमन्त्रण दिया। ब्राह्मणने कहा 'भाई ! निमन्त्रण तो ठीक दिया पर मैं जैसे कहूं तैसे तेरी पत्नी करे।' वैश्य ने जाना कि यह क्या करेगा ? इस लिये हांमी भरी और अपनी स्त्री से कहा कि 'महाराज कोई साक्षात् देवांशी छे सो तूं खूब सेवा करजे और तिरपत करजे।' इतने में दूसरे गांव से कहलाया आया कि अमुक साहूकार भागता है इस लिये जो आज के आज नहीं जाओगे तो रुपये डूब जायेंगे। वणिकने ब्राह्मण को समक्ष करा कर स्त्री से कहा कि 'यां नें राजी राखजे और जेन कहे वेन करजे।' वैश्यके जाने के पीछे ब्राह्मण आया और उस की स्त्री के पास से पेटियों की कुंजियां. मांगली और उन में से द्रव्य निकालकर सारे गांव के ब्राह्मणों को जीमने को न्यौत दिये। सन्ध्याको १०००० ब्राह्मणों को जिमाये और हरेक को एक २ मुकुटा दक्षिणा में दिया। सांझ को जब वह वैश्य लौट कर आया तो जीम २ कर जाते हुए ब्राह्मण मार्ग में आशिर्वाद देने लगे कि 'राजाधिराज ! धन्य है कोई भी नहीं करे ऐसा आपने किया है।' वणिक विचार में पडा कि यह क्या ? पर आकर देखा तो यह अनोखा

होने पर भी अधिक दातारी दिखाना, ६० 'ए गीगाकी मा' आदि कहकर स्त्रीको बीचमें बुलाकर झगड़ा बढ गया हो उसका निवटेरा करना, ६१ हांडीकूंडीका ढकाढूमा करते रहना ६२ दीखनेमें निर्माल्य, पगला और मूढ, पर प्रयोजनमें पक्का, ६३ विश्वासघाती, और ६४ बख्शीशमें) ताली बजानेमें कुशल होना॥

तृतीय सर्ग ।
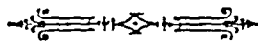
काम वर्णन ।

तीसरी रात्रिको सर्व मण्डली एकत्रित हुई तब मुख्य शिष्य कंदालिने कहा "गुरु राज ! आज कोई बाहरका काम नहीं; इस लिये हमको हमारे उद्योगमें अधिक सरलता मिले ऐसा कोई नवीन उपदेश दीजिये ।" मूलदेवने चन्द्रगुप्तको पास बुलाकर कहा कि "दो दिवसकी कला तो तुझे याद रही होगी ? अब आज तीसरे दिवसकी कला सुन । दम्भ और लोभ तो दुर्जय हैं ही पर कामदेव उनकी अपेक्षा भी अधिकतर दुर्जय है ।

स्त्रीचरित्र-उसकी ५२ कला ।

(१) काम अपनी अनुपम अवर्ण्य सौंदर्यताके कारणसे मनुष्यको अत्यन्त मोह उपजा कर, भयंकर विष होते भी इंद्रायणके फल (तस्तूंबा) की नाई अलौकिक मधुरता बताकर मनुष्यका प्राण हरलेता है । (२) जैसे अपने ही गंडस्थलमेंसे झरते हुए मंदधारामें मग्न हुए भ्रमर गुंजारके कारण अपनी मदावस्थाको सूचित करनेवाले कामातुर हाथी निमेष मात्रमें विषयांध होकर कृत्रिम हथिनीके आधीन होजाते हैं और उस कारणसे वे फांसमें फंस जाते हैं तैसे ही कामीजनोंको भी

खेल देखा और कपाल कूट कर बैठ रहा । कहावत है कि 'बनिया चोरे पली पली और राम उडावे कुप्पा' ।

१ कहते हैं कि राजा रीझे तो गांव दे,: ब्राह्मण रीझे तो आशिर्वाद दे पर बनिया रीझे तो ही ही हा हा करे और ताली बजावे तथा कहे कि 'कहो भाई कैसा मजा हुआ ?'

समझना चाहिये। ऐसे विषयकी फांसमें पराधीनतासे पकडे हुए बडे २ मत्त मातंग भी कामकी तरंगमें आनेसे ठगा जाते हैं और परिणाममें पुरुषोंके भालोंकी मार, तीक्ष्ण अंकुशका प्रहार और उजाड एकान्त प्रदेशमें बंधन आदि महा संकट और अनेक प्रकारके दुःख सहन करते हैं तो फिर अल्प प्राणी--पुरुषकी क्या बिसात? क्या कामदेवका यह प्रभाव थोडा है? (३) कामदेवकी मोहिनी रूप ललित ललनाओंके कटाक्षकी मारसे उसकी खरी खूबी जाननेवाले बहुतसे विषयांध पुरुष सहजमें फंस जाते हैं। स्त्रियां ऐसे पुरुषको काठकी पुतलीकी नाईं नचाती हैं और जैसे पिशाचनियाँ रात्रिको मांस और रुधिरका आहार पान करती हैं तैसे ही वे रात्रिको कामी पुरुषोंको कृत्रिम प्रेम बतलाकर वारंवार फंसाती हैं (४) सचमुच स्त्रियां प्रेमी [आशिक] रूप मृगको बांधनेकी दृढ डोरी हैं: (५) हृदय रूप मदमत्त हाथीको बांधनेकी बडी श्रृंखला और (६) व्यसन नव वल्लरी--दुःखकी नवीन लताएं हैं। (७) जो उस फांसमें फंस जाते हैं, उनका किसी प्रकार कभी छुटकारा नहीं होता (८) जो मनुष्य संसारकी विचित्र माया को जानते हों, फिर शम्बरासुर[1] के कपट से भी परिचित्त हों और विचित्ति की माया को जानने में भी कुशल हों, इतना होने पर भी स्त्री की माया—कलाको यत्किंचित् भी नहीं जान सकते (९) स्त्रियोंका शरीर पुष्पवत् अति कोमल होता है (१०) परन्तु उनका हृदय वज्रवत् अति कठिन है। ऐसी महा कुशल विचित्र चरित्रशाली स्त्रियां पुरुषोंके अन्तःकरण को क्यों कर नहीं हरण करैं? (११) स्त्री-चारित्रही विचित्र है वह किसी दिन भी पवित्र नहीं कर सकेगा और न किसी का मित्र होगा (१२) स्त्रियाँ उन पर सच्चा प्रेम रखनेवाले पर उदास रहती हैं (१३) उनका विनय करनेवालों पर प्रेम भाव रखती हैं (१४) पर जो उनपर प्रेमका अंश भी नहीं रखते हों—बे परवाह हों—अवगुण और दुष्टता की खानि हों तथा दुर्गुण की मूर्ति हों ऐसे पुरुषों के लिये अत्यातुर होती हैं (१५) वे नीच मनुष्यों पर मोहित होकर उन में अतिशय प्रेम रखती हैं और (१६) धूर्तों को विश्वासपात्र समझती हैं (१७) यह कहना कि स्त्रियाँ सद्गुणशाली और उत्तम स्वभाववाली हैं संदेह से खाली नहीं है।

---

१ शंबरासुर ऐसा मायावी था कि अपनी माया फैलाकर श्रीकृष्णजी के पुत्र प्रद्यु-म्नको हर लेगया सो किसी को नहीं जान पडा।

(१८) वे अबला होने पर भी सबला हैं (१९) गौ होकर बांघ हैं (२०) कोमलाङ्गी होते वज्रांगी, (२१) और निर्मल होते कुमैला[1] हैं ।

(२२) बारंबार पुरुषोंकी भीड में दिखाई देने वाली, (२३) अति कामातुर, (२४) और धैर्यध्वंश करने वाली गृहिणी जिस के घरमें होती है, उस पुरुषका जन्म पशुसमान–तृण तुल्य और ऐसी स्त्रियों को अपने आधीन रखने वाले पुरुषों का जन्म सफल जानना चाहिये । (२५) स्त्रियें अपने मदनविकार से निज पतिको मोहित कर वश कर लेती हैं, तो वश हुआ पति ऐसा अज्ञानी हो जाता है कि उसके चाहे जैसे कृत्य को देखने पर भी चुप बैठा रहता है । (२६) जब पति उसे कुछ भी नहीं कहता तो वह निरंकुश होकर घर का सब काम अपने पति से कराती हैं यहां तक कि वह उस के साम्हने सेवक की नाईं रहने लगता है । यह सब कामदेवका प्रभाव जानना । (२७) स्त्री के मोहमें पति लट्टू हो जाता है । (२८) कई प्रौढा स्त्रियें–जिनके शब्द वा भाव भली भांति नहीं समझ पडता ऐसा कपटसे भरा हुआ काला २ बोलकर–मानो स्वभावसेही मूर्ख हों ऐसा दर्शाकर तथा निज ललाट में चंदा करने के लिये चंद्रमा को अपने पति से मांगते समय भोली बनकर मानो कुछ जानती ही न हों ऐसा जताती हुई कहती हैं कि " मुझे वह चांद लादेओ उसे मैं अपने ललाटमें लगाऊंगी " (२९) बेसमझ पति प्रेमवश होकर उस को समझाता है पर उस के काले कर्मोंको नहीं समझ सकता । (३०) फिर मंदिरमें दर्शन को जाने का बहानाकर अपनी इच्छानुसार नगरमें इधर उधर विचरकर अति थकित होकर अपने घर आती है; तब (३१) वृथाविलास–चिन्ह पतिको दिखाकर प्रसन्न करती है और (३२) इस प्रकार उससे अपने चरण चँपाती है । (३३) वे एक को अपने नेत्रविकारों से रिझाती हैं, (३४) दूसरे के साथ वचन–विलास करती है (३५) तीसरे को चेष्टाओंसे प्रसन्न करती हैं और (३६) चौथे को मोह में फंसाती हैं अर्थात् स्त्रियें स्वभावसे ही बहुरूपिणी–अनेक रूप धारिणी हैं ।

(३७) स्त्री अपने पतिके साथ चपल हरिणी की नाईं वर्तती है (३८) परपुरुष रूप वृक्ष की ओर भ्रमर की नाईं अनुसरती है, (३९) इन स्वभावोंसे

---

१ कु अर्थात् बुरे, मल (दोष वाली) बुरे दोष वाली ।

वह चांडालिनीके सदृश है। (४०) वह मोह उत्पन्न करने वाली मिथ्या माया है (४१) वह कुटिल वेश्या है इस लिये किसी की नहीं होती। (४२) जब स्त्रियाँ एकान्त में बैठी हों तब सदा गहरा निश्वास डालकर इस प्रकार कहती हैं कि "अलग २ युवा पुरुषोंके साथ बिना रोक टोक के संभोगसुख और उनके धनका उपयोग करनेवाली वेश्याओं को धन्य है क्योंकि वे अपनी सारी इच्छाओंको सफल करती हैं।" (४३) चपल स्वभाववाली स्त्री अपनी खिडकी में खडी होकर मार्ग पर दृष्टि किया करती है (४४) मनमानी राग गाया करती है (४५) मालाकी स्फटिक मणि की नाईं अकारण इधर उधर दौडा करती है, और (४६) हंसा करती है। वह कभी २ अपने अडोसीपडोसीको कहती है कि (४७) "मेरा पति तो पशुकी नाईं है कुछ बोलनाभी नहीं जानता और न कुछ करना जानता है। वह तो ढोर है, विलास की तो कुछ बातही नहीं समझता—सांझ पडते ही भैंस की नाईं घोरा करता है। मैंने तो इसे ब्याह कर कुछ भी सुख नहीं देखा। इस के पाले पडी यह मेरे रांडके भाग है! अमुक पुरुष कैसा छैल छबीला नटनागर है! वह तो मानो ठाकुरही है" ऐसे कह कर अपने पुरुष की अपेक्षा स्वतन्त्र होकर फिरती है। (४८) जब कोई रसिया उसके घर जाता है तो वह खडी होकर उसके सन्मुख जाती है और कटाक्ष करके उसको ललचाती है। (४९) व्यवहार में भी स्वयं आया जाया करती हैं (५०) स्वयमही लेनदेन किया करती है और पति को कुछ भी नहीं गिनती। (५१) घर में ऊंचे स्वर से बोलती है और (५२) सहज बात में पति को धमकाने लगती है। ऐसी स्त्री के पति को जीता हुआ मृतक जानना।

पति के दोष प्रकाशित करनेवाली बारह प्रकार की स्त्रियां।

(१) ईर्षावाली स्त्री, (२) वृद्ध की स्त्री, (३) नोकर की स्त्री, (४) चटई की स्त्री, (५) सुनार की स्त्री, (६) गवैये की स्त्री, (७) लोभी की स्त्री, (८) वणजारे की स्त्री, (९) दास की स्त्री, (१०) कमीन (नाऊ धोबी आदिक) की स्त्री (११) पुरुषों के साथ भटकनेवाली और (१२)

सुन्दर सुकुमार युवक को पसन्द करनेवाली स्त्री सदा परपुरुष के गुण गिनाया करती और अपने पति के दोषों को प्रगट किया करती है ।

हे चंद्रगुप्त ! वेश्या ही वेश्या नहीं है पर नीचे लिखी स्त्रियों को भी वेश्याही जानना चाहिये ॥

४१ प्रकार की वेश्या स्त्रियाँ ।

१ दरिद्रिनी २ भोग भोगने की इच्छावाली दुर्गुणशाली ३ रूपवती ४ कुरूप पुरुष की स्त्री ५ मूर्ख की स्त्री ६ सब कलाएं जानने का अभिमान रखनेवाली ७ दरिद्री पति के साथ संग करने में उदासीन ८ चौसर खेलने और ९ मदिरा पीने में प्रीतिवाली १० लम्बी बातें करनेवाली ११ गीतों में प्रेम रखनेवाली १२ निपुण १३ वेश्या के साथ मित्रता रखनेवाली १४ शूरवीर के गुण गानेवाली १५ घर के काम में जी न लगानेवाली १६ नये २ वस्त्र पहनने की इच्छा रखनेवाली १७ शृंगार सजने में उत्साह वाली १८ निर्भयता से बोलने वाली १९ प्रत्युत्तर देने में चतुर २० असत्य भाषण करनेवाली २१ स्वभाव से ही निर्लज्ज २२ परिचित पुरुष को कुशल और अरोगता के समाचार पूछने वाली प्रेमपूर्वक सयानेपन का संभाषण करनेवाली २४ एकान्त में विचित्र कौतुक करनेवाली २५ ऊपर से सावित्री—सदृश बनाव रखनेवाली २६ यज्ञ में जानेवाली २७ तीर्थ में जानेवाली २८ देवदर्शन को भटकनेवाली २९ ज्योतिषी के यहां जानेवाली ३० वैद्य के यहां जानेवाली ३१ अपने परिवार वालों के यहां सदा जाने वाली ३२ भोजनादिक में स्वतंत्रतासे अधिक खर्च करनेवाली ३३ यात्रा में जानेवाली ३४ नये २ व्रतादिक के उत्सव करनेवाली ३५ भिक्षुक की स्त्री ३६ संन्यासी की सेवा करनेवाली ३७ पतिपर उदासीनता प्रगट करनेवाली ३८ सुन्दर रूपशाली पुरुष पर प्रेम रखनेवाली ३९ वारम्बार परपुरुष को देखने की इच्छा रखनेवाली ४० अपना वचन पालनेवाली ४१ और विलासी पुरुष की आकांक्षा रखने तथा प्रीति चाहने वाली इन सब स्त्रियों को वेश्याही जानना सन्ध्यी[१], स्त्रियें और पिशाचनियें निरन्तर दोषासक्त होती हैं ! वे मनुष्यों को

---

१ सन्ध्या दोषा (रात्रि) पर आसक्त अर्थात् प्रीति वाली होती है और पिशाचनियां तथा स्त्रियां दोष में प्रेम करने वाली होती हैं ।

मोह उत्पन्न कराने वाली हैं, वह ग्रहवाली हैं और चपल, भयंकर तथा रक्त की छाया को हरनेवाली हैं ॥

स्त्री सेवन से पुरुष की स्थिति।

१ जब बुद्धिहीन मनुष्य हलके काम करने लगता है और स्त्री में लुप्त होता है तब वह निस्तेज हो जाता है (२) निस्तेज पुरुष चपल—कलाकुशल स्त्री के आधीन ही होते हैं, और उनकी स्वतन्त्रता उनके साथ ही नष्ट होती है। इस लिये स्त्रियोंको नाना प्रकार की श्रृंगार की बातें करके और भांति २ के आभूषण बनवा देनेकी बातें करके वशमें करना क्योंकि ऐसी ही गप्पें मंत्र तंत्र बिना, स्त्रियोंका वशीकरण है।

स्त्री वश करने का अष्टाङ्गधारी मंत्र।

१ स्त्रियोंको वश करनेमें स्वकीर्तिका गान करना, २ अपने पराक्रमका बखान करना, ३ आताल पातालकी बातें करना, ४ बढावेके साथ बातें करके रिझाना। फिर, ५ कथाएं कह कर रंजन करना, ६ अनेक प्रकारसे झूँठी सच्ची सुझाना ७ समय पाकर वशवर्त्तनका बनाव करके लोभ बताना और ८ जिनकी जड पेड कुछ नहीं हो ऐसी बातें करना।

स्त्रियोंकी समझ शक्ति बहुत निर्बल होती है कारण वे और मूर्ख लोभ में फंसते हैं। सचमुच इस अति भयंकर कलिकालमें अपार कपटकी भरी पिशाचनी स्त्रियोंके अतिशय दुःख उत्पन्न करनेवाले कुटिल कर्मोंको श्रवण वा दर्शन कर किस मनुष्यको कम्प नहीं होता ? इस विषयमें एक पुरातन कथा तुझको दृष्टान्त की नाईं कहता हूं।

---

१ सन्ध्या अन्धेरे से ठगती है और पिशाचनी तथा स्त्री मोह से ठगती है।

२ सन्ध्या समय ग्रह-तारे प्रकाशित होते हैं और पिशाचनी तथा स्त्री विशेष ग्रह (विघ्न) करने वाली है।

३ पिशाचनी और सन्ध्या रक्त—लाल रंग की होती है और स्त्री रक्तप्रेमी की छाया और कांति को हरती है अर्थात् निस्तेज कर छोडती है।

स्त्री-चरित्र ।

समुद्रदत्त और वसुमति की वार्ता ।

पूर्व समयमें जगत्में अति प्रसिद्ध धनदत्त नामका एक नगरसेठ था जिसका वैभव इतना अधिक था कि कुबेर भी उससे लज्जित होकर इस पृथ्वीका संग छोड हिमालय पर जा बसा; रत्न भी समुद्रवत् उस सेठके आश्रयमें रहने लगे अर्थात् उसके यहां नाना प्रकारके रत्न, मुहरें और सुवर्णादिके अटूट और अपार भंडार भरे थे परन्तु वह एक अनुपम रत्नरूप पुत्रसे रहित था, संसारमें सर्वसुखी तो कोई विरलाही होता है । जिसके यहां खानेवाले हैं तहां खानेको (धन) नहीं और जो धनवान हैं उनके खानेवाले (पुत्रादि) नहीं तदनुसार इस सेठके भी उस अपार द्रव्यका उत्तराधिकारी होनेवालेकी न्यूनता थी । अनेक दिवस व्यतीत होने पर और कई देवी देवताओंकी मानता करनेके पश्चात् एक कन्या उस सेठके यहां जन्मी । इस कन्याका शरीर अत्यन्त सुंदर था-कोई अंग किसी अंशमें विकृत नहीं था और इसी लिये वह सर्वाङ्ग सुन्दरी कही जानेकी अधिकारिणी थी । वह साक्षात् रतिसमान मूर्त्तिमती स्वरूपवती और शोभायमान भान होती थी । इस कन्याके कटाक्षके आधीन चारों दिशा थीं और इसके प्रत्येक अंगकी शोभा निरख उनके उपमान लजाते थे ।

अपनी आयुभरमें यही एक कन्यारत्न प्राप्त होनेसे वह सेठ उससे अत्यन्त प्यार करता और उसका पालन पुत्रकी नाई करने लगा । जब वह कन्या विवाह योग्य आयुको पहुंची तब उसके प्रवीण पिताने, वैभव और कुलमें अपने समान ही दूसरे नगरके एक धनिकके समुद्रदत्त नामक पुत्रके साथ, जो इस रूपशीलाका पाणिग्रहण करनेके योग्य था, उसका विवाह कर दिया और अपने जामाताको घर जंवाई कर रखने लगा । समुद्रदत्त अपने श्वसुरगृहमें रहकर अनुपम आहार विहार और आनन्द करने लगा । वह अपनी नवयौवना प्रमदाके साथ नये २ विलास वैभव सुखरूप भोगनेमें रत हुआ ।

एक समय इस सेठके नगरमें दूसरे देशसे कई एक व्यापारी आये और धन प्राप्त करनेकी इच्छासे उन्होंने अन्यत्र जानेका विचार किया । उनको देखकर इस नवयुवकको भी देशाटन कर धन प्राप्त करनेकी इच्छा हुई । अपने श्वसुरसे आज्ञा

प्राप्त कर उसने भी उनके साथ ही समुद्रयात्राके लिये प्रस्थान किया। अपने प्यारे पतिके परदेश चले जानेके पीछे एक समय तरुणावस्थामें छकी हुई समुद्र-दत्तकी विलासंपात्री वसुमती हवेली पर चढकर अटारीमें अपनी अन्तरंग सखियोंके साथ चौसर खेलने लगी इतनेमें उस विशालनेत्रा वसुमतिकी दृष्टि, मार्गमें जाते हुए एक अति सुन्दर यौवनमदमत्त युवक पर पडी। इस पुरुषको देखते ही वसुमतिकी मति विपरीत गतिवान् हुई; अर्थात् शुद्ध मति मानो उससे क्रुद्ध होगई हो इस प्रकार दूर भाग गई। और जैसे किसीने इस चपलनयनाको ठगी हो वैसे यह मतिहीन होकर काम विकारको नहीं रोक सकी। इस समय उसका शरीर काम तापसे कांपने लगा, ज्वर चढ गया, होंठ फीके पड गये, कण्ठ शुष्क होगया, उदासीनता सर्वांग में व्याप्त होगई और तुरन्तही चौसर में से चित्त चुरा गया। ऐसी उस की स्थिति देखकर कटि में पहनी हुई करधनी झणझणाट करके उस को बोध देने लगी कि "अय चपला! तू तेरे शील व्रतका भंग किस कारण करती है? नदी जिस प्रकार अपनी मर्यादा रूप कछारों का नाश नहीं करती वैसेही तुझको तेरे कुल की मर्यादा का नाश करना उचित नहीं यह विचार क्षणेक मनमें रहा पर इतने में तो कामदेवने अपना पुष्पबाण कोमल जगह में ऐसे बल से मारा कि वह सुवासित पवन की लपट की झपट में मगन होगई और अचेत हो गिर पडी।

तब कामातुर वसुमति तुरन्त अपनी एक अन्तरङ्ग सखी को बुलाकर एकान्त स्थल में लेगई और मार्ग में जाने वाले उस पुरुष को बताकर कहने लगी कि "सखी! तू इस छैल को यहां लेआ, इस के बिना मुझ से नहीं रहा जाता। जो मुझ को यह नहीं मिलेगा तो मैं प्रचण्ड विरहानल में भस्म होजाऊंगी। काम का विकार विष की नाईं बहुत कडा है—इस को विरली ही कामिनी रोक सकती है।" काम की सर्व कलाके वश हुई वसुमति इस समय अपने मन को अपने वश में नहीं रखसकी। अपनी मालाकिनकी आज्ञा मानकर वह अधम सखी तुरन्त नीचे उतरी और उस पुरुषको बुला लाई। इस जार पुरुषने स्वतन्त्र रीति से वर्त्तनेवाली वसुम-तिको कामकेलि सुरति विलास से, सहज प्रेम दिखा कर, शांति और प्रेम से मृदुभाषण कर—पुनः परिहास वचन से अत्यन्त प्रसन्न कर वश करली। पीछे वह छैल छबीला सदा उसके साथ इसी प्रकारसे विलाससुख भोगने लगा।

अब समुद्रदत्तकी कथा सुनो कि जिस का अपनी प्रिया में पूर्ण प्रेम था । वह उस की प्रीति में लीन हुआ रात दिन प्रिया प्रियाही करता था । परदेशमें जाकर उसने खूब धन कमाया और इस प्रकार परदेशमें रहते रहते उस को बहुत दिन बीत गये । एक समय शरद ऋतु में वह एकान्त में सो रहा था कि ऐसे में उस को अपनी प्राणवल्लभा वसुमतिकी याद आगई । और तत्क्षण उस को अपनी प्यारी से मिलने की अति प्रबल इच्छा हुई । अपना सर्व काम काज बंद कर उसने अपना सारा माल वाहनों में भर घरको रवाना किया और आपभी वहां से अपनी ससुरालकी ओर चला । कई एक दिवसमें वह अपने नगर के निकट आपंहुँचा । नगर के निकट आतेही समुद्रदत्त ने यान पर से नीचे उतर सामान कारभारियों को सौंप नगर के भीतर प्रवेश किया । उसदिन उस के ससुराल में महोत्सव था । कुटुम्ब के सब लोग उस में लगे हुए थे । घर पहुंचतेही यह भी उस उत्सव में जा मिला और दिनभर आनन्द से बिताया । समुद्रदत्त के आने से सम्पूर्ण कुटुम्बवाले अति प्रसन्न हुए पर वसुमति अति निस्तेज होगई; वह व्याकुल हो इधर उधर फिरने लगी । उस के मन मानस में तो उस का प्रेमी हंस खेल रहा था और बीचमें ही यह लफरा आया सो उस के मन नहीं भाया ॥ रात्रि के समय देवमंदिरवत् सुन्दर शयन गृह में चिरकाल विछुरित समुद्रदत्त अत्यन्त उमंग से अपनी प्राणवल्लभा से मिलने को गया । वहां सुन्दर उज्वल धवल शय्या विछी थी, चहुं ओर सुगंधित धूप महकते थे, और स्तम्भ में जडे हुए मणि—माणिक जगमगाट कर रहे थे ! इन्द्रभवन की नाईं अति रमणीय रतिमंदिर में अति कमनीय शय्या पर अपनी परम प्रिया को पूर्ण प्रेमसे आलिङ्गन कर समुद्रदत्त लेट रहा. परन्तु अब समति वसुमतिका चित्त तो उस जार के प्यार में भीगा हुआ था, इसलिये उसे यह विवाहित पति सर्पउगलित विष के समान भान होता था । वह वारम्वार अपने कमल नेत्रों की पलकें बंद कर योगिनी की नाईं अपने प्रेमाधार जार का ध्यान धरती थी. वह प्रति क्षण निःश्वास डालकर अपनी आतुरता और शोक प्रगट करती थी परन्तु समुद्रदत्त इस भेद को नहीं जानता था, इस लिये वह चुंबन कर कई एक शृंगार के हाव भाव बताकर अपने सरल सप्रेम हृदय से मीठे शब्दों में उस से विनय करने लगा, परन्तु वह वज्रहृदया एक की दो न हुई. उसने इस के प्रेमपूरित शब्दों का कुछ भी उत्तर नहीं दिया

और भयभीत होकर कांपने लगी प्रेमातुर चतुर पति ने उस का वस्त्र खेंच लिया तो वह अपने अंगों को संकुचित कर एक ओर जाबैठी, क्योंकि उस के मनमें अपने जारका ध्यान एक तार लगरहा था। अजान समुद्रदत्त इस प्रकार नखरे करती अशुद्धा[1] वसुमति को प्रणयकुपिता समझ कर कोमल वचन बोल कर प्रणाम करने और समझाने लगा "अरी प्यारी! यह तुझे क्या हुआ? तूतो मेरी जीवनडोरी है! अरी मीठी मल्लिका[2]! मेरे मृदु वचन मान करके एक बार तो कृपाकटाक्ष से देख। यह दास बहुत देरसे तेरे प्रेमकी आशासे खास तेरी सेवा करने के लिये तडफ रहा है उसको निराश कर विना कारण क्रोध करना यह तुझ को उचित है क्या?"

इस प्रकारसे समुद्रदत्त वसुमति के आगे दीनता और अपना प्रेम प्रगट करता रहा तो भी उस के पराधीन अन्तःकरण में लेशमात्रभी प्रेमका संचार नहीं हुआ। प्रेम का संचार कहां से हो? इसी प्रकार बहुतसे मूर्ख पुरुष परपुरुष में आसक्त स्वकीया को, जो उनकी ओर अप्रसन्नता प्रगट कर दूर रहती हो, वश करने और उस से प्रेम करने के लिये वारंवार प्रार्थना कर लम्पटपन दर्शाते हैं परन्तु उस के कपट को नहीं जान् सकते। इस विषय में कोई यह कहे कि यह कामदेव का दोष है सो ठीक नहीं क्यों कि वह तो विचारा परतन्त्र है और कई अंशों में स्वतंत्र भी है। जैसे संध्या बहुतसे मेघों में रक्ता है पर सूर्य पर रक्ता नहीं तैसेही काम की दशा है। पत्नी स्वपति के साथ ही प्रेमवती रहे उसी पर आसक्त हो तो उत्तम अन्यथा धिक उसका जीवन और भ्रष्ट उस मनुष्य का जीवन।

बडी देर तक वसुमति को प्रसन्न करने को टेर २ कर समुद्रदत्त थक रहा परन्तु उस के दिल में तो दया का अंकुर फूटाही नहीं; उस परकीया का चित्त अपने पति की ओर झुकाही नहीं उसका अपने यार से मिलने का उत्साह रुकाही नहीं। अन्त को भोला पति रति की आशा छोड नींद की शरण में गया॥

---

१ स्त्री के ३ प्रकार के भाव हैं-शुद्ध, अशुद्ध और संकीर्ण शुद्ध में फिर तीन हैं- मंद, तीक्ष्ण और तीक्ष्णतर। ग्रामीण नाटककार जैसे विना समझे भाव बताते हैं वे अशुद्धभाव और कहीं स्नेह और कहीं नहीं वह संकीर्ण भाव है।

२ ब्राह्मण की कन्या हो वह कुन्दपुष्पवती, क्षत्रिय की हो वह मालती, वैश्यकी मल्लिका और शूद्रकन्या कैरवी कहाती है।

अर्द्ध रात्रि का समय हुआ, थोडी देर में टन टन १२ का टकोरा वजा, नगर मात्र में शून्यता छागई ऐसे अवसर में वसुमति को अपने यारकी याद आई कि अव वह प्राणप्यारा उस उपवन की लता-कुञ्ज में मेरे जानेकी वाट देख रहा होगा, वह मुझ से मिलनेके लिये व्याकुल चित्त बैठा होगा, हाय! आज मेरे विना उसका क्या हाल होगा क्यों कि मैं अभागिन आज उसके पास नहीं जासकूंगी। प्यारे आज मैं आने से लाचार हूं ! ऐसा कह मूर्छित हो वह धरती पर गिर पडी । समुद्रदत्त अभी जगरहा था इसे गिरी देख प्रेमांध पति ने निकट जा उसे उठाया परन्तु ज्योंही उसकी मूर्छा खुली-वह सचेत हुई त्योंही अपने पति को पास देख निश्वास डाला. उस ने उस को आश्वासन दे मनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया परन्तु सव व्यर्थ गया । उस परपुरुषरक्ता कामिनी के माने हुए इस महा विघ्नकारक राक्षस के बिनयवचन उसके वियोगाग्नि से दग्ध हृदय को कैसे शान्त कर सकतेथे ?

अव समुद्रदत्त सो गया । उसको घोर निद्रा के वशीभूत जान वसुमति ने यार से मिलने की ठान सोलह शृंगार किये और सजधजकर वहां से उस उपवन की ओर चली जहां उस का दिलचोर लताकुञ्ज में छिपा बैठा था । उस दिन उसके घरमें महोत्सव था, दिनभर सव लोग काम काज में लगे रहे थे. आनन्द का दिन था, यथारुचि सव ने नशापत्ता कर डटकर भोजन किये थे, इसलिये थके और पेटभरे अव-इस समय सव नींदके घुर्राटे लेरहे थे, घरमें जाने आनेकी रोक नहीं थी इसलिये अवसर पाकर एक चोर घरमें घुस गया था । वह अपने दांव में था कि ऐसे में उसने इस अपने यार के लिये तैयार वसुमति के नूपुर की झनकार टनकार सुनी तो एक कोने में दवक गया । अर्द्ध रात्रि होनेके कारण पूर्व दिशा रूप प्रमदा का आलिङ्गन कर बैठा हुआ चंद्रमा अपने पूर्ण प्रकाश को आम्र आदि वृक्षों के पत्तों पर फैला चुका था, चांदनी की चद्दर चहुं ओर बिछीथी और कुमुदनी खिल चुकी थी । दिन में सूर्य की ताप से संतप्त हुआ आकाश अव चांदनी के छिटकाव से अत्यन्त शीतल हो गया था। रात्रि देवी का अंधकार रूप वस्त्र जव चन्द्रमा ने खैंच लिया तो नग्न होने से लज्जित हुई उस ने कुमुदवन के सुगंध में लीन हुए भ्रमरगणरूप वस्त्र को स्वीकार किया । जव कि स्वच्छ निर्मल चांदनी चहुं ओर फैली हुई थी, मनुष्य और पशु पक्षी सव निद्रा में मोह पाकर अचेत सोते पडे थे, तव वसु.

मति निर्भयता से छमछम ठमठम करती घरके बाहर निकल कुञ्जकी ओर चली। वह चोर जो दबका हुआ यह सब हाल देखरहा था इस को अकेली जाती देख सोचने लगा कि इस रमणी का आभूषण उतारलेने का यह अवसर अति उत्तम है इस लिये वह भी उसके पीछे हो लिया.

अब उस विहार के संकेतगृह में क्या हुआ सो तुझे कहता हूं। अतिकाल होगया, रात आधी से ढल गई तो भी अपनी प्रिया का दर्शन उसे नहीं हुआ। इस कारण वह प्रेमी अपनी प्यारी के न मिलने से. अत्यन्त दुःखी हुआ वह बारम्बार विक्षिप्त की नांई बातें करने लगा और कभी २ पवन के झकोर से किसी ओर का आहट सुन धुन बांधकर देखने लगता और चौंक उठता कि मेरी प्यारी—हृदयहारिणी——सुन्दरी आगई ? पर फिर निराश हो पछताने लगता। उजेला पखवाडा था, रातको चांदनी अपनी अपूर्व छटा दिखा रही थी, मन्द २ पवन भी वह रहा था, स्थान भी अति रमणीय था, कामोत्तेजन करनेवाली सब सामग्री वहां मौजूदथी इस कारण ज्यों २ रात बीतती थी। त्यों २ उसका हृदय कामाग्नि और विछोह से जला जाता था॥ निदान वह अधीर होगया, काम ताप को अधिक न सह सका, न अपनी प्रिया का मुखचंद्र ही देख सका। क्यों कि वह इस प्रकार से तडपता हुआ अत्यन्त दुःखी हो गया और अन्तमें एक झाड के लिपटी हुई लता से फांसी खाकर अपना अमूल्यप्राण त्याग परलोक को सिधार गया।

उस जार के संसार त्याग चुकने पर वसुमति अपने प्रेमी प्राणवल्लभ से प्यार करने को उस सुन्दर उपवन में पहुंची। उसने अपने हिये के हार को सुन्दर मोतियों की माला और रत्नजडित आभूषणों से जो दूर से चांदनी में चम२ कर रहे थे अलंकृत देखा। उस का शरीर रंगविरंग के स्वच्छ भडकीले वस्त्रों से सुशोभित था परन्तु वह अपूर्व पदार्थ——शरीर का रत्न, सम्पूर्ण सुखों को भोगने वाला—चैतन्य चन्द्र उस की देह से सदा के लिये विदा हो चुका था। उस शव के आस पास कुछ जन्तु दीख पडे,—फाँसी लगाते समय की आहट सुन पक्षी भी जग गए थे और इस मृतक के इधर उधर घूम रहे थे इन को देख वह नाना प्रकार की शंका करने लगी। उस के चित्त में एक पर संकल्प विकल्प उठने लगे और वह अति भयभीत हुई। इतने में वह पास पहुंची और उसे

देखतेही गले लगने की आशा से झुकी तो उसे मरा हुआ पाया । बस, तत्क्षण ही मूर्च्छित हो वह परकीया भी भूमि पर गिर पडी ! कुछ देर अचेत पडी रहने के पीछे फिर सचेत हुई और उठ कर उस के पास बैठ कर विलाप करने लगी । जिस प्रकार गूंजते हुए भंवरों के बैठने से कोमल लता तुरन्त नीचे झुक जाती है वैसेही वसुमति "आह !" भरतेही पुनः मूर्च्छा खा गिर पडी । बहुत देर तक अचेत पडी रहने पर वसुमति को फिर चैतन्यता प्राप्त हुई—उसकी मूर्च्छा खुली तो अपने प्रीतम के लिये विलाप करने लगी । ज्योंही उस की दृष्टि उस शव पर फिर पडी त्योंही वह अचम्भित और दुःखित हो बोल उठी "हाय ! मेरे प्राणाधार ! हा ! मेरे नयनानन्द ! अरे प्यारे ! आप कहां सिधारे । नाथ ! इस दासी का साथ क्यों छोड दिया ! मेरे सर्वस्व ! जीवनाधार ! आप का उदार चित्त ऐसा अनुदार किस कारण से हो गया ! महाराज ! इस दासी का अपराध क्षमा करते । प्राणेश ! कुछ तो धीरज धरते । हा ! बिना कुछ कहे, बिना बोले, विना मिले, प्राणनाथ आप को इस दासी को अनाथ कर सदा के लिये हाथ छिटका देना उचित न था । प्यारे ! अब यह अभागिनी आप का मुखचन्द्र कहां देखेगी ? हाय ! यह क्या हुआ ! मेरे प्यारे ! प्रीतम ! प्राणवल्लभ ! हृदयके हार ! सुनो, यह आपकी दासी—प्रिया कब की पुकार रही है ! हा, आप ऐसे कठोर कब से हो गये ! प्राणेश ! मुझ मंदभागिनी को तडफते देख आप को तनिक भी तो दया नहीं आती । हाय हाय कुछ तो प्रीति निबाही होती ! हे चितचोर ! दौड कर एक बार तो गले लगो । प्यारे ! एक बार तो मीठी २ रसीली बातें और सुनादो ! हे प्रभु ! यह दुःख देखने को मुझे क्यों छोड दिया ? हा मेरे स्वामी ! यह दासीभी आपकी अनुगामी होतीहै, ऐसा कह फिर अचेत हो उस के शवपर गिर पडी । इस प्रकार विलाप करने के पीछे कुछ धीरज धर कर बोल रोक कर मुंह खोल अपने प्राणवल्लभ का होठ चुम्बन करने लगी, मानो उस शव में प्राण प्रवेश कर रही हो । उस पर अत्यन्त प्रेमासक्त होकर अपने मुख में का पान भी उस के मुख में रख दिया और बार २ इधर उधर से उस के सुन्दर चेहरे को देखने और अश्रुपात करने लगी । कभी धीरज धर कहती कि " प्यारे को नयन भर देखतोलूं । जो हुआ सो तो हुआ " और कभी अधीर हो फिर विलाप करने लगती ।

वत्स चन्द्रगुप्त ! सुनता है ? ईश्वरकी गति सब से निराली है, उस की माया अपार है, वह बडा विलक्षण है, वह और उस की रचना अगम्य है। कोई नहीं कह सकता कि थोडी ही देर में क्या होनेवाला है। अब तक जो हुआ सो सब तुझे सुनाया पर अब आगे भी सुन । परमात्मा की इच्छा ऐसी ही जानी जाती है कि उस व्यभिचारिणी को उस के ऐसे दुष्ट कर्म के लिये विशेष दंड मिलना चाहिये, इसी लिये वसुमतिके विलाप समय में एक नई बात उत्पन्न हुई सो तुझे कहता हूं ।

उस मृतक के शरीर पर चन्दन अरगजा चर्चित था, इतर आदि सुगंधित पदार्थोंसे वस्त्र महक रहेथे, पुष्प—माला उस के गले में पडी हुई थी, इन सब पदार्थों की सुगंध से वह उपवन सुगंधिमय होरहा था, वहां रहता हुआ एक प्रेत सुगंधसे मोहित होकर उस के देह को निज गेह बना आनन्दमग्न होगया था । ज्योंही वसुमतिने अपने प्रेमी के शव से आलिंगन किया, उस का होठ अपने मुख में लिया, त्योंही उस शवप्रविष्ट वेताल ने उस दुःशीला का नाक काट खाया । इस प्रकार उस दुराचारवाली शीलभंगवाली स्त्री ने अपने किये कुकर्म का फल पाया ॥

चेहरे की सुन्दरता नष्ट होने पर—नाक कट जाने पर वसुमति अपनी जांघ पर धरे शव को भूमि पर पटक वहां से घर की ओर सटक गई और अपने पति के पास सोगई । चन्द्रगुप्त ! क्या तू बता सकेगा कि वसुमति इस प्रकार कटे हुए नाक को क्या कह कर अपने कुकर्म को छिपावेगी ? अपनेको सुशीला कहकर किसे इस नाक काटनेका दण्ड दिलावेगी ? चन्द्रगुप्त ने नम्रता पूर्वक कहा "गुरु महाराज ! यह स्त्री कैसा चारित्र करैगी, अब क्या उपाय रचैगी सो मैं नहीं जानता कृपापूर्वक आपही कहिये । "

मूलदेव कहने लगा इस वसुमति ने थोडी ही देर तक सेज पर लेटी रहकर त्रियाचरित्र करना आरम्भ किया । सचतो यों कि अपने मृतक यार का प्यार छोड निज द्वारसे रंगमहल में जा पलंग पर चुपचाप लेटना ही उसके चरित्र का बीज रूप था । सोती हुई वह अचानक चौंक उठी और चिल्लाने लगी कि "दौडो, दौडो, हाय २ ! गजब रे ! म्हारो नाककाट लियो रे । बा:रे । हाय रे" इस प्रकार की भयानक चिल्लाहट ने तत्क्षण घर भर में घबराहट मचा दी ।

उसके पिता, भाई, बहन; सब उसके पास उठ २ कर जाने लगे। इस कृत्य से अज्ञान, पशुसमान बिचारा समुद्रदत्त भी विकल हो जाग उठा। समुद्रदत्त नें आंख खोलते ही देखा कि उसके चारों ओर मनुष्य घिर रहे हैं और 'क्या हुआ २' कह कर घोर शोर कर रहे हैं। उस भारी भीडके सामने रो रोकर विलाप कर वसुमति उसी की विवाहिता पत्नी कह रही है 'भाई! कांई था नैं नहीं दीखे है! देखो म्हारो नाक काट लियो रे! "अबै मनैं बचाओ तौ बचाओ, नहीं तो मने जीवां मार नांखसी" ऐसी भयसानी बानी सुनकर धनदत्त आदि सब समुद्रदत्त से पूछने लगे कि "यह तुम ने क्या किया? इस निरपराधिनी बाला का नाक कैसे काट लिया" समुद्रदत्त इस प्रश्न का उत्तर नहीं देसका। वह यह सुनते ही हक्का बक्का हो गया उस के होश हवास जाते रहे और परदेश में बेचे हुए गुलाम की नाईं एक अक्षर भी उसके मुंहसे नहीं निकला। वसुमति खडी २ विसूर २ रोरही थी। उसके मा बाप उसको पुचकार रहे थे, ढाढस बंधारहे थे। वसुमतिके भाई आदि समुद्रदत्त को बार बार नाक काटने का कारण बताने के लिये दबा रहे थे इतने में भोर होगया। नगरनिवासी उठ २ कर अपने काम में लग गये, और वसुमतिके कुटुंब वाले राजाके पास दौड गये। प्रातःकालही अपने राजमें ऐसा उत्पात हुआ सुन कर राजा अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और तत्क्षण समुद्रदत्त को बंधवा मंगाया। राजाने कुछ पूछताछ करके क्रोधवश समुद्रदत्त को बहुतसे रुपयेका बडा कडा दण्ड दिया।

नगरभर में यह बात फैलगई थी और वह चोर जो रात को यह सब वृत्तान्त अपनी आंखों से देख चुका था यह जानने के लिये कि अब क्या छानबीन होती है राजसभा में पहुंच गया था। राजा की कडी आज्ञा सुन कर वह विचारने लगा कि अवश्य अजान समुद्रदत्त पर अन्याय हो चुका इससे उसके चित्तमें कुछ ऐसा जोश आया कि उस ने तुरंत राजसभामें रात की सब बात आदि से अंत तक निःशंक हो कह सुनाई। राजा सुनतेही प्रसन्नता प्रगट कर चोर का सत्कार करने लगा और फिर उसे अपने साथ ले पूरा खोज करने के लिये उसी उपवन में पहुंचा जहां यह सब घटना घटी थी। चोर ने वसुमति के चरणाचिन्ह अपने छिपे रहने की जगह और जार की लाश को बताया। तदनन्तर उस

मृतक पुरुष के मुख में से जिस पर रुधिर गिरा हुआ था वसुमतिका कटा हुआ नाक निकाल कर चोर ने राजा और उपस्थित प्रजा को दिखला दिया। तथा समुद्रदत्त पर अकारण आये हुए अपवादको उसने मित्रता रूपसे उतार दिया।

चन्द्रगुप्त ! बेटा ! स्त्रियां अत्यन्त कुटिल और क्रूर आचरण वाली, लज्जा रहित और चपल होती हैं। इन के चरित्र अति विचित्र और समझ में नहीं आने वाले हैं। इसी से वे अपने पति, पिता, माता, बंधु और कुटुम्बी वा प्रेमी किसी का भी द्रोह और नाश करने से नहीं डरतीं। इसी लिये कहते हैं कि "त्रिया चरित्र न जानै कोई। धणी मार कर सतीजु होई"। इन्हीं कारणों से स्त्री जाति का विश्वास करना मना है नीति में लिखा है "नदीनाञ्च नखीनाञ्च शृङ्गीणां शस्त्रपाणिनां। विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च"। यद्यपि स्त्रियों की विचित्र मायाका भेद कोई नहीं जान सकता जैसा कहते हैं कि "स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः" तथापि स्त्रियों की कलाओं को जानने वाला और काम कला में प्रवीण पुरुष स्त्रियों के कपट जाल में नहीं फंसता है॥

चतुर्थ सर्ग।

वेश्या वर्णन।

"वत्स चन्द्रगुप्त ! मैं ने तुझ को तीन कलाओं का वर्णन सुनाया सो तुझ को याद है कि नहीं ? अब यह चतुर्थ कला जिस का जानना तेरे जैसे लक्ष्मीवंत को अत्यन्त आवश्यक है, तुझ को सिखाता हूं, सो तू लक्ष्य देकर श्रवण कर।" इस प्रकार कहने के अनन्तर मूलदेव महाराज ने अपनी कला की कथा का आरम्भ किया।

नायिका तीन हैं अर्थात् स्वकीया १ परकीया २ और सामान्या ३। तृतीय प्रकारवाली नायिकाएं (सामान्या—वेश्या,) विषय विलास के विषयमें विशेष कुटि-

---

१ नृपस्य चित्तं कृपणस्य वित्तं मनोरथं दुर्जनमानवानां। स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवोनजानाति कुतो मनुष्यः॥

लता दर्शाकर कामी जनोंको मोहित कर अपने फंद में फंसालेती हैं । वेश्याओंके कपट कुशल चारित्रों की कथा अकथनीय और अगम्य है । इन के जाल में फंसे हुए धनी का कुबेर सदृश धन माल भी चुटकियों में उड जाता है और वह अति कंगाल वन सव प्रकारके दुःख उठाता है । जिस प्रकार अति मनोहर, वहुत चपल, अधिक लहरोंवाली और नीचे को उतरने वाली ६४ नदियां समुद्र में मिल रही हैं उसी भांति उन (वेश्याओं) के मन मयंक में मन मोहनेवाली, चित चुराने में चपल, भिन्न २ विचारवालीं और नीच आचरणवालीं ६४ कलाएं निवास करती हैं । उन कलाओं के कलित नाम इस प्रकार हैं सो सुन ।

वेश्या की ६४ कला ।

शृंगार सजना १ नृत्य करना, २ गीत गाना ३ कटाक्ष करना ४ पुरुप की इच्छा दर्शाना ५ कामी को स्वाधीन करना ६ मित्र के साथ छल कपट करना ७ मदिरा पान करना ८ क्रीडा करना ९ रति केलि करना १० अष्ट प्रकारके आलिंगन करना ११ अन्तरंग कला जानना १२ अष्ट प्रकारके चुम्बन करना १३ दूसरे को पहिचानना १४ निर्लज्जता १५ उतावलापन वताना १६ घवराहट प्रगट करना १७ ईर्षा करना और वताना १८ कलह करना १९ वकना और लडना २० जार का मन मलीन करना २१ जार को फुसलानेके समय गले तक प्रस्वेद उपजाना २२ कम्प होना २३ भ्रम होना २४ एकान्तमें रहना २५ जारको रिझानेके लिये उसकी इच्छानुसार शृंगार करना २६ उस पर तुष्टमान होकर नेत्र मूंद लेना २७ जारके विना दुःखित रहनेका ढोंग करके जडकी नांई स्थिर होजाना २८ किसी समय मृतकवत् होजाना २९ विरहकी वेदना वताकर जारको स्वाधीन करलेना ३० यारको कुपित देखकर अपने कोपको दवाना ३१ यारसे वैर लेने अथवा उसका हित करनेका दृढ निश्चय करना ३२ अपनी माताके साथ झगडना ३३ प्रतिष्ठित मनुष्यके घरमें हर प्रकारसे घुसजाना ३४ उत्सवादिमें जाना कि जिससे कामीजन हावभावको देखकर मोहित हों ३५ पुरुषसे द्रव्य हर लेना ३६ मोह पैदा करनेके लिये नाना प्रकारका वेष वनाना ३७ और मोह वढानेके लिये अनेक भांतिकी क्रीडा करना ३८ चोरकी नांई रहना ३९ राजाकी नांई रहना ४० वडापन रखना ४१ विचारके अनुकूल काम न हो तो जारका अपमान करना ४२ विना कारण जारके दोप वर्ण

करना ४३ मूल्य ठहराना ४४ शरीरमें चन्दनादि लगाना ४५ एक जारको छोड दूसरेसे संकेतानुसार मिलना हो तो नेत्रोंमें नींद बताना ४६ उस समय मैले वस्त्र बताना ४७ दुखापन प्रकट करना ४८ कठिनता दर्शाना ४९, जारपर फिदा हो तो गलेमें हाथ डालकर खडी रहना ५० जारसे मिलनेकी उत्कण्ठा हो तो होठपर हाथ धर कर घरके आंगनमें खडी रहना ५१ कोई काम सिद्ध करना हो तो त्यक्तजारको आदरके साथ बुलाना ५२ धर्मिष्ठता प्रगट करनेको देवमंदिरमें दर्शन करने जाना ५३ यात्रा करना ५४ स्तुतिकरना ५५ देवमंदिर, तीर्थस्थल और उपवनादिमें आश्चर्य कारक क्रीडाएं करना ५६ हँसी दिल्लगी करना ५७ अपने रहनेके मकानके दो तीन द्वार बनवाना कि समय पर घुस आने वा भागजानेमें सुभीता हो ५८ वशीकरणकी औषधि और मंत्र सीखना ५९ सुगंधित झाड लगाना ६० कलप और तेल आदि लगाकर केश काले रखना कि प्रौढा होने परभी मुग्धा दिखाईदे ६१ भिक्षुकादिको धन देना ६२ देखनेके लिये द्वीपान्तर जाना ६३ और कुटनीपन करना ६४।

इन में प्रथम की ६३ कला तो थींहीं परन्तु वे भी अपने पूरे स्वरूप में न थीं और सदा साधारण हीं गिनी जाती थीं किन्तु जब ६४ वीं कुटनीकी कला उनमें मिली तब वे सब प्रफुल्लित और असाधारण होगईं। इस अन्तिम कलाके प्रारम्भको गणिका कला कहते हैं और यही सर्वोपरि है क्योंकि उस के अन्तर्गत ३६ कलाएं हैं। गणिका जो वेश्या से अलग है उसकी कलाएं इस प्रकारसे हैं[१]।

गणिका की ३६ कला।

पुत्रीको जन्म से ही तैलादिक सुगंधित द्रव्योंके उपयोग से कान्तिमती करना १ कन्या का तेज बल बढाना २ उसकी बुद्धि विकसित करनेके उपाय करना ३

---

१ वेश्या अर्थात् नगरनारी। जो केवल धन के लियेही प्रेम प्रगटकर विषयी जनोंको तृप्त करना जानती हो वह वेश्या कही जाती है और गणिका उससे श्रेष्ठ होती है। गणिका अनेक प्रकारकी विद्याओं को जाननेवाली और प्रेम प्रतीति को समझनेवाली होती है जैसे मृच्छकटिक नाटक की वसन्तसेना। वेश्या नीच प्रकारसे कामी जन को ठगती है और गणिका उच्चरीति प्रीति बांधकर धन हरण करती है। वेश्या तो केवल द्रव्यकीही संगिन है परन्तु गणिका धनके सिवाय गुण, रूप और विद्वत्ताकी भी ग्राहिणी है।

योग्य आहार विहार सेवन करा कर रोगोंसे वची रखना ४ पांच वर्षकी होनेपर उस को उसके पिता से अलग रखना ५ जन्मदिन—पुण्य काल का उत्सव—उद्यापन करकर मंगलपाठ कराना ६ कामशास्त्र पढाना ७ संगीत, चित्र, अक्षराभ्यास स्वाद, गंध और पुष्पकला में प्रवीण करना ८ वोलने की चतुराई सिखाना ९ व्याकरण तर्क और सिद्धान्तादि विषयोंमें कुशल करना १० यात्रा और उत्सवोंमें उस को सजधज के साथ भेजना ११ संगीत कला जानने वालेको नौकर रखना १२ मृदंगी, जार, कुलटा आदि से उस की कलित कान्ति की कीर्ति फैलाना १३ ज्योतिषियों द्वारा कल्याणचिन्ह प्रगट करना १४ वाला पर वहुत से आसक्त हों इसलिये द्रव्य वढाना १५ जव वहुत से प्रेमी उस के हों तो उन को ठगनेके लिये स्वयम् अस्वतंत्र होना और असमर्थता प्रगट करना कि मेरा कहना नहीं मानती १६ जीविका जानना १७ नम्र भाषण करना १८ सजीव खेल कला (कुक्कुट शुकादि का युद्ध) जानना १९ निर्जीव खेल कला (चौपड, गंजफा, शतरञ्ज) जानना २० द्यूत कला जानना २१ विश्वासपात्रोंसे—रतिकेलि करना २२ यदि कोई धनवान, रूपवान और चतुर पुरुष अत्यन्त मोहित हुआ हो तो उसके साथ प्रीति करना २३ प्रेमी स्वतंत्र और चतुर हो तो उसे वशमें करना २४ दूसरों को धोखा देने के लिये थोडे लिये हुए द्रव्यको अधिक वताना २५ कामांध पुरुषसे झूठे दस्तावेज लिखवाकर पीछे से रुपये की फर्याद करना २६ जो पुरुष प्रीति रखता हो उसके साथ पातिव्रत्य वर्त्तना २७ नित्य नैमित्तिक प्रीतिकर द्रव्य हरण करना २८ निर्धन और कृपणका तिरस्कार और उसको वदनाम करना २९ द्रव्यपात्र लोभी जन को अपने भडवेके द्वारा उकसाना और अनुरक्त पुरुष निर्धन हो गया हो तो उसे परित्याग कर देना ३० द्रव्यवान् प्रेमी रिसाजाय तो उसको हर प्रकार से मनाना ३१ कामांध पुरुषको सजधज और नखरा वताकर विह्वल करना परन्तु उसके साथ विलास नहीं करना ३२ यार के साथ गाढी प्रीति होगई हो तो भी पराधिनता प्रगट करना ३३ प्रीतम के साथ जुग की सारकी नाई वरतनी[1]

---

[1] चौपडके खेलमें जुगकी दोनों सार सदा साथही चलती हैं, अलग नहीं होतीं। इस प्रकार सदा अनुकूल और संग रहना।

३४ 'हाये हा' काना, प्रीतमको मद्य पिलाकर फंसाना ३५ फंसे हुए हर किसीको छिटकने न देना ३६ ।

इन कलाओंमें प्रवीण नगरनारियें ठामठाम बसकर धनाढ्यों का द्रव्य हरण करती हैं, बहुतसे बडे घरोंका सत्यानाश करती हैं, मुनियोंके मनको भी मोह पैदाकर उनके तपका भंग करती हैं । वे बहुतेरोंको विषयविलास में लीनकर इस लोक और परलोकसे पतित करती हैं । इसलिये इन प्रबलाओंको जीतनेके लिये विशेष कलावान होना चाहिये । पूर्व समय में मरीचि तथा शृंगी ऋषियों को वेश्याओं नेही अपने मोह—जाल में फांसे थे, कठिन परिश्रमसे किये हुए उनके तपको इन्होंनेही नष्ट किया था, और उनके अचल मनकोभी इन्हींने चंचल कर दिया था । जैसे दिव्य मणिको धारण करनेवाला विषधर है वैसेही दिखावटमें मोहनेवाली, बोलनेमें चित्त चुरानेवाली, हाव भावसे हिय हरनेवाली, टहकमहकमें मोहनेवाली और जय प्राप्त करनेमेंभी मोहिनी स्वर्गकी अप्सराएं और वेश्याएं दोनों समान हैं । इन दोनोंसेही दूर रहना चाहिये । उसके नैनोंके लटके मटके को भटकेसा समझकर जो चतुर जन उसके पाससे सटक जाते हैं वे धीर पुरुष इय प्रबल अरि को पटक मारते हैं ।

वेश्याएं और गनिकाएं, जो केवल थोडेसे धनके लिये, जिसका नाम और जात नहीं जानतीं उस कोभी अपनी आत्मा अर्पण कर देती हैं उनके पास सच्चे प्रेमकी शोध करनेवालोंका मनोरथ ऐसाही समझना जैसे कि सूर्यमंडलमें शीतलताका खोज करना क्योंकि वे किसीके साथ प्रेम रखतीही नहीं । उनकी सच्ची प्रीति किसीके साथ होतीही नहीं । इस प्रसंगपर एक सच्ची कथा कहता हूं सो तू ध्यान देकर सुन ।

विक्रमसिंह और विलासवती की वार्ता.

पूर्वकालमें बडा बलशाली विक्रमसिंह नामक एक महीपति रत्नपुरी नामवाली प्रसिद्ध पुरी का राज्य करता था । कुछ समय तक उसने अपना राज्य सुखपूर्वक और अकण्टकतासे चलाया । इस बीचमें कोईभी वैरी अपनी वीरता दिखा विक्रमसिंह पर विजय नहीं पासका । परन्तु जैसा कि होता है, दूसरे अनेक नरेन्द्र एक सम्मति होकर विक्रमसिंहको विजय करनेका विचार करने

लगे । समूह की शक्तिके सन्मुख एक वीर क्या कर सकता है ? निदान मही- पमंडलीके महा कराल युद्ध–क्षेत्रमें महीपमणि विक्रमसिंह नहीं ठहर सका. वह परास्त होकर पलायन करगया । प्रारब्धकी प्रबलतासे प्रतापहीन राजाके साथ२ एक परम चतुर प्रधान निकल भागा था । मंत्रीका नाम गुणसिन्धु था कि जि- सने पहिलेसे अपने गुणोंके प्रभावसे अमल यश प्राप्त किया । देश विदेश भटकते २ दोनों विदर्भ नगरमें पहुँचे वहां विचित्र बुद्धिवाली और बडी विलक्षण विलासवती नामकी एक वेश्या वसती थी । अपार द्रव्य–भंडार भरे रहनेके अभिमानसे अन्ध हुई वह वारवधू किसी अमीरका भी आदर नहीं करतीथी । द्रव्याकां- क्षिणी और निर्धनों का अपमानकारिणी होने परभी उसने विक्रमसिंह का बहुत आदर मानके साथ आगत स्वागत किया । सच्चे मनसे सुन्दरीकृत सत्कारके समाचार सुन सब नगरनिवासी चकित हुए. वेश्याका असाधारण व्यवहार देख सब लोगोंने बडा विस्मय किया । उसने अपने प्यारे राजाके लिये अपने अपार भंडार खोल दिये, भव्य भवन टिकनेके लिये बतादिये, और टहल चाकरीके लिये टहलुओंका ढेर लगादिया और अपने सुखको त्याग विपत्तिमें विक्रमसिंहकी सहायता करने लगी । उसने राजाको पोतडोंका अमीर और बडे सुखमें पलाहुआ समझकर अपने मणि माणिकके कोठोंकी कुञ्जियें उसे सौंपकर कहा "महाराज ! यह सब आपहीका है जो कुछ आवश्यक हो लीजिये । किसी बातका संकोच न करके मनमाना खर्च कीजिये और इस दासीको सदा अपनी ही समझिये ।" राजाने राजरहित होने परभी जो इतना मान विलासवती का सहज प्रेम और औचित्यभाव देखा तो आनन्दके कारण फूला नहीं समाया, उसको प्राणसे अधिक प्रिय, विश्वासपात्री और सती समझ एकान्तमें अपने मंत्रीसे कहने लगा कि " हे प्रधान ! यह वेश्या अकारण इतना अधिक प्रेम मेरे साथ रखती है, इसने अपना सर्वस्व मेरे अर्पण करदिया और पाणिग्रहीतासे बढ कर आज्ञाका- रिणी है । यह सब देखकर मुझको महदाश्चर्य होता है ! मैं नहीं जानता कि इसका कारण क्या है ? यह अप्रगट नहीं है कि वेश्याएँ किसीके साथ प्रीति नहीं करती, उनका प्रेम मात्रधनके साथ होता है और विपुल धन पाने परभी वे कदापि किसीकी नहीं होतीं । परन्तु यहां तो सब कुछ उलटा दीख पडता है यह सती और अविचल प्रेमवती है इसमें मुझको कुछ संदेह नहीं ।

गुणसिन्धु मंत्री अपने स्वामीकी स्वाधीनताको ऐसे वचनोंकी धारमें बहती देख विनयपूर्वक ईर्षा प्रगट करता हुआ इस प्रकार उपहास करने लगा कि "हे राजन्! वेश्याका विश्वास विश्वभरमें कौन करता है? वह विश्वासयोग्य कभी नहीं होती और न कभी अपने वचनको पूरा करती है। नेहनिर्वाह नहीं करने के कारण उसको सदा झूठी जानना ही उचित है। एक लाखको एक ओर छोडकर कभी वह एक कौडीका लालच करती है। उसके मनकी बात, उसके संकल्प, उसकी महत् कामना सहजहीमें कोई नहीं जान सकता। वह अत्यन्त आदर करती है, आपके साथ अटल प्रेम प्रगट करती है! पर उसका सुख क्षणिक है। उसके मन के मन्द विचारोंको मतिहीन लोग नहीं जानकर मुखपरकी मीठी २ बातोंमें भूल जाते हैं। वेश्या, आशाके सदृश आरंभमें अतिशय आनन्द–दायिनी होती है परन्तु अन्तमें अमित दुःखसे पददलित कर छोडती है। हरि और हर आदि देव भी अनेक भ्रम उत्पन्न कर मोहित करनेवाली वेश्या और मायाके सच्चे स्वरूपको नहीं जानते तो फिर मनुष्य किस गिनतीमें है।" राजा पर मंत्रीके इन वचनोंका वडा असर हुआ; उसके चित्तमें अनेक संकल्प विकल्प उठने लगे। निदान उसने उसकी परीक्षा करनेका निश्चय किया और एक दिन झूठमूठ मरगया। देश–प्रथाके अनुसार लोग राजाकी अन्त्येष्टि क्रिया करनेके लिये उसके शवको स्मशान-भूमिमें ले गये। विलासवती–कृत्रिम सतीने अपने प्रेमीका पयान देखकर पूर्व पोशाकको परित्यक्त किया और सती होनेके समयके श्वेत वस्त्र धारण कर राजाकी चिताके समीप गई। ईश्वरकी प्रार्थना करनेके अनन्तर ज्योंहीं वह चितामें जलनेके लिये दौडी त्योंहीं विक्रमसिंहने चितामेंसे उठकर उसका हाथ पकड रोकते हुए यह कहा कि "प्यारी! प्राणवल्लभा! सती! ठहर, ठहर, ठहर मैं जीता हूं, अतः तू अपनी प्राणहानि मत कर।"

राजा आजके दिनसे विलासवतीके पूर्ण वशीभूत हो गया, आजके दिनसे वह वेश्या नहीं रही, आज विलासवतीका नाम सतीश्रेणीमें लिखा गया और अब वह राजा विक्रमसिंहकी पट्टराणी गिनी गई। राजा अपनी प्यारी सती वेश्याका इस प्रकारसे निश्चल प्रेम, पूर्ण पातिव्रत और अविचल शुद्धाचरण देखकर मंत्रीको मतिहीन और महामूर्ख कहता हुआ उसे

घृणाके साथ देखने लगा । महीपति उसको अब विवेकशून्य समझने लगा, अब राजाके दिन फिरे, मंत्रीके वाक्य सिद्ध होनेका समय आया और वेश्याका विचार पूर्णताको पहुंचा । विलासवतीके अपार भंडार राजाने अपनी संपत्ति समझ खर्च कर दिये, वहुतसी फौज रखली । जहां हाथियोंकी संख्या साठ सहस्रसे अधिक वहां प्यादे और सवारोंकी क्या गिनती है ! निदान टिड्डी–दलकी नाईं अगणित सेना लेकर राजाने अपने परहस्तगत राज्यको लेनेके लिये फिर चढाई की और सर्व शक्तिमान सर्वेश्वरने शत्रु पर विजय प्राप्त कराकर उसकी इच्छा पूर्ण की । विक्रमसिंहकी विजय–पताका रत्नपुरी पर फिरसे फहराने लगी । "एक दिना नाहिं एक दिना कबहूं दिन वे दिन फेर फिरेंगे" के अनुसार अब राजा विक्रमसिंह पहलेकी नाईं फिर शरदके पूर्ण चन्द्रके समान अपनी प्रजाको प्रमुदित करता हुआ आनन्दपूर्वक राज्य करने लगा । पाट पर पांव देतेही, पूर्णप्रेमपात्री विलासवतीको राजाने अपनी पटरानी बनाई । वह चंद्रानना आज राजमंदिरमें विराजमान है, उसका और सब रानियोंसे अधिक मान सन्मान है, वह बड भागिनि आज बडे विस्तारवाले राज्यकी मुख्याधिकारिणी है । विलासवती रत्नजटित सुंदर पलंगपर सुशोभित है, सखियें बडे आदर और प्रेमभावसे जिसपर चँवर कर रही हैं । किसीके कर कमलमें जलकी झारी है, किसीके पास ताम्बूलकी तैयारी है, कोई पुष्पहार लाती है, कोई रस भरी अनूठी२ बातें सुनाती है । इस प्रकार देवताओंकी स्त्रियोंके समान सुन्दर सखियोंसे घिरी हुई विलासवती इंद्राणीको लजारही है । राजा उसके सन्मुख मोल लिये हुए दासकी नाईं रहता था और यही समझता था कि, वह साक्षात् सतीका अवतार है, मात्र कर्मधर्मके योगसे उसने वेश्याके घर जन्म लिया है ।

रात्रिका समय था, निर्मल चन्द्रकी स्वच्छ चांदनी चतुर्दिक् फैल रही थी । ऐसे समयमें राजा विक्रमसिंह अपनी सतीवेषा विलासवतीके साथ राजमंदिरकी चांदनीपर विराजमान है । हास विलास और रतिक्रीडा हो रही है, राजा प्रेममें छक रहा है, उसको अपने तन मनकी सुधि नहीं है, आनन्दमग्न हुआ उसके आधीन हो रहा है, ऐसा सुअवसर पाय, लाज के साथ शिर नाय विलासवती कहने लगी " महाराज ! प्राणप्यारे ! प्राणेश ! वल्लभ ! इस दीनदासीने आप कल्पतरुकी आज तक तन मन और धन सब अर्पण कर दत्तचित्तसे सेवा की है;

विलासवती की वार्ता ।

इसके साथ ही, आपके रसातलगत राज्याधिकार एवम् सागरांतगत सुख सर्व्वस्वको पुनर्वार उपलब्ध और पूर्ण भाग्योदय कर महालक्ष्मी देनेवालीभी यही दासी है. अतएव इस दीनदासीकी एक आशा है सो आप अवश्य पूर्ण करेंगे, यह प्रार्थना है। पुण्यफलको देनेवाले, परायेके पातकोंको पाताल पठानेवाले, सत्कर्मोंके सत्प्र-भावसे प्राप्त सत्यव्रतको पालन करनेके स्वभाववाले, प्रतिज्ञा पालनेकी धुरीपर ध्रुव की नाईं स्थिर—अटल रहनेवाले सज्जन पुरुष देवस्थान और तीर्थोंकी नाईं अपने समागमका उत्तम फल प्रदान करते हैं। महज्जनोंका संग कार्यकी सफलता में साथी होता है तो, प्रिय महाराज ! इस दीन दासीकी एक याचना आप पूर्ण करें। सुख और सम्पत्तिको तिलाञ्जलिदे जिस कामनासे तनमनसे आपकी सेवा की उसको पूर्ण करना आपका कर्त्तव्य है। विलासवतीका वल्लभ, प्राणोंका आधार, इसका सर्वस्व, एक तरुण प्रेमी हियेका हार और नयनोंका तारा है । वह प्राणेश अभाग्यके अंधियारेसे आवृत चोर समझा जाकर पकडा गया और अब विदर्भ नगरके वंदीगृहमें वडी विपत्ति भोग रहा है। उस प्रियतमको कारागारके कठिन कष्टसे मुक्त कर इस दासीको कृतार्थ कीजिये। आपकी उपकारकारिणी दासीका प्रत्युपकार इस प्रकारसे करके यशभागी हूजिये ।"

महाराज विक्रमसिंह वेश्याके इस प्रकारके मीठे २ विलक्षण वचन श्रव-णकर विक्रमसिंह हो गये ! ऐसा सुनतेही सुधि बुधि जाती रही, सन्नाटा छागया और ठगाये गये की नाईं भौचक रह गये। राजाके चञ्चल चखोंने चपलताका परित्याग कर दिया—वह विलासवतीके वाक्‌विलाससे चकित हो इकटक उसके मुखकी ओर देखने लगा। वडे विचारसागरमें निमग्न विक्रमसिंह वेश्याके इन वचनोंका उत्तर नहीं दे सका। कुम्हलाये हुए कमलपुष्पकी नाईं राजाका शिर पृथ्वीकी ओर झुक गया। इस समय मंत्रीके महा वाक्य राजाको स्मरण हो आये—एक पर एक संकल्प विकल्प समुद्रकी लहरोंकी नाईं लहराने लगे। वडी देर पीछे धीरज धर इस प्रकार कहने लगा:—

"प्यारी ! सुख दुखकी संगिन् ! तुझे यह क्या सूझा है ? क्या तूने आज मदपान करलिया है वा किसी पिशाचने तुझपर आक्रमण किया है ? कहतो सही ! मेरे साथ अविचल प्रेम रखती हुई तू आज निर्भय होकर ऐसे वचनोंसे अपने मुखको कैसे मलीन कर रही है ? मुझ जैसे प्रतापशाली राजाका परित्याग

कर एक अधम नरपर प्रेम करती है ! अपने इस तुच्छ विचारको फिर विचार तो सही तू क्या कर रही है ? " । इस प्रकारसे राजाने उसे बहुतेरा समझाया पर उसके मन नहीं भाया । वह अपने विचारसे अचलकी नाईं तनिक चलायमान नहीं हुई । उसने कहा "महाराज आप भोले हैं । जगत्‌में स्वार्थ से रहित किसीकी भी प्रीति नहीं होती, और हमारा तो स्वार्थपरायण व्यवहार सर्वत्रही विदित है । अब यदि आपको अपने प्रति किये गये उपकारका अणुमात्र भी ध्यान है और आपके चित्तपर कृतज्ञताका लेशमात्रभी संस्कार है तो मेरी इस प्रार्थनाको स्वीकार कीजिये " ।

निदान निरुपाय राजाने सेना भेज विदर्भ पर विजय प्राप्त की और उसके जार—यारको बंदीगृहसे छुडाकर विलासवतीके आधीन किया ।

हे वत्स ! इसलिये वेश्याओंसे सदा सावधान रहना चाहिये । और वे किसी एक पर पूरा प्रेम रखती हैं ऐसा समझकर कदापि धोखा न खाना चाहिये । वह सदा सत्यही बोलती है ऐसा कभी मत समझना । वह सन्मुख जारके साथ बात चीत करती है परन्तु उसका मन कहींका कहीं भटकता रहता है । वेश्या अपना तन हरकिसीके अर्पण कर देती है पर अपना मन किसीके अर्पण नहीं करती क्षण २ में वह नई बात कहती है । एक शब्द दूसरेके प्रतिकूल कहना उसका मुख्य कार्य है । बातका लोटफेर और फरेब का ढेर उसके पास सदा विद्यमान है। सर्वांश में असत्य कीही प्रतिमारूप वेश्याको यथार्थ रीतिसे कोई भी नहीं जान सकता । उसके जार पांच प्रकारके हैं । उनमें से एकका तो सिर्फ वह वर्णन ही करती है; दूसरेका सर्व धन लूटती है; तीसरेसे अपनी सेवाही कराया करती है; चौथेको सदा अपनी रक्षा करने के लिये रखती है; और पांचवेंका सदा उपहास किया करती है । जो नर वेश्याके बंधनमें पडजाता है उसकी मुक्ति त्रिकालमें भी नहीं होती । वह स्वयम् दीन और दुःखी होजाता है, सुखका सत्यानाश करदेता है और अपने कुटुम्बी जनोंसे धिक्कारा जाता है । वेश्यारत इस लोक और परलोकमें अनेक आपत्तियोंको भोगता हुआ चौऱ्यासी[1] में भ्रमण करता है । चंद्र ! वेश्यामें प्रीतिका तो निवास ही नहीं, वह कभी किसीसे प्रीति नहीं करती । तो

१—८४ लक्ष जीव योनि ।

फिर ऐसी मनकी मैली प्रीतिरहितासे प्रेम करनेसे क्या प्रयोजन? उसका तो प्राण-वल्लभ, प्रीतिका पुञ्ज, हिये का हार एक मात्र धन है; तद्व्यतिरिक्त सब अकिञ्चन् है। क्यों कि जिस प्रकार सर्प अपनी जीर्ण कञ्चुकी का तुरन्त त्याग कर देताहै वैसेही वह कोट्याधिपति जारकोभी निर्धन होतेही तत्क्षण फटकार देती है। इस कारण हे प्यारे! जो तुझे संसारका सुख भोगनेकी अभिलाषा है तो इनसे सदा बचकर रहना।

सर्ग पांचवां।
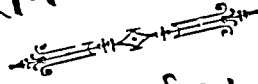
मोह वर्णन।

कायस्थोंकी कपट कला।

सम्पूर्ण कामोंसे निवृत्त होकर, धूर्त्तशिरोमणि मूलदेव महाराज अपने उज्वल आसन पर विराजमान हुए, तब सारे शिष्यवर्ग ने प्रेमपूर्वक प्रणाम किया। उन सबके प्रणामको स्वीकार कर उन सबकी ओर कृपादृष्टि से देखा और चन्द्रगुप्त को बुलाकर अपने निकट बैठनेके लिये कहा। तदनन्तर समीपस्थित चन्द्रगुप्तकी ओर दृष्टिपात् करके मूलदेवने कहा "बेटा! चन्द्र! गत चार दिनोंमें जो चार प्रकारकी कलाएं मैंने तुझको बताई सो तो तुझे स्मरणही होंगी? अब पांचवी कला प्रगट करता हूं सो सुन। सम्पूर्ण जनों को लूटनेवाला प्रबल लुटेरा जो मोह है वह सबसे पहले मनुष्यकी बुद्धिको मोहित करता है। यह (मोह) कायस्थ लोगोंके मुख और उनके लिखे हुए लेखोंमें अत्यन्तही गुप्त रीतिसे विद्यमान रहता है कि जिसको न जाननेके कारण सैकडों मनुष्य कपट-कला-प्रवीण कायस्थोंसे लूटे जाते हैं। देशमें उत्पन्न हुए धनधान्यको यदि कभी कायस्थ देखपावे तो जिस प्रकारसे राहू पूनमके चन्द्रमाको कवल कर

१ प्राचीन कालमें कायस्थ लोग राज्यकार्यमें अग्रणी और चालाकीमें निपुण थे। उनकी जैसी चालाकी, पीछेके कार्यभारियोंमें प्रतिदिन न्यून होती जाती है ऐसा कह नेमें कोई बाधा नहीं।

जाता है तैसेही उसका सर्वग्रास करनेमें उसको बडी फुर्ती रहती है । महात्मा, ज्ञानी और योगी जन संसारमें स्थित अन्य सम्पूर्ण कलाओंको जानते हैं परन्तु कोईभी ऋषि मुनि अतिशय श्रम करनेसे भी, कायस्थकी कुटिल कलाओंको जाननेमें समर्थ नहीं होता । समय २ पर येही लोग सारी सृष्टिका संहार कर गये और करते जाते हैं । जगतीतल और धर्मरायके यहां दोनों जगह येही लोग सबको लूटते हैं । कपटकलाका मंदिर कायस्थही है । ये मनुष्यको भयंकर दुःख-घोर यातना देते हैं । कायस्थलोग कपटके कोठार, प्रपंचके पुतले और मोहके महासागर हैं । ये दगाबाजीके दरिया, पापके पुञ्ज, कालके भी काल, और कालरात्रिके समान अंधकारमय हैं । ये बडे कडे दंडके प्रतापसे लोगोंका नाश करडालते हैं, बारम्बार उनकी गणना करते हैं, और भोजपत्र[1] रूप ध्वजाको धारणकर धरणीपर भ्रमते रहते हैं । निःसंदेह, कायस्थोंको काल-पुरुषही[2] जानने चाहिये ।

कायस्थ, यमराज के भैंसे के सींग की नाईं अति कुटिल स्वभाववाले हैं । इन के कंठमें यमराज की फांसी भी नहीं आसकती ? इसलिये इनका विश्वास कदापि नहीं करना । राज्यश्रीभी, मानो कायस्थों से छूटीजानेके खेद से शोकातुर होकर उनकी लेखनीके अग्रभाग में से गिरती हुई स्याही के बिंदुरूप अश्रुपात कर रोरहीहै । पुनः मायाके कुटिल केशों की नाईं स्वभावसेही टेढे; बहुत क्रूर कायस्थ लोग झूठे लेख लिखकर किसको नहीं लूटते ? वे, लोगोंके परिश्रमसे संग्रह कर धरेहुए धनको प्रपंच रचकर हरण कर लेते हैं; सारे विषयों[3] को लूटते हैं और परवश हुई इंद्रियोंकी नाईं मनुष्योंको नष्ट करते हैं ये लोग

---

१ पूर्व समयमें आर्य लोग विशेष कर भोजपत्र परही लिखा करते थे सो पुरातीन लेखोंके अवलोकनसे स्पष्ट ज्ञात होता है । अबभी, पहलेकी रीतिका अनुसरण करके लोग मंत्र जंत्रको भोजपत्र परही लिखते हैं ।

२ जिस प्रकार यमके दूत ध्वजा धारण करते हैं, हाथमें दंड लिये रहते हैं, काले वर्णके होते हैं, और लोकोंका नाश करते हैं तैसेही कायस्थभी भोजपत्ररूप ध्वजा रखते हैं, लोगोंपर कठिन दंड (सजा-शिक्षा) करते हैं, उनके कर्म काले होते हैं और सबको त्रास देते है ।

३ विषयका एक अर्थ देश और दूसरा-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ।

कायस्थ लोगोंकी १६ कपट कला।

अपनी ध्वजारूप भोजपत्रमें जो टेढे अक्षर लिखते हैं वे कालकी फांसी जैसे या: एक दूसरे के साथ लिपटे हुए सांपोंकी मंडली जैसे दीख पडते हैं और परिणाममें अतिशय दुःखदायक हैं।

ये लोग अत्यन्त चालाक होते हैं और अति गुप्त कार्य करते हैं इसलिये इनको चित्रगुप्त कहें तो फव सकता है। कपटकालमें प्रवीणता का दृष्टांत यह है कि वे शहिते शब्दमेंसे श के आगेका भाग (एक मात्रा) उडाकर रहित वना देते हैं। और सव कलाएं जानी गई हैं परन्तु इनकी कपटकलाका भेद अभी नहीं खुला। इनकी कलाको या तो काल जानता है या कलि;इनके सिवाय दूसरा नहीं। तो भी जो कुछ प्रगटमें आया है सो तुझे कहता हूं, सुन।

कायस्थ लोगोंकी १६ कपटकला।

१ टेढे अक्षर लिखनाँ २ प्रत्येक वातके वीचमें एक साथ पडना ३ सव अंक अपनेको चित्रगुप्तके वंशज प्रगट

१ इस शताब्दिके कायस्थ वडे गौरवके साथ अपनेको चित्रगुप्तके वंशज प्रगट करते है। चित्रगुप्त यमराजके यहां लेखा वही करनेवाला है।

२ दशवीं शताब्दिमें लिपिमें वडा भेद था। उस समय 'श' (श) ऐसाही लिखा जाता था; इस समयके अनुसार श स आदि रूपभेद नहीं था। इस कारण 'श' की पाई दूर कर दी जावे तो शेष २ (र) रहता है। इस प्रकार मात्रा उडानेका प्रयोजन यह कि किसी प्रतिज्ञापत्रमें यदि ऐसा लिखा हो कि "आपकी मांगी हुई वस्तु एक सहस्र रुपयों शहित नक्की देऊं" तो मात्रा उडा देनेसे "आपकी मांगी हुई वस्तु एक सहस्र रुपयों रहित देऊं" ऐसा हो जावे। वर्तमान समयमें उर्दूकी लिखावट ऐसे अनेक दोषोंसे भरी हुई है। एक वार किश्तियोंके स्थान पर कसवियां इकट्ठी की गईं और 'छुरीसे मारा' के वदलेमें कायस्थ वकीलने 'छडोंसे मारा' पढकर अपराधीको फांसी दिलादी। ऐसे २ दोष देखनेकी आपकी इच्छा हो तो "उर्दू दोष दर्पण" पुस्तक देखिये।

३ आडी तिरछी पंक्तियाँ और अक्षर लिखना जिससे एक दूसरेमें मिलकर अर्थका अनर्थ हो जाय जैसे. शाह लिखमीचंद लिखी सोभागचंद गेलु मारवाडी मैंने तुमको ५००० रुपये देनेका नक्की ठहराव किया है नहीं देऊं तो एक वर्षकी अवधिमें दुगुने रुपये देऊं।

जो पहली पंक्तिके अक्षर दूसरी पंक्तिमें मिलजायं तो दूसरा अर्थ होता है। कायस्थ-लोग लिखनेमें इस प्रकार कपट रचते हैं.

गुप्त रखनी ४ लोगोंको अपने पक्षमें करना. ५ व्ययकी अधिकता बताना, ६ लेने योग्य वस्तुके भाग करदेना ७ धन देना ८ धन लेना ९ अवशिष्ट पदार्थके विभाग करना १० संग्रह किये हुए पदार्थोंको उडा देनी ११ उत्पत्तिको गुप्त रखनी १२ ' कोई लेगया ' ऐसे कहनी १३ नष्ट हुआ बताना १४ बिकती हुई वस्तु लेकर भरणपोषण करनी १५ नाना प्रकारकी योजना करके आयमें घटी बतानी १६ भोजपत्रादिको जलाकर आयका नाश प्रगट करना कारण यह कि लेख नष्ट होजाने पर धन लेनेवाला विना प्रमाणके कुछभी नहीं प्राप्त कर सकता ।

ये षोडश कलाएं कलंकवाले, क्षयशील, नये २ रूप धारण कर उदय होने

---

१ जिस प्रकारसे व्यापारी अपने हिसाबके अंक अपनी समझौतके लिये गुप्त रखते हैं । जैसे कि कई दुकानदार बेचनेके मालपर १७ का अंक लिख देते हैं पर उसका आशय सवाचार होता है । ऐसा करनेका कारण यही कि हरेक मनुष्य उस बातको नहीं समझसके और स्वयम् सबै जान सके क्योंकि सब बातें सदा स्मरण नहीं रहतीं ।

२ कोई पदार्थ सौंपागया हो उसे उडादेना—चाल चलकर डकार जाना ।

३ राजा वा सेठकी आयको गुप्त रखना कि जिससे वह सदा घबराया करे और उसके आधीन रहे ।

४ कोई पदार्थ पचाना हो तो बहाना करना कि ' वह वस्तु सावधानी से इसी जगह रक्खीथी पर न जाने कौन लेगया ? क्या हुआ । सो ठीक नहीं । चूहे लेगये वा अमुक मनुष्य आता जाता है उसपर शंका होती है कि वही न लेगया हो ' ऐसे कहकर आप ले लेना ।

५ घरमें तो सब पदार्थ आनेवालेही लाना परन्तु जो कभी राजा क्रुद्ध होतो बताने के काम में आवे कि मैं किसीका फोकट नहीं लेता इस वास्ते व्यापारियोंके यहां खाता रक्खे और प्रगट करे कि हमारे यहां सेंतका कहां आता है ? (अर्थात्, नहीं) इतने २ दाम लगते हैं ।

६ जिस प्रकारसे सरकारी सत्ताधिकारी इस समय वार्षिक बजट बनाकर खर्चा चुकजाना प्रसिद्ध करते हैं ।

वाले दोषाकर[1] कायस्थको जानना चाहिये । बृहस्पतिकी नांई सम्पूर्ण कपटोंके ज्ञाता कायस्थ लोग "नकार" रूप सिद्ध मंत्रसे एक क्षणमें आजीविका हर लेते हैं ॥

कायस्थके कुटिल कर्मकी कहानी ।

रस्सी जलगई पर ऐंठ नहीं गई ।

पूर्व कालमें एक जुआरी अपना धन, पशु, वस्त्र आदि घरकी सारी सम्पत्ति जुएमें हार गया और अति दुर्दशा को प्राप्त होगया । इस जगतमें दरिद्रीका कोई दोस्त नहीं, न कोई उसका सगा है और न कोई स्नेही है । उसके कुटुम्बियोंने उसको अपने घरसे निकाल बाहिर किया । अपने कुटुम्बवालोंकी ओरसे अपमानित होकर वह जुआरी भूमंडलपर निराश्रय भटकने लगा ।

एक समय, वह फिरता २ उज्जयनी नगरीकी ओर चला गया । जब नगरीके निकट गया तो मार्गका श्रम निवारण करनेके लिये स्नान किया और धोये हुए स्वच्छ वस्त्र धारण कर नगरीमें प्रवेश किया । जब वह इधर उधर फिर रहाथा तो एकान्त स्थानमें एक शंकरका मंदिर दृष्टि पडा । इस देवालयमें शंकरकी मूर्ति[2] थी । उस जुआरी को कुछ काम–धंधा नहीं था इस कारण अवकाश पाकर फल फूल तथा नैवेद्यसे शंकरकी सेवा करने लगा । मंदिरके आंगनमें झाडबुहारी करता, और छनी हुई मिट्टीसे चहुं ओर लीपकर नाना प्रकारके सुंदर मंडल पूरता था । दिन-भर उसको यही काम रहता था इस लिये उसने उस स्मशानभूमिको रंगभूमि बना दिया कि जिसकी शोभा निरख सब मोहित होते थे । अपने पापोंको निवृत्त

---

१ दोषाकर अर्थात् दोषोंका भंडार–यहां कायस्थ और कलानिधि (चंद्र) की समानता दर्शाई है । कायस्थमें भी कलाएं हैं और तैसेही चंद्रमामें भी । कायस्थ दूसरोंको नष्ट करते हैं तैसेही चन्द्रमा स्वयं क्षय रोगी है । कायस्थ दिन २ वृद्धिको प्राप्त होते है तैसेही चन्द्रमाभी वृद्धिको लब्ध करता है । कायस्थ दोषोंका भंडार है और चंद्रमा दोषा (रात्रि) करनेवाला है । कायस्थकी १६ कला है और चन्द्रमाकी भी १६ कला हैं ।

२ सर्वत्र शंकरके लिंगकी पूजा की जाती है परन्तु कहीं २ मूर्ति होती है तैसेही यहां थी ।

करनेके लिये उसने वर्षोंतक निरन्तर दिनरात जागरण कर स्तोत्र, पाठ, जप, तप, गीत, वाद्यसे शंकरकी श्रद्धापूर्वक भक्तिकी । 'अगडवम् अगडवम् नाचे सदाशिव ओंकारा' इत्यादिक अनेक भजन वह प्रेमपूर्वक गाया करताथा । इस प्रकार सेवा करते २ अनेक दिवस व्यतीत होनेके उपरान्त भक्ति और श्रद्धासे की हुई उसकी चिरकालीन सेवाकी ओर दृष्टिपात् कर एक दिवस महादेव इस प्रकार कहने लगे "वत्स ! जो कुछ तुझे मांगना हो सो निःसंकोच मांग मैं तेरी अटल भक्ति देखकर तुझसे प्रसन्न हुआ हूं ।" शंकरके मुखारविन्दसे ऐसे अन्तिम शब्द निकले त्योंही, महादेवके कंठमें शोभित रुंडमालामेंके एक कायस्थके कपालने झटपट शंकरके मुखको दबाकर संकेत (इशारा) किया तो उस मंदभागी जुआरीके कर्मके आगे पत्थर आगया—भोले शंकर बोलते २ रहगये और आगे जो कुछ कहनेवाले थे उस को होठ में से मुखमें लेकर पेट में उतार गये । थोडे समय पीछे जब वह जुआरी स्नान ध्यान करनेको चलागया तब शंकरने इधर उधर दृष्टि फैलाई तो देखा कि कोईभी नहीं है । ऐसे एकान्तमें गंगाकी तरंगोंकी नाईं अपने दसनोंकी आभा फैलाते हुए महादेव बोले.—"अरे रुंडमालमें के कपाल ! यह जुआरी बहुत कालसे यहां रहकर निरन्तर मेरी सेवा करता है उसकी निष्कपट भक्ति और पूर्ण प्रेमभाव देख कर मैं उसको वर देनेको सन्नद्ध हुआ उस समय तूने मेरे कंठ दबाकर मुझे वर देनेसे रोका इसका क्या कारण है ? सो तू कह" । यह सुनकर शंकर के तृतीय नेत्राग्नि की ज्वालाके विद्यमान होते हुए भी, मुकुटमें विराजनेवाले चन्द्रमासे झरते हुए अमृतका पानकर सजीव हुआ वह कपाल ईषत् हास्य करता हुआ इस प्रकार कहने लगा:—

"महाराज ! आप स्वभावसेही अत्यन्त भोले हो इसीसे लोग आपको भोला शंभू कहते हैं, इस कारण आपसे मेरी विनती थी और इस लिये मैने आपको बोलते हुए रोका था । जो कि अपने ऊपरवाला अपने आधीन हो तोभी कौन मनुष्य है जो स्वतंत्र रीतिसे अपने ऊपरवालेको बोध दे सकता है ? यह जुआरी अत्यन्त दुःखी है, दारिद्रताके कारण अपना सब कामकाज छोड बैठा है, और आपके देवालयमें धूपदीपसे आपकी पूजा करता है; परन्तु आप उसको जानते हो ? पहचानते हो ? महाराज ! ऐसे दारिद्री मनुष्य अपने शिरपरका

संकट जैसे बने वैसे दूर करनेके लिये किन २ लक्षणोंसे युक्त होते हैं सो जाननेके लिये आपको दरिद्रीकी बारह प्रकारकी कलाएं कहता हूं।''

दरिद्री की द्वादश कला।

(१) जो मनुष्य दुःखी होता है सो तपस्वी होता है। (२) दरिद्री होता है सो सबको मान देता है और आदर सत्कार करता है—अत्यन्त नम्रता प्रगट करता है। (३) जो मनुष्य अपने अधिकारसे च्युत अथवा निर्धन हो जाता है वह सबको पहले प्रणाम करता है, (४) मीठा बोलता है, (५) देव और ब्राह्मणकी पूजा करता है, और (६) गुरुको नमस्कार करता है। (७) निर्धन मनुष्य अपने साधारण मित्र वा परिचित जनको देखतेही लम्बा हो नमस्कार कर प्रेमसे मिलता है। अग्निकी प्रज्वलित ज्वालामें पड़ी हुई लोहश-लाकाकी नाईं सन्तापसे तप्त अन्तःकरणवाले (८) दुर्बल लोगोंको अपनी इच्छानुसार चाहे जैसे रख सकते हैं, (९) वे सब के साथ नम्र स्वभाववाले और मृदु रहते हैं. (१०) सदा सदाचार पालन करते हैं (११) कार्यके लिये बहुत लालसा दर्शाते हैं और (१२) लल्लूपन भी करते हैं''।

''इस वार्ताको एक ओर रखकर, निज वैभव—मदोन्मत्त जनोंकी ओर आप दृष्टिपात करेंगे तो आप इसके सर्वथा विरुद्ध देखेंगे। क्यों कि वे किसीकी ओर दृष्टिप्रसाद नहीं करते—प्रेम भावसे किसीको नहीं देखते तो पूजन अर्चनकी कथाही क्या? दया दानका तो नामही नहीं जानते, नम्रता के साथ जन्मवैर है, और ईश्वरको पहचानना तो ब्रह्माण्डको पहचाननेकी बात है।''

'' महाराज! इस मनुष्यकोभी श्रीमानोंकी श्रेणीमें बैठानेवाले वैभवकी बडी आशा है। यह उसी आशाफांसका अवलम्बन कर आपकी सेवा श्रद्धापूर्वक करता है। ज्योंही आपने प्रसन्न होकर उसे वैभव दिया त्योंही वह ऐसे पलायन कर जायगा, मानो यहां कभी थाही नहीं। जिनको केवल अपनेही स्वार्थकी चिन्ता होती है वे सेवक सदा अपना अर्थ साधनेमें तत्पर रहते हैं और जब उनको धन मिल जाता है—उनकी इच्छा पूरी हो जाती है तब वे फलदायक नहीं होते, अपना स्वार्थ सिद्ध होनेपर ऐसे सेवकोंको अपने कर्त्तव्य कर्मका ध्यान नहीं रहता। इसलिये ऐसे सेवकोंसे सुखप्राप्तिकी आशा करना निरर्थक है,

वे अपने ऊपर किये उपकारको उपकार समझ सेवा नहीं करते । क्योंकि इस जगत्में सफल–मनोरथ मनुष्य अन्यकी स्पृहा नहीं करता, किन्तु स्वयम् स्वतंत्र होकर रहता है, कारण यह कि पराधीनता अति विषम है । ऐसेही आपकी प्रदत्त लक्ष्मीको प्राप्तकर यह जुआरी भी आपकी सेवाको त्याग स्वाधीन हो अपने घर चला जावेगा । जब यह अपने घरको चला जायगा तब इस निर्जन–एकान्त वनमें आपके मंदिरमें कोईभी धूप ध्यान नहीं करेगा, न कोई भोग सामग्री लावेगा और न इस देवालयको दिव्यस्थान बना रक्खेगा । इस कारण आप इस जुआरीको ऐसी ही दशामें रहने दीजिये कि जिससे सुख सम्पत्तिकी आशाफांसमें बंधा हुआ यह आपकी सेवा करता रहे यदि आप प्रसन्न होकर इसको वर प्रदान करते हैं, इसको आनन्दित करते हैं तो भविष्यत्में आपकी ही पूजा बंद होनेका यह एक बडा कारण होगा । समझ बूझकर अपने पैरमें कुल्हाडी मारना बुद्धिमानी नहीं है ।"

उस रुंडमालस्थित कपालका बहुत वक्र भाषण सुनकर शंकर आश्चर्यसे हंसने लगे और उसको पूछा "तू कौन है ? सो सच २ कह" यह सुनकर सद्भाव-प्रदर्शक कायस्थका कपाल कुछ विचार करके बोला कि "मैं मगध देशका रहनेवाला हूं, और कायस्थ–कुलमें मेरा जन्म हुआथा । मैं अपने कुलधर्मके विरुद्ध आचरण करने लगा अर्थात् ढोंगके धर्मको छोड दिया; नीतिसे वर्त्तना आरम्भकर अनीतिका अनादर कियाथा । जप, तप और व्रतादिकमें मेरी बहुत निष्ठाथी । सम्पूर्ण शास्त्रोंका अर्थ और मर्म मैं भली प्रकार जानताथा । अपने जीवनके अन्तमें मैंने श्रीगंगाजीके पवित्र तटपर अपनी देह त्यागी और तब आपकी सेवामें प्रविष्ट हुआ । अब मैं आपके पास अत्यन्त आनन्दमें रहता हूं । " भगवान् आशुतोष यह सुनकर बोले कि " तू सचमुच कायस्थ-कुलमें उत्पन्न हुआ है–तू सच्चा कायस्थ बच्चा है; क्योंकि तेरी अप्राप्य देहका सारे अवयवों सहित नाश होने पर अब कपाल मात्र शेष रहा है तोभी तैंने अपनी और अपने कुल की कपटकलाको नहीं छोडा, यही मुझको अचंभित करता है।" ऐसे कहकर शंकरने हास्यकी श्वेत किरणावलिके कारणसे उस दरिद्रीकी आशाल-ताको सफल करते हुए, जब वह आया तो, कपटी कायस्थके कपालके समक्ष,

उसको सर्वसुख वैभव प्रदान किया। और अपनी कपालमालामेंसे कुटीचेर कपालको निकाल बाहर किया; क्योंकि वह ईर्षासे भराहुआ और दूसरेका अभ्युदय देखनेमें असमर्थ तथा कपटकलामें धुरंधर था।

हे शिष्यो! तुम सब इसको भली प्रकार ध्यानमें रक्खो कि कायस्थ लोग केवल अस्थिमात्र शेष रहे हों, तोभी वे मनुष्योंको क्षय करनेवाली यमराजकी डाढकी नाईं अपनी मलीन और मनुष्यमर्दनी कपटकलाको नहीं छोडते अर्थात् मर जाने परभी कुटिल कर्म करनेसे हाथ नहीं खैंचते। मरते २ भी कायस्थ दूसरोंको कठिन कष्टमें डाल जाता है। वह मरा हुआभी कुटिलताको नहीं छोडता। इस विषयकी एक कथा है सो तुम चित्त लगा कर सुनो॥

मरे हुए कायस्थने जीते हुये ब्राह्मणको खाया।

बहुत वर्षों पहले उज्जयनी नाम नगरीमें देवदत्त नामका एक नागर ब्राह्मण रहता था। वह राजकाजमें अति निपुण और दरबारकी कपटकलाओंमें कुशल था। कायस्थ कुलोद्भव कृष्णवर्मा नामक मनुष्य उस ब्राह्मणका परम मित्र था, इस कायस्थने अपनी संपूर्ण कलाओंका अध्ययन देवदत्तको कराया था। एक प्रसंगपर वहांके राजाने कृष्णवर्माको कोई सन्देशा देकर काश्मीरके राजाके पास भेजा तब वह अपने मित्र देवदत्तकोभी अपने साथ ले गया। काश्मीर मोहिनीसे भराहुआ कामरूदेश है वहां अनेक प्रकारके लालच बसते हैं। जिस कार्यके लिये ये वहां गये थे उसको करनेके पीछे दोनों वहां ही रहे; और राजद्वारी कपटकलामें कामिल होनेसे कृष्णवर्माने अल्प कालहीमें पुष्कल द्रव्य संग्रह किया; तैसेही देवदत्तने भी थोडासा धन संचय किया। कुछेक मास व्यतीत होनेपर यमराजके यहां कृष्णवर्माकी आवश्यकता हुई; मृत्युके प्रेरण किये ज्वरने उसपर आक्रमण किया और वह शीघ्रही अन्तसमयकी अनी पर आ पहुंचा। देवदत्त अपने जातिस्वभावसे दयालु और निष्कपट था; ऐसे कठिन समयमें वह अपने मित्रकी पूरी २ टहल करने लगा, और किसी प्रकारसे भी उसकी सेवामें कसर नहीं रखता था। निदान कृष्णवर्मा सन्निपातसे संतत हो मृत्युसमयके दुःखका अनुभव करने लगा

---

१ ईर्ष्यालु। २ नोक।

वे अपने ऊपर किये उपकारको उपकार समझ सेवा नहीं करते । क्योंकि इस जगत्में सफल—मनोरथ मनुष्य अन्यकी स्पृहा नहीं करता, किन्तु स्वयम् स्वतंत्र होकर रहता है, कारण यह कि पराधीनता अति विषम है । ऐसेही आपकी प्रदत्त लक्ष्मीको प्राप्तकर यह जुआरी भी आपकी सेवाको त्याग स्वाधीन हो अपने घर चला जावेगा । जब यह अपने घरको चला जायगा तब इस निर्जन—एकान्त वनमें आपके मंदिरमें कोईभी धूप ध्यान नहीं करेगा, न कोई भोग सामग्री लावेगा और न इस देवालयको दिव्यस्थान बना रक्खेगा । इस कारण आप इस जुआरीको ऐसी ही दशामें रहने दीजिये कि जिससे सुख सम्पत्तिकी आशाफांसमें बंधा हुआ यह आपकी सेवा करता रहै यदि आप प्रसन्न होकर इसको वर प्रदान करते हैं, इसको आनन्दित करते हैं तो भविष्यत्में आपकी ही पूजा बंद होनेका यह एक बडा कारण होगा । समझ बूझकर अपने पैरमें कुल्हाडी मारना बुद्धिमानी नहीं है ।"

उस रुंडमालस्थित कपालका बहुत वक्र भाषण सुनकर शंकर आश्चर्यसे हंसने लगे और उसको पूछा "तू कौन है ? सो सच २ कह" यह सुनकर सद्भाव-प्रदर्शक कायस्थका कपाल कुछ विचार करके बोला कि "मैं मगध देशका रहनेवाला हूं, और कायस्थ—कुलमें मेरा जन्म हुआथा । मैं अपने कुलधर्मके विरुद्ध आचरण करने लगा अर्थात् ढोंगके धर्मको छोड दिया; नीतिसे वर्त्तना आरम्भकर अनीतिका अनादर कियाथा । जप, तप और व्रतादिकमें मेरी बहुत निष्ठाथी । सम्पूर्ण शास्त्रोंका अर्थ और मर्म मैं भली प्रकार जानताथा । अपने जीवनके अन्तमें मैने श्रीगंगाजीके पवित्र तटपर अपनी देह त्यागी और तब आपकी सेवामें प्रविष्ट हुआ । अब मैं आपके पास अत्यन्त आनन्दमें रहता हूं । " भगवान् आशुतोष यह सुनकर बोले कि " तू सचमुच कायस्थ-कुलमें उत्पन्न हुआ है—तू सच्चा कायस्थ बच्चा है; क्योंकि तेरी अप्राप्य देहका सारे अवयवों सहित नाश होने पर अब कपाल मात्र शेष रहा है तोभी तैंने अपनी और अपने कुल की कपटकलाको नहीं छोडा, यही मुझको अचंभित करता है।" ऐसे कहकर शंकरने हास्यकी श्वेत किरणावलिके कारणसे उस दरिद्रीकी आशाल-ताको सफल करते हुए, जब वह आया तो, कपटी कायस्थके कपालके समक्ष,

उसको सर्वसुख वैभव प्रदान किया। और अपनी कपालमालामेंसे कुटीचर कपा-
लको निकाल बाहर किया; क्योंकि वह ईर्षासे भराहुआ और दूसरेका अभ्युदय
देखनेमें असमर्थ तथा कपटकलामें धुरंधर था।

हे शिष्यो! तुम सब इसको भली प्रकार ध्यानमें रक्खो कि कायस्थ लोग
केवल अस्थिमात्र शेष रहे हों, तोभी वे मनुष्योंका क्षय करनेवाली यमराजकी
डाढकी नाई अपनी मलीन और मनुष्यमर्दनी कपटकलाको नहीं छोडते अर्थात्
मर जाने परभी कुटिल कर्म करनेसे हाथ नहीं खैंचते। मरते २ भी कायस्थ
दूसरोंको कठिन कष्टमें डाल जाता है। वह मरा हुआभी कुटिलताको नहीं
छोडता। इस विषयकी एक कथा है सो तुम चित्त लगा कर सुनो॥

मरे हुए कायस्थने जीते हुये ब्राह्मणको खाया।

बहुत वर्षो पहले उज्जयनी नाम नगरीमें देवदत्त नामका एक नागर ब्राह्मण
रहता था। वह राजकाजमें अति निपुण और दरबारकी कपटकलाओंमें कुशल
था। कायस्थ कुलोद्भव कृष्णवर्मा नामक मनुष्य उस ब्राह्मणका परम मित्र था,
इस कायस्थने अपनी संपूर्ण कलाओंका अध्ययन देवदत्तको कराया था। एक प्रसं-
गपर वहांके राजाने कृष्णवर्माको कोई सन्देशा देकर काश्मीरके राजाके पास भेजा
तब वह अपने मित्र देवदत्तकोभी अपने साथ ले गया। काश्मीर मोहिनीसे भरा-
हुआ कामरूदेश है वहां अनेक प्रकारके लालच बसते हैं। जिस कार्यके लिये ये
वहां गये थे उसको करनेके पीछे दोनों वहां ही रहे; और राजद्वारी कपटकलामें
कामिल होनेसे कृष्णवर्माने अल्प कालहीमें पुष्कल द्रव्य संग्रह किया; तैसेही देव-
दत्तने भी थोडासा धन संचय किया। कुछेक मास व्यतीत होनेपर यमराजके
यहां कृष्णवर्माकी आवश्यकता हुई; मृत्युके प्रेरण किये ज्वरने उसपर आक्रमण
किया और वह शीघ्रही अन्तसमयकी अैनी पर आ पहुंचा। देवदत्त अपने जाति-
स्वभावसे दयालु और निष्कपट था; ऐसे कठिन समयमें वह अपने मित्रकी पूरी २
टहल करने लगा, और किसी प्रकारसे भी उसकी सेवामें कसर नहीं रखता था।
निदान कृष्णवर्मा सन्निपातसे संतप्त हो मृत्युसमयके दुःखका अनुभव करने लगा

१ ईर्ष्यालु। २ नोक।

और बहुतेरे हाथ पांव पीटे परन्तु उसका जीव नहीं निकला । देवदत्तने कहा कि "भाई ! तेरा सब द्रव्य निःसंदेह तेरे कुटुम्बवालोंको पहुंचता करूंगा, इस बातका तू तनिक संशय मत कर । इसके सिवाय तेरे पुत्र पत्नी आदिका पालनभी मैं भली प्रकार करूंगा ।" परन्तु उसने कुछ उत्तर नहीं दिया । उसके मनमें एक मात्र यही संशय रहा कि मेरे इस द्रव्यकी क्या दशा होगी ? यह सबका सब मेरे पुत्र और कलत्रको मिलेगा कि नहीं ! इसी एक बातमें जीव अटक रहा था । देवदत्तके धीरज बंधानेसे वह कुछ शान्त हुआ तोभी उसका शरीर नहीं छूटा । अन्तमें उसने आधे २ और टूटेफूटे शब्दोंसे कहा "भाई ! जो तू मेरी एक इच्छा पूर्ण करे तो सुखसे मेरा प्राण निकल जाय । मेरे मरनेके पीछे जो तू मेरी गुदामें एक मेख ठोकनेका वचन दे तो अभी मेरी मृत्यु हो जाय ।" अपने मित्रकी अन्त समयकी कामना पूरी करना अपना धर्म समझ भोले ब्राह्मणने तैसाही करना स्वीकार किया । ज्योंही देवदत्तने कहा कि "जो तेरे कहनेके अनुसार नहीं करूं तो तेरा दामनगीर होऊं" त्योंही उसका देहान्त हो गया । अपने मित्रके साथ की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार देवदत्तने मृत मित्रके मलद्वारमें एक खूंटी ठोंक अपना वचन पूरा किया । तदनन्तर देवदत्तने उसके शवकी दाहक्रिया करनेकी तैयारीकी और देशपरिपाटीके अनुसार मृत कृष्णवर्माको स्मशानभूमिकी यात्रा कराई । वहां दाहसे पहले शवको स्नान कराते समय उसके मलद्वारमें एक मेख फंसी हुई दृष्टि पड़ी जिससे खांदियोंको यह संशय हुआ कि वह मौतसे नहीं मरा किन्तु धनके लालचसे देवदत्तने उसकी हत्या की । स्मशानभूमिसे लौटकर उन्होंने अपने मनमें उत्पन्न हुई आशंकाको राजदरबारमें प्रगटकी । पुरपतिने इस बातका अन्वेषण करना आरम्भ किया और देवदत्तको कारागारमें डेरा कराया । विचारे ब्राह्मण देवदेत्तने अपने बचावमें जो कुछ घटना हुई थी सो सब सत्य २ कह सुनाई परन्तु जो कुछ उसने कहा वह सर्वथा अमान्य रहा क्यों कि इस प्रकारका कार्य करनेको कोई कहै ऐसा सम्भव नहीं । देवदत्तके वचनों परसे अनुमान किया गया कि उसने द्रव्यके लिये अपने मित्रके प्राण लिये, परन्तु अब अपनी रक्षाके लिये बात फेरता है इस कारण वह दंडनीय समझा गया और शूलीपर चढाकर उसके मित्रके पीछे २ भेजा गया ।

इस प्रकारसे मृत कायस्थने जीवित नागरको भक्षण कर लिया ।

निरन्तर अपवित्रतासे कलाओंको कलंकित करनेवाले, अधर्माचरण करनेवाले और नरककी घोर यातनाका यहीं अनुभव कराने वाले कायस्थ लोगोंकी चालाकीसे कौन मनुष्य बच सकता है ? जो मनुष्य मयादि दानवोंकी माया और कुटिल कलाओंका भेद जानकर इनके छंदोंको पहचानता है वह बुद्धिमान् पुरुष रत्नोंसे परिपूर्ण सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने आधीन करता है ऐसा समझना चाहिये ।

वत्स चन्द्रगुप्त ! मैंने कायस्थकी कुटिलताका वर्णन तुझको सुनाया इसमें जुआरीका प्रसंग आया है वह अवश्यही जाननेके योग्य है । जुआ खेलनेवाले लोग आकाश पातालकी बातें करके मनुष्यको ललचाते हैं और उनकी निजकी भी कलाएँ होती है कि जिनको जाननेवाला इन ठगोंसे नहीं ठगा जाता । इस लिये उन कलाओंका भेद तुझे बताता हूं सो तू ध्यान देकर सुन ।

जुआरी की षोड़श कला।

(१) द्रव्योपार्जन करना बड़ी बात नहीं ऐसे कहकर दूसरे मनुष्यको ललचाना (२) जुआ खेलनेके समय पहले स्वयम् हारजाना और साथवाले खिलाडीको जिताकर लोभी बनाना, (३) चार प्रकारके खेल सीखना [१ पासा चौपड २ पाना पत्ते–ताश गंजफा ३ पैसे फेंकना ४ और लंका दुवा खेलना](४) कृत्रिम पासा बनाना तथा उनको गुप्त रख समयपर बदल लेना (५) हथेली में खड्डा कर उस में कौडियां रखना (६) बिलाव, मूषक और नकुल आदि जंतुओं को पालना, पढाना और उन को पासा बदलने की कला सिखलाना[१] (७) राजाओं को द्यूतक्रीडा सिखाने की कला (८) दीपकको निवारण (बुझाने) करने व घबराने की कला, (९) पकडे जाने पर धूल डालने, भागने कूदने और समझाने की कला[२] (१०) पुष्कल द्रव्य प्राप्त होने पर उस को

---

१. जब कभी राजपुत्र गणिका के यहां जाते हैं तब इस कला की आवश्यकता पड़ती है। गणिका के पास यह कला होती है।

२. भद्र नाम के जन्तु होते हैं उनको जुआरी और चोर अपने पास रखते हैं। जब जुआरी का इच्छित दाव नहीं आता तब वह इस जन्तु को छोडता है। इस का यह स्वभावही है कि छूटते ही दीपक पर जाकर बैठता है और उसे बुझा देता है। इतने में जुआरी अपना दाव साध लेता है।

अन्य जुआरियोंसे बचाने की कला (११) पकडा नहीं जा सके ऐसी चतुराईसे बात चीत करना (१२) हार जाने पर द्रव्य नहीं देने की कला (१३) आदि से अन्त तक हार हो तोभी खेलना (हारा जुआरी दूना खेले)। (१४) पासा फेंकने की कला (जिस मे मनोवाञ्छित पासा पडे)—मुट्ठी भरने की कला (१५) लडाई झगडा कर, उठ जाने की कला (यदि कोई तीसरा मनुष्य जुआ खेलने को आवे तो उस समय अपनी जीत या हार पर दाव होतेभी सिद्ध साधक होने की कला) (१६) उदारचित्त होने की कला । इन के सिवाय बहुतसी अन्य कलायें होती हैं । जैसे कि हर्ष या विषाद नहीं करना (जय पराजय को प्रारब्धाधीन मानकर); क्रोध व्यापना और शान्त होना (कार्य सिद्ध न होने से क्रोध व्याप्त हो परन्तु कार्य सिद्ध होने पर क्रोध शान्त हो जाय); बुद्धिप्रसार करना (चौसर आदि खेलने से चतुराई—सयानप आती है) एकलीनता (पत्ते चौपड खेलते समय सम्पूर्ण इंद्रियां एकतार होती हैं), साहसिक कर्मों में प्रीति (लाखों का दाव खेलते, घरबारको हारते, अन्त में स्त्री कोभी दाव पर धरते विचार नहीं करना); और हृष्टपुष्ट बनना (उदारता से)। लोग डरते रहैं (जुआरी क्रूर होते हैं इस कारण उन के साथ सम्बन्ध होने से कुछ अपमान न कर बैठें, पुरुषत्व का अभिमान, पर अन्तःकरण की बात जानने की सयानप, विलक्षण औदार्य (कमाते ही चुका देना, अथवा दूसरेको आवश्यकता हो तो दे देना), विचक्षणता, (वस्तु प्राप्त करना, रक्षण करना, उपभोग करना; भोगे हुए पदार्थ का न स्मरण करना, न सन्ताप) क्रुद्ध जन को समझाने की कला, वाक्चातुर्य कि जिस से मित्रों और सम्बंधियों में श्रेष्ठ होवें ।

---

१ मृच्छकटिक नाटकमें यह कला है । सभिक, मापुर और संवाहक तीनों खेले उन में से तीसरा हार गया । उसने एकको देखकर कहा कि तू आधा छोड दे और उसने हां भरी तब दूसरे को कहा कि तू आधा छोड दे तो उसनेभी स्वीकार किया । दोनोंने आधा छोडने की हां भरी और उस ने कहा कि दो आधे छोड दिये इस लिये कुछ नहीं रहा—जाओ राम राम ! !

२ धर्मराय युधिष्ठिर नेभी द्रौपदी को दाव पर धरी थी ।

षष्ठः सर्गः।

मद्वर्णन।

रात्रि देवी के आगमन करतेही सम्पूर्ण शिष्यमण्डल आ उपस्थित हुआ। देश देशान्तरोंसे आये हुए बहुतसे छोटे और बडे धूर्त वहाँ स्थित हुए मूलदेव की मार्गप्रतीक्षा कर रहे थे। कुछ देर पीछे धूर्त्तताकी ध्वजा धारण करनेवालों में सर्व श्रेष्ठ मूलदेव आडम्बररहित वहां आकर अपने आसन पर विराजमान हुआ। उसने वहां आकर बहुतेर धूर्तोंकी शंकाओंका सम्यक् समाधान करके उनको तो विदा किये; परन्तु और कईएक जो उसके पुराने २ छात्र थे सो वहीं बैठे रहे। तब मूलदेव ने चंद्रगुप्तको संबोधित कर उपदेश देना आरम्भ किया।

मूलदेव ने कहा "चन्द्रगुप्त! तू जानता है कि मद[1] नामका एक परम शत्रु मनुष्योंके अन्तःकरण में निवास करता है? इस शरीरमें मद का प्रवेश होने से कोई मनुष्य किसीकी कुछ नहीं सुन सकता, ऐसेही सार असार पदार्थ को नहीं देख सकता और न उसको किसी बातका विवेक होता है; किन्तु मूर्खकी नाईं विचारशून्य बन जाता है। सतयुगमें जो दम (इन्द्रियनिग्रह) नामका एक पदार्थ आत्मज्ञानियों में रहता था, उसने आधुनिक काल में मद (उन्मत्तता) का रूप धारण किया है। इस प्रकार उलटी आकृतिसे विरूप बनकर, यह इस कलिकाल में सर्व मनुष्यों के साथ विपरीत भाव से वर्त्तता है। जैसे साक्षर[2] अपना रूप पलटकर राक्षस होता है और तब घोर संहार करता है तैसेही यह दमभी विरूपता को प्राप्त हो मद नाम धारण कर मनुष्योंको स्वाहा करता है। मौनी रहना, बोलते रहना, ऊर्ध्वदृष्टि रखना, नेत्र विलक्षण रखना, चन्दनादि सुगंधित पदार्थ शरीरमें चर्चना और रंगीन नवीन स्वच्छ वस्त्र धारण करना, यह मदका मुख्य रूप है। अब उसके अन्य भेद हैं सो कहता हूं।

---

१ जिन २ मदोंका वर्णन किया है वे सब मनुष्यको अपने स्वरूपमें मोहित करके नेत्रहीन कर छोडते हैं, ऐसा समझना चाहिये। २ विद्वान्।

शौर्यमद[1], रूपमद, शृंगारमद, और कुलोन्नतिमद[2] ये मद के चार विशाल वृक्ष हैं । मनुष्य जातिका इन वृक्षों के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है । इन सम्पूर्ण वृक्षों का मूल वैभवमद[3] है । वैभवमद शूली पर चढाए हुए अथवा वायुरोगसे पीडित–स्थिर हुए मनुष्य की नाई सदा सीधा खडा रहता है । वह ज्वर में उत्पन्न हुए सन्निपात की नाई अत्यन्त भ्रम उत्पादन करने वाला है । शौर्यमद वारम्वार अपना हाथ वताता है । नेत्र की पलक नहीं मारता (आंखें चढी रखता है) खंभ (भुजा) ठोकता है । लकडी फिराता है, और पृथ्वीतल पर किसी दूसरे को अपने सदृश बाणावली नहीं समझता । वह, 'लडो या लडने वाला बताओ' ऐसे कहनेवाले बाणानुरकी नाई सदा लडाई का अवसर देखा करता है । रूपमद वारम्वार दर्पणमें मुख देखनेवाला है । टापटीप करना, केश संवारना, मूंछ मरोडना, कपडे लत्ते ठीकठाक रखना ये उसे (रूपमद) के सहायक हैं । काममद स्त्री पर वारम्वार दृष्टि कराता है और विलासमद तो जन्मसे ही अंधा है । उसकी संगत करनेवाले तो दिनको भी नहीं देखते । धनमद अनुपम, अवर्ण्य, अनन्त सुख देता है । धनमदमत्त पुरुष एकान्तमें दिनभर आलसी की निन्दा किया करता है । मूर्खता-रूप मद अति विचित्र है जिस के किसी वस्तुका आधार नहीं, इसी ही कारण से उसे निराधार (आश्रयरहित) कहते हैं । परन्तु उसकी खूबी कुछ और ही है । वह मद अपना अवलम्ब रखनेवाले जनोंको गढे में गिरा देता है विचारशून्य कर देता है और निष्फलता आदि नामकी अनेक भयंकर भूलभुलैयोंमें भ्रमाता है । तपस्वीमद[4] पृथ्वीको ओर कदापि नहीं देखने देता किन्तु सदा गगनमण्डलकी ओर दृष्टि कराता है । भक्तिमद[5] आश्चर्य उत्पन्न कर देह का ज्ञान भुला देता है, क्योंकि वह चपल स्वभाववाला है । श्रुतमद[6] अतिशय कठिन और विलक्षण है । वह कोप प्रगटाकर नेत्रोंको लाल कर देता है और दूसरेकी वात नहीं सुनने देता

---

१ शूरवीरता का अभिमान । २ उच्च कुलमें उत्पन्न होने का अभिमान । ३ धन धान्यादि संपत्तिका बल ।

४ मैं तपस्या करता हूं–परम तपस्वी हूं ऐसे अभिमानसे मनुष्य अपनी दृष्टिको ऊपरहा रखता है । ५ परम भक्त होनेका अभिमान ।

६ पंडित होनेका–सकल शास्त्र अवलोकन कर चुकनेका अभिमान ।

किन्तु आपही बकबकाहट किया करता है। वह (श्रुतमद) वात पित्त और कफ इन तीनों को क्षोभ उत्पन्न करनेवाला होता है। सत्तामद नाम का एक मद और है। सत्तामदके आधीन मनुष्य अपने अधिकारके प्रताप से मत्त होकर सदा भृकुटी चढाए रखता है, किसी को बुलानेके समय कटुवचन कहता है, किसी को उसके पद परसे च्युत कर देता है और सबसे रिश्वत लेता है। वह अपने हाथमें एक गुप्त चाबुक रखता है जिस के द्वारा सबका शासन करता है। वह अधिकतर खुटाई करके यह प्रगट करता है कि मेरे सदृश भूमण्डलमें कोई नहीं अपने से श्रेष्ट को देखकर वह जलभुन जाता है और यदि कहीं उसके उत्तम गुणोंका कीर्त्तन सुनता है तो नाक भौंह सिकोड कर बात उडा देता है। इस कारण सत्तामद को क्रूर राक्षस जानना चाहिये। कुलमद जिस मनुष्य में निवास करता है उस को ज्ञानी, दीर्घसूत्री और अभिमानी बना देता है। कुलमदाश्रित जन अपने पुरुषाओंके प्रतापशाली चरित्रोंका बढावेके साथ वर्णन कर अपने सच्चे कर्त्तव्यमें चूक जाते हैं। जिस मनुष्य पर शुचिमद अपना अधिकार जमाता है वह किसी को भी नहीं छूता, स्वयम् दूर रहता और छूआछूतका बडा विचार रखता है। वह अपने व्यत्तिरिक्त अन्य किसी पदार्थ को पवित्र नहीं समझता इस कारण वह अधर चलता है। पृथ्वी पर तथा वायुमण्डल में भी अपवित्रता की उत्कट आशङ्का से अपने अंगको संकुचित कर गमन करता है।

उपरोक्त सम्पूर्ण मदवृक्षों का एक दिन अन्तसमय आता है कारण यह कि उनके मूल नष्ट होते हैं तबही वे भी नाशको प्राप्त हो जाते हैं क्योंकि "मूलम् नास्ति कुतः शाखाः"। परन्तु वरमद अतिकुटिल और भोगशाली है कि जो निरन्तर अपना प्रकाश ही किया करता है। पानमद अधम कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाला है, वह निंदा का भाजन और मोहका उत्पादक है। इस मदकी आयु तो क्षणिक ही है अर्थात् यह अधिक देर तक नहीं ठहर सकता, परन्तु जब वह प्रगट होता है—अधिकार पाता है तब अति श्रमपूर्वक चिरकाल अभ्यासित सत्स्वभाव—सदाचरणको पल भरमें सर्वथा पददलित कर देता है।

मद्यमद अर्थात् लघु ताडी आदिक पान करनेसे उत्पन्न हुआ मद सर्वत्र समान दृष्टि कराता है—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' ऐसा समझाता है; स्वीय और पर में भेद नहीं करता; विद्वान्, मूर्ख, ब्राह्मण, चांडाल, गौ, गधी, सती, असती इन सब में

समानभाव से दृष्टि कराता है । मद्यमदोन्मत्त सुवर्ण और पीतल को एकही समझता है तैसेही हीरे और कंकर में भेद नहीं करता । वह सत्यासत्य विचार-शून्य—झूंठ सांच जाननेमें असमर्थ होनेके कारण नरक में निवास करनेवाला होता है ।यह मदिरामद विक्षिप्तकी नाईं कभी रुदन कराता है, कभी हास्य कराता है, कभी भयभीत करता है, कभी निर्भय करता है और कभी मूर्च्छित कर देता है; ऐसे नाना प्रकार की चेष्टाएँ कराता है ।

इस कारण मदिरामद पुरुष को, संसाररूप दर्पण के एक प्रतिबिम्बसदृश समझना चाहिये; क्योंकि अपार संसार में यावन्मात्र चारित्र दृश्यमान हैं तावन्मात्र चरित्र मत्तपुरुषके शरीर में दृष्टिगत होते हैं । मद्यमदोन्मत्त जन, परपुरुष को चुम्बन देने का प्रेम प्रगट करती हुई अपनी प्रियाको लाल २ नेत्र करके देखते हैं परन्तु अपने अन्तःकरण में कुछ भी कल्मष नहीं लाते इस लिये क्या उनको संन्यासी जानना ? कदापि नहीं । उनको तो अतिशय भ्रष्ट और संज्ञारहित जानना चाहिये क्योंकि वे नग्न होकर हथेली में भरे हुए मूत्र में चन्द्रप्रतिबिम्ब को गिरा देखकर उस (मूत्र) का पान कर यह समझते हैं कि हमने चन्द्रमा का पान किया ! ! अस्तु उन की भ्रष्टता सीमा रहित है ।

३२ मदलक्षण-कला ।

१ दम[1] से मद होने की कला २ शूरवीरता प्रगट करनेकी कला ३ रूपगर्व-कला ४ शृंगारमद कला ५ उच्च कुलोत्पत्ति दर्शानेकी कला ६ वैभववर्णन कला ७ काममदकला ८ धनाढ्यता दर्शानेकी कला ९ मूर्खतारूप मदकला १० तपस्वी-मद कला ११ भक्तिमदकला १२ श्रुतमद कला १३ सत्तामदकला १४ कुलमद कला १५ शौचमदकला १६ वरमदकला १७ स्वगुणगान कला १८ पानमद कला १९ मदिरामदकला २० मत्त होकर अधर चलने की कला २१ निरंकु-शित दंड रखने की कला २२ दो नेत्र होते तीसरा नेत्र धरने की कला २३ अधिक बल सहित पद धरना २४ कान बहरे रखने की कला २५ तीन नेत्रों के होते नेत्रहीन रहने की कला २६ नेत्रों को लाल लाल रखने की कला २७ मौन-

---

१ दम अर्थात् इंद्रियोंको दमन करनेके गुण में अति अभिमानी होने का दुर्गुण प्रविष्ट होने से दम की विकृति होकर मदरूप हुआ ।

धारण करने की कला २८ मूछ पर हाथ फेरने की कला २९ स्थिर दृष्टि रहने की कला ३० मूर्ख होकर चतुरता दर्शाने की कला ३१ भूमि को धमधमाकर स्तम्भकी नाई सीधा रहने की कला ३२ निन्दापात्र होने की कला।

मदोत्पत्ति।

च्यवन मुनि और सुकन्या की कथा।

पूर्व समय में ऋषिप्रवर च्यवन मुनि वन में तप करते थे। एकान्त आश्रम में सर्वेश्वरके ध्यानमें मुनिसत्तम ऐसे लयलीन थे कि जिन को शारीरिक चिन्ता और व्याधि कुछ नहीं भान होती थी। सहस्रों वर्ष के उग्र तप के कारण से तापसेश्वर का शरीर मृत्तिकासे ढँप गया था, चारों ओर बाल्ू का ढेर लग रहा था, और शिर पर दर्भा जम गई थी। एक समय शर्याति राजा सपरिवार मुनिपुंगव के आश्रम की ओर आखेट के लिये चला गया। राजा की प्रिय पुत्री परमसुन्दरी गुणशीला सुकन्या भी उसके साथ थी। आश्रमके समीप ही राजाने डेरा डाल दिया। सुकुमार सुकन्या अपनी सहेलियों के साथ इधर उधर भ्रमण करती और पुष्प तोडती कुछ दूर निकल गई। आगे चलकर उसने एक मिट्टी का ढेर देखा। जब सुकन्या उसके समीप गई तो उस ढेरमें चमकते हुए तपस्वीके नेत्र दिखाई दिये, कन्याने पशुके नेत्र समझ कर उन (नेत्रों) के चमकते हुए भाग में बबूल के दो कांटे टोंच दिये जिससे तुरन्त उन में से रुधिर बहने लगा। ढेर में के प्राणीको नेत्रहीन करने के पश्चात् उस ने ढेर को बखेर दिया जिस में से मांस रहित केवल हड्डियोंके पंजररूप च्यवन मुनि प्रगट हुए। समाधि दूर हो गई, ध्यान छूट गया और ऋषिप्रवरके शरीरमें क्रोध समा गया। मुनि महाराज क्रुद्ध होकर शुष्क होठोंको हिलाते हुए मनहीमन विचारने लगे कि "किस ने मुझे नेत्रहीन कर दिया है ? अभी मैं उसे शाप देकर नष्ट कर डालता हूं" मुनि के निर्मल मानस में ऐसे संकल्प का उठना था कि तत्क्षण राजा के सम्पूर्ण सैनिक मनुष्योंके उदर फ़ूल कर ढोल होगये, मल मूत्र सब बंद होगया। अचानक व्याप्त आपत्ति से सेना को परम दुःखी देखकर सच्चरित्रशाली राजा ने मनन किया कि यहां निश्चय कोई ऋषि निवास करता है और सेना में से किसी मनुष्य के द्वारा उसका कुछ अपराध बनपडा है। अस्तु इस का पता लगाने के लिये उस ने इधर उधर अपने सेवकोंको

दौडाए । राजाकी आज्ञा पाकर सेवक दौडे और चटपट यह संदेश लेकर लौटे कि राजकुंवरीने ऋषिकी आंखों में कांटे खोंच दिये उस अपराध का यह फल है यह सुनते ही भयभीत नृपति ऋषि के समीप गया ।

सुकन्याने जब देखा कि मैंने बडा बुरा किया तो भयभीत हो थरथर कांपने लगी और गद्गद स्वरसे विनय करने लगी " महाराज ! मैं अपराधिनी हूं, मुझ अभागिनी से यह घोर पाप हो गया, अब चाहे मारिये चाहे बचाइये । हे मुनिराज ! अजानमें इस दासीसे आपको परम कष्ट पहुंचा यह दासी आपके चरणों की शरण है, कहिये क्या आज्ञा है? आप की यह सदा की किंकरी अब दूसरे का दासत्व कदापि नहीं स्वीकार करेगी " इसी अवसर में उसका पिताभी आपहुंचा और चरणों में गिर पडा । उसनेभी ऋषि की प्रसन्नता के हेतु अपनी पुत्री की बात को स्वीकार की और तापसेश्वर के साथ उसका विवाह कर दियां ।

तदनन्तर मुनिसत्तम अपनी वृद्धावस्था की ओर दृष्टि कर विचारने लगे कि अश्विनी कुमार की सेवा करके तरुणावस्था प्राप्त करना चाहिये क्योंकि इस अवस्था से इस नव यौवनाका रञ्जन नहीं हो सकेगा । ऐसा निश्चय करके अश्विनीकुमारों के समीप गये, और उनकी आज्ञानुसार रसायन औषधियोंका साधन करके तरुणत्व सम्पादन किया । इस उपकारके बदले अश्विनीकुमारों को यज्ञ में सोमरसपान करने का अधिकार दिया । सुरराज को जब यह भेद ज्ञात हुआ तो अत्यन्त क्रोध करके कहने लगा "मुनिराज ! आपको कुछभी सुधि नहीं । वैद्य अश्विनी कुमार देवताओंकी पंक्ति में बैठने के अधिकारी नहीं हैं क्योंकि वे देवश्रेणीसे च्युत किये हैं गए । इस कारण आपने जो उन को यज्ञभाग दिया, यह बहुतही अनुचित कार्य किया । आप अपने कार्य को पुनर्वार विचारकर उनसे सोमपानस्वत्व छीन लीजिये । इन्द्रके ऐसे कथनको सुनकरभी च्यवन मुनि एक के दो नहीं हुये और अपनी इच्छानुसार अश्विनीकुमारों को सोमरस का पान कराया । आज्ञा न मानने और अपमान करने के कारण से इन्द्र ने कुपित होकर मुनिपर वज्र प्रहार किया । तत्क्षणही, ऋषीश्वर ने गर्विष्ट इन्द्रके बाहुको जैसेका वैसा स्तम्भन कर दिया और देवराजके विनाशके हेतु कालिका—कृत्यारूप महाराक्षसी को उत्पन्न किया । इस (कालिका) का शरीर सहस्र योजन ऊंचा और चार २ वज्रजैसी एक २

१ इस कथामें थोडा फेर है इस कारण शर्याति की कथा देखिये ।

डाढथी, जिस से वह महाकालरूपी दीख पडती । च्यवन मुनि के संकल्प से प्रगट हुई वह राक्षसी इंद्र के शरीर में प्रवेश कर गई जिस से वह महा भयभीत हुआ और अनेक प्रकारकी पीडा भोगने लगा । निदान् व्याधियुक्त इन्द्र क्षमायाचना के लिये मुनि के पास गया और विनीतभाव से कहने लगा कि "मुनिराज ! मेरा अपराध हुआ सो क्षमा करो, आनन्दपूर्वक आप अश्विनी कुमारों को सोमपान कराओ, और कृपापूर्वक मेरा दुःख दूर करो ।" यह सुनकर करुणासिंधु च्यवन मुनि ने भयभीत इन्द्र को शान्त और निर्भय किया, उस के शरीर में स्थित कृत्या को बाहिर निकाला और उस का नाम 'मद' रखकर ये चार स्थान उसके निवासके लिये बतादिये—(१) जुआ, (२)स्त्री, (३) मदिरापान और (४) मृगया । इनके सिवाय वह अपनी इच्छानुसार अनेक अन्यान्य स्थानों में प्रवेशकर गया सो इस प्रकार——

मद का निवास ।

तदनन्तर उसने (५) स्तम्भकी नाईं स्थिर रहनेवाले गुणाभिमानी पुरुषों के हृदय में निवास किया, तैसेही धनमद में छक जाने से किसी दूसरे के साथ (६) संभाषण न करनेवाले पुरुषों के मौनत्व में, (७) वैभववाले लोगों की स्थिर दृष्टिमें, (८) धनाढ्य पुरुषों की भौंह पर; (९) दूत और पंडितों की जिह्वा पर, (१०) रूपवान पुरुषोंके दांत, वस्त्र और केशोंपर, (११) वैद्य के होठपर, (१२) यती, अधिकारी और जोसी (ज्योतिषी) के कण्ठ में, (१३) सुभटों के कन्ध पर, (१४) वणिकों के मन में (१५) कारीगरों के हाथ में (१६) विद्यार्थियों के गले में, (१७) ग्रन्थों के पत्रों में (१८) अंगुलियों की मरोड में (१९) तरुण स्त्रियोंके स्तनोंमें, (२०) श्राद्ध के योग्य ब्राह्मणों के उदर में, (२१) कासीदोंकी जंघाओं में (२२) हाथी के गंडस्थल में, (२३) मयूरके पिच्छ में (२४) और हंसों की चाल में उस ने निवास किया । इस कारण जहां २ उसने निवास किया है तहां २ वह स्वतः दर्शन देता है ! इस प्रकार वह अनेक विकारों से सबको मोहनेवाला महा दुःखदायक ग्रह निरन्तर सब प्राणियों के शरीर में प्रवेश कर उनको काष्ठ जैसे जड—स्थिर बनाता रहता है इस कारण मद का आश्रय कदापि नहीं लेना और मदोन्मत्त पुरुषों की संगति भी नहीं करना ।

सप्तम सर्ग ।

गायक वर्णन ।

रुपहरे रंग की चांदनी चारों ओर चकचकाहट कर रहीथी उस समय मूल-देव अपने गृह की अटारी में बैठा था । उसने अपनी कलाओं का उपदेश देने का यह अच्छा अवसर देख अपने शिष्य समुदाय को निकट बुलाया। तत्पश्चात् चन्द्रगुप्त को कहा "वत्स ! तुझ को गाना आता है वा नहीं ?" उसने शिर हिला कर उत्तर दिया कि "नहीं, महाराज।" मूलदेव बोला "अरे ! तू श्रीमन्त हो कर गाना नहीं जानता ! क्या तुझ को उसका प्रेम है ?" उसने कहा "गुरुदेव ! न तो मुझे गाना आता है, न मैं आज तक कहीं गाना सुनने को गया और न इस में मेरा प्रेम है।" धूर्तशिरोमणि ने कहा । "तब तो तू बडा भाग्यवान् होगा । तुझको गवैये बजवैये से सदा सावधान रहना चाहिये क्यों कि ये भी एक प्रकार के लुटेरे हैं जो धन वस्त्र पशु आदिक सब मोचन कर लेते हैं।"

मनुष्य जगत के सम्पूर्ण कार्यों को आरंभ कर धन से पूरे कर सकता है। निर्धन मनुष्य कोई कार्य नहीं कर सकता । कहा भी है कि "उत्त्थायन्ते विलीयन्ते दारिद्राणां मनोरथैः" (दरिद्री—धनहीन मनुष्यों के मनोरथ उठते हैं और बिला जाते हैं) । इस कारण इस लोक और परलोक के साधनभूत धन से बढकर जगत में दूसरा कोई पदार्थ नहीं । ऐसे अनेक कार्यों में सहायता देनेवाले, जगत के जीवनमूल धन को गवैये लोग लूट खाते हैं । ये लोग बडे २ धनाढ्यों को लूटते हैं, मध्यम स्थिति के मनुष्यों का द्रव्य हरण करते हैं और अधम पुरुष की सेवा करके उस से भी धन लेते हैं । गायक जन कृपण के धन को भी नहीं छोडते । जिस प्रकार से भ्रमर भरे हुए सरोवर के श्रेष्ठ कमलों का उपभोग करते हैं, साधारण कमलों पर गुंजार करते हैं, और थोडी सुगंधवाले पुष्प की सुगंध ग्रहण करते हैं; तैसे ही गायक लोग राज-सभा में विराजमान होते हैं; अवसर पाकर द्रव्य भी खर्च करते हैं, वस्त्रादिक भी देते हैं, महनत मजदूरी भी करते हैं और हा हा ही ही और आ आ ई ई

करने में भी तैयार रहते हैं । ये बडे आडम्बर से रहते हैं । ये अपने बाल फैलाकर मत्त हाथी की नाईं घूमते हुए चलते हैं, व्यभिचार करते हैं, मद्यपान करते हैं, इतना होने पर भी उन में एक ऐसी कला का निवास है कि समय पाने पर राजा को भी वे लूट खाते है । चोर तो अंधेरी रात्रिमें गुप्त रीतिसे चोरी करने को आते हैं; परन्तु गायक जन धोले दोपहर होहो कर के, सैकडों मनुष्यों को जता कर के 'पा पा ध ध नि नि ग ग म म सा । ध ध न न स स गा गा धा धा मा मा पा पा' कर सरगम को साथ कर बोलते हुए लूटते फिरते हैं । वे हाथ में मृदंग लेकर बहुत देर तक कुछ भी नहीं बोलते, परन्तु साम्हने के मनुष्य को अभिलाषी देखते हैं तो पीछे मुडकर, चहूं ओर फिर कर, गरदन के लटके कर मुख को आडा टेढा कर अनेक बार अंग को मोड करके नाना प्रकार के विकार प्रगट करते हुए गान करने लगते हैं । बीच २ में जब २ शब्द करने जाते है । वे लोग हा आ आ ई ई करके एक २ पद का वारम्बार आरम्भ करना प्रगट करते हुये मानके शब्दों को स्वीकारते जाते हैं । और अपने गान को तानते जाते हैं । ऐसे अनेक ढोंग करके दिन दिहाडे लोगों को लूट लेजाते हैं । धाडायत (डाकू) और गवैये दोनों समान हैं ।

इन धूर्त गवैयों को करोडों रुपये भी दिये जावें तो उनसे कोई उत्तम फल नहीं प्राप्त होता । उन के देने की अपेक्षा तो, कोई जल में आटा (पिसान) डाले और उसका एक कण भी मछली के मुखमें चला जावे उससे कुछ पुण्य अवश्य प्राप्त होता है; परन्तु इनके मुख में बहुत भी जानेसे कुछ फल नहीं होता । अति धनाढ्य कृपण मनुष्यों का धन अंधकारमय कोठारियों में गडा हुआ पडा है, उन धन के भण्डारों में गायन रूप चूहे अपना मुख फाड कर बैठे हैं; इस लिये जो कुछ उन में रक्खा जाता है सो चला जाता है—किञ्चिन्मात्र नहीं अटकता अर्थात् गवैये, कृपण और धनवान दोनों को बराबर लूटते हैं ।

गान करते समय ये लोग, दांत न दिखाई देवें इस प्रकारसे अपना मुख बंद-करके गाते हैं । जिस से भेडियाधसान की नाईं बिना समझे गाने के प्रेमी मूर्ख प्रसन्न होते हैं । इस लिये उन को गायक लोग लूट कर पीछे से उन का उप-हास करते हैं । इन लोगों के पास प्रातःकाल के समय हार बाजूबंद कंठे इत्यादि देखे जाते हैं परन्तु दोपहर हुए कि जुआरी लोग उन को अपने जाल में फंसा

कर वावा के वरावर नम्र कर छोडते है । गान करनेवाले मनुष्य अपने गान में गुँथे हुए वचनों के वाण से पशु रूप मूर्ख मनुष्य के प्राण रूप धन को हर लेते हैं । ये लोग वहुतसे ऐसे पद गाते हैं कि जिन में अर्थ, रस और अलंकार का लेश भी नहीं होता, केवल हा हा हीं हीं से ही भरे हुए होते हैं । स्वर और रस से रहित गीत गा करके ये लोग लक्ष्मीपात्र से क्षणेक में करोडों रुपये लूट लेते हैं यदि कोई उनका निरादर करे अथवा उन का गान मनोहर न हो तो 'वह मंगता क्या देगा?' ऐसे कहते हुए उदास होकर अपने घर को चले जाते हैं; और पीछे से उस की वहुत निन्दा करते हैं—उसका तिरस्कार करते हैं—"वह तो कुछ समझताही नहीं । जिस के नसीव में हो वह गान का मजा जाने । अरे भाई ! यह तो हुच है हुच ! गाना तो मानोही जहानवाशी हूरों का हुनर है, इन्द्र की अप्सराओं की माया है; उसका समझना क्या सहज वात है ?" इस प्रकार वहुत वडवडाते हैं । परन्तु यह (गायक) भला मानस सतस्वर और तीन ग्राम गतागम्य में यत्किंचित् भी नहीं समझता तो भी अपने तईं गान विद्या में इक्का और सव का उस्ताद समझता हुआ वडे ढोंग से नारदादिक का भी अनादर करता है । गवैयों के इस प्रकार कहने का कारण यह है कि हलके आर खल की संगत में रहनेवाली अपवित्र शोकातुर लक्ष्मी को ऐसा शाप है कि उसका उपभोग सदा गवैये लोग ही करेंगे । पुनः, विचार कर देखने से येही लोग विपय लीन और आनन्द उडाते हुए दृष्टि गोचर होंगे । वे भोजन छादन और विपय विलास में राजा की अपेक्षा भी दुगुना तिगुना द्रव्य व्यय करते हैं ।

जिस प्रकार सूर्य भगवान् मयूखावलि से सुशोभित हैं तैसे ही गवैये लोग भी ऐसी विचित्र द्वादश कला धारण किये फिरते हैं कि उनका भेद वेही जानैं अथवा यमराज जानै । वे अपने को नारद और तुंवरु के शिष्य प्रसिद्ध करते हैं इस लिये तुझको भी संशय होगा कि ऋषि भी ऐसे कपटी होते होंगे ।

गवैये के द्वादश मयूख ।

१ टेढी पगडी वांध, सलाम कर, उलटे गोडे वालकर वैठने की कला । २ साज मिलाने में विलम्व करने की कला । ३ हा आ आ ही ई ई में समय खोने की कला । ४ आत्मप्रशंसा (अपनी वडाई हांकने की) कला ।

५ सा री ग म प्रशंसा कला। ६ सीधा तिरछा होनेकी कला। ७ मुख मोडकर चेष्टा कर गाने की कला। ८ द्रव्यहरण कला। ९ धनिक की सेवा करने की कला। १० निर्धन जन द्रव्य न दें तो उन को निन्दने की कला। ११ दुर्व्यसनी होने की कला—कभी राजा और कभी भिखारी बनने की कला। १२ चुस्त और चटकीले वस्त्र और शृंगार धारण करने की कला।

गवैये की उत्पत्ति।

एक समय सुरराज इन्द्र महाराजने, बहुत दिवसके पश्चात् आये हुए नारद मुनि को पृथ्वीके राजाओंका वृत्तान्त पूछा तिस समय नारद मुनि कहने लगे—कि हे इन्द्र! पृथ्वी पर सर्व स्थलों में भ्रमण करते समय मैं ने देखा तो दान, धर्म और यज्ञ करनेवाले बहुतेरे जयशाली राजाओंकी लक्ष्मी आप के सदृश प्रकाशित देखने में आई। मृत्यु लोकके नरेन्द्र वैभव में आप की, वरुण की और कुबेरकी समानता करने के योग्य हैं। वे असंख्य यज्ञ करके आपके शतमख (सौ यज्ञ करनेवाले) नाम पर हंसते हैं।" यह सुनकर इन्द्रने पृथ्वी की मायाको लूटने के लिये मायादास, दम्भदास, वक्रदास, क्षयदास, हरणदास, चरणदास, प्रसिद्ध-दास और वाडवदास[1] इत्यादिक अति भयंकर पिशाचोंको भेजे। उन्हों ने अपने विकराल मुख में से गवैयों को उत्पन्न किये। ये गायक दशों दिशाओं में भ्रमण करके लक्ष्मीवानों की लक्ष्मी को लूटने लगे। इस में भी मुख्य करके राजलक्ष्मी का अपहरण करने लगे। नृपति गण अज्ञानवश गवैयोंके जाल में फंस कर अपनी विभूति को बढानेवाली लक्ष्मी, उनको प्रसन्नता पूर्वक देने लगे, इस कारण अल्प समय में ही उन के निर्धन हो जाने से यज्ञ करने की शक्ति उन में नहीं रही, और दान धर्म में भी न्यूनता करने लगे। इस का कारण यह कि ये कर्णपिशाच क्रूर गवैये गाने के बहाने कानद्वारा राजाओं के अन्तःकरण में प्रविष्ट होकर उन के मनको मोहित करते थे। ज्योंही राजा इन के फंदे में फंसते थे—इन के गानकी तान में मस्त होते थे त्योंही तुरन्त अपनी सम्पूर्ण लक्ष्मी उन के आधीन कर धर्म, दान, यज्ञ इत्यादिक का त्याग करते थे। ऐसे धर्मके प्रतापसे परिणाम में उन राजाओं के राज्य हाथ से निकल गये। इस कारण जो नृपति गायक पिशाचों को अपने राज्य में से बाहर निकालता है—उनका

१ ये सब मायावी, दंभी, क्षयरोगी, लुटेरे और अग्निस्वरूप से पृथ्वी पर बसे हैं।

कर बाबा के बराबर नम कर छोडते हैं । गान करनेवाले मनुष्य अपने गान में गुंथे हुए वचनों के बाण से पशु रूप मूर्ख मनुष्य के प्राण रूप धन को हर लेते हैं । ये लोग बहुतसे ऐसे पद गाते हैं कि जिन में अर्थ, रस और अलंकार का लेश भी नहीं होता. केवल हा हा ही ही से ही भरे हुए होते हैं । स्वर और रस से रहित गीत गा करके ये लोग लक्ष्मीपात्र से क्षणेक में करोडों रुपये लूट लेते हैं यदि कोई उनका निरादर करे अथवा उन का गान मनोहर न हो तो 'यह मंगता क्या देगा.' ऐसे कहते हुए उदास होकर अपने घर को चले जाते हैं;. और पीछे से उस की बहुत निन्दा करते हैं—उसका तिरस्कार करते हैं—"यह तो कुछ समझताही नहीं । जिस के नसीब में हो वह गान का मजा जाने । अरे भाई ! यह तो हुच है हुच ! गाना तो मानोंही जहानवाशी हूरों का हुनर है,. इन्द्र की अप्सराओं की माया है; उसका समझना क्या सहज बात है ?" इस प्रकार बहुत बडबडाते हैं । परन्तु यह गायक) भला मानस सतस्वर और तीन ग्राम गतागम्य में यत्किंचित् भी नहीं समझता तो भी अपने तईं गान विद्या में इका और सब का उस्ताद समझता हुआ बडे ढोंग से नारदादिक का भी अनादर करता है । गवैयों के इस प्रकार कहने का कारण यह है कि हलकट और खल की संगत में रहनेवाली अपवित्र शोकातुर लक्ष्मी को ऐसा शाप है कि उसका उपभोग सदा गवैये लोग ही करेंगे । पुनः, विचार कर देखने से येही लोग विषय लीन और आनन्द उडाते हुए दृष्टि गोचर होंगे । वे भोजन छादन और विषय विलास में राजा की अपेक्षा भी दुगुना तिगुना द्रव्य व्यय करते हैं ।

जिस प्रकार सूर्य भगवान् मयूखावलि से सुशोभित हैं तैसे ही गवैये लोग भी ऐसी विचित्र द्वादश कला धारण किये फिरते हैं कि उनका भेद वेही जानैं अथवा यमराज जानै । वे अपने को नारद और तुंबरु के शिष्य प्रसिद्ध करते हैं इस लिये तुझको भी संशय होगा कि ऋषि भी ऐसे कपटी होते होंगे ।

गवैये के द्वादश मयूख ।

१ टेढी पगडी बांध, सलाम कर, उलटे गोडे वालकर बैठने की कला । २ साज मिलाने में विलम्ब करने की कला । ३ हा आ आ ही ई ई में समय खोने की कला । ४ आत्मप्रशंसा (अपनी वडाई हांकने की) कला ।

५ सा री ग म में प्रशंसा कला । ६ सीधा तिरछा होनेकी कला । ७ मुख मोड़कर चेष्टा कर गाने की कला । ८ द्रव्यहरण कला । ९ धनिक की सेवा करने की कला । १० निर्धन जन द्रव्य न दें तो उन को निन्दने की कला । ११ दुर्व्यसनी होने की कला—कभी राजा और कभी भिखारी बनने की कला । १२ चुस्त और चटकीले वस्त्र और शृंगार धारण करने की कला ।

गवैये की उत्पत्ति ।

एक समय सुरराज इन्द्र महाराजने, बहुत दिवसके पश्चात् आये हुए नारद मुनि को पृथ्वीके राजाओंका वृत्तान्त पूछा तिस समय नारद मुनि कहने लगे—कि हे इन्द्र! पृथ्वी पर सर्व स्थलों में भ्रमण करते समय मैं ने देखा तो दान, धर्म और यज्ञ करनेवाले बहुतेरे जयशाली राजाओंकी लक्ष्मी आप के सदृश प्रकाशित देखने में आई । मृत्यु लोकके नरेन्द्र वैभव में आप की, वरुण की और कुबेरकी समानता करने के योग्य हैं । वे असंख्य यज्ञ करके आपके शतमख (सौ यज्ञ करनेवाले) नाम पर हंसते हैं । " यह सुनकर इन्द्रने पृथ्वी की मायाको लूटने के लिये मायादास, दम्भदास, वक्रदास, क्षयदास, हरणदास, चरणदास, प्रसिद्ध-दास और वाडवदास[१] इत्यादिक अति भयंकर पिशाचोंको भेजे । उन्हों ने अपने विकराल मुख में से गवैयों को उत्पन्न किये । ये गायक दशों दिशाओं में भ्रमण करके लक्ष्मीवानों की लक्ष्मी को लूटने लगे । इस में भी मुख्य करके राजलक्ष्मी का अपहरण करने लगे । नृपति गण अज्ञानवश गवैयोंके जाल में फंस कर अपनी विभूति को बढानेवाली लक्ष्मी, उनको प्रसन्नता पूर्वक देने लगे, इस कारण अल्प समय में ही उन के निर्धन हो जाने से यज्ञ करने की शक्ति उन में नहीं रही, और दान धर्म में भी न्यूनता करने लगे । इस का कारण यह कि ये कर्णपिशाच क्रूर गवैये गाने के बहाने कानद्वारा राजाओं के अन्तःकरण में प्रविष्ट होकर उन के मनको मोहित करते थे । ज्योंही राजा इन के फंदे में फंसते थे—इन के गानकी तान में मस्त होते थे त्योंही तुरन्त अपनी सम्पूर्ण लक्ष्मी उन के आधीन कर धर्म, दान, यज्ञ इत्यादिक का त्याग करते थे । ऐसे धर्मके प्रतापसे परिणाम में उन राजाओं के राज्य हाथ से निकल गये । इस कारण जो नृपति गायक पिशाचों को अपने राज्य में से बाहर निकालता है—उनका

१ ये सब मायावी, दंभी, क्षयरोगी, लुटेरे और अग्निस्वरूप से पृथ्वी पर बसे हैं ।

संग नहीं करता उसके अधीन सम्पूर्ण समृद्धि से भरपूर समुद्र के कटि मेखला-वाली पृथ्वी रहती है । गायक जन–समूह में जो गान का शब्द होता है सो मानो शोकाकुल लक्ष्मी व्याकुल होकर चिल्ला रही है ।

गान विद्यासे लोगों को लुभाने वालों के मुख से गानतान श्रवण करने का निषेध है ही, तिसमें भी विशेष करके वेश्याओं का गान आदरणीय और सुने जाने योग्य नहीं । वेश्या के मुख से गाना सुनना तो सब से अधिक निकृष्ट और धन गँवाने का बडा द्वार है–साथही वह नरक का भी द्वार है । गवैये और वेश्याएं गाना आरम्भ करते समय सारंगी के सुरों की मिलावट करके गाते हैं उस-मेंसे जो शब्द निकलते हैं वे ' नर्क नर्क ' हैं । उनके प्रतिउत्तरमें मृदंग पूछता है ' किन को २ ' तब गवैये लोग कहते हैं ' आ आ आ ' (ये ये) अर्थात् इस सभामें बैठे हुए सब जन नर्क के अधिकारी हैं ; " मिरदंग भनै धिक् है धिक् है सुरताल भनै किनको किनको । तब उत्तर रांड बतावत है धिक् है इन को इन को इन को । "

गाने में एक मोहनी मंत्र है कि जिस के प्रभाव से सम्पूर्ण गोपिकाओं को श्रीकृष्णचंद्र ने मोहित करली थीं, जिस से सर्व मोहित होकर फंस जाते हैं और हरण मरण पाते हैं । अतः लक्ष्मी का हरण करनेवाले नट, नाच करनेवाले, कपट रचनेवाले, वंदीजन, चारण और विट आदिक जो लक्ष्मी पर तीर की नाईं हम्ला करनेवाले हलके लोग हैं उनके हाथ में लक्ष्मीको कदापि नहीं जाने देना चाहिये उन से लक्ष्मी की पूर्ण रक्षा करना उचित है । परन्तु वत्स ! इतना स्मरण रखना कि भगवत्भजन्–प्रभुस्मरण से रहित कोई भी गान श्रेयस्कर नहीं है, भगवत्–यश–गर्भित गान मात्र परम कल्याण करनेवाला है ।

इस प्रकार उपदेश देकर मूलदेव ने सातवें दिन अपनी शिष्यमंडली को विदा की ॥

अष्टम सर्ग ।

सुवर्णकार–(सुनार)–कला वर्णन ।

रात्रि के समय चांदनी झगझगाट कर रही थी और मूलदेव महाराज सब कार्योंसे निवृत्त होकर अपने शिष्योंके बीच में विराजमान थे, तब चन्द्रगुप्त ने

कहा कि "गुरुजी! अब नवीन कला सुनाइये।" मूलदेव ने कहा "बेटा! तू ध्यान दे कर सुन। अब मैं तुझ को सोनी की कलाओं का वर्णन सुनाता हूं जब तेरे पास छमछम झमझम और लटके मटके करती हुई बीस नखी (स्त्री) आवेगी और कहेगी कि 'मुझे तो यह गहना नहीं चाहिये; वह गहना नहीं चाहिये परन्तु ऐसा गहना चाहिये वैसा चाहिये' तिस समय यह कला तेरे उपयोग में आवेगी! उस समय इस कला का गुण तुझ पर प्रगट होगा। सुनार को तू भली प्रकार पहचानता है या नहीं ये लोग बडे वीर चोर है सुवर्ण-हरण करने की कलामें ये लोग योगी की नाई ध्यानावस्थित होते हैं जो अधिक मूल का माल होता है उस सुवर्ण को क्षण २ में ये लोग थोडे मूल्य का बना देते हैं—जो सुवर्ण धन में सार रूप, संपत्ति में शोभा बढाने वाला और विपत्ति में रक्षा करने वाला (धाए का मांडण और भूखे का आडण) है, उस को भी ये लोग दृष्टि चुका करके ले लेते हैं। सुवर्ण को स्पर्श करतेही ये उस की कान्ति का नाश करते हैं और दोष उत्पन्न करते हैं, इस से इन को "अपवित्र नीच जाति के जानना चाहिये अर्थात् सुवर्ण[1]—ब्राह्मण आदि को नीच जाति चांडालादिक का स्पर्श होने से वे अपवित्र हो जाते हैं तैसेही सुवर्ण—सोने को सुनार के हाथ का स्पर्श होते वह अपवित्र अर्थात् दूषित होता है—वह, सोने को हाथ में लेते ही उस में अनेक प्रकार के दोष दिखाता है। चोरी करने की अनेक प्रकार की कलाएं उस (सुनार) में निवास करती हैं उन सबमें ६४ कला श्रेष्ट हैं सो कहता हूं, इन को विशेष लक्ष देकर श्रवण कर और प्रसंगानुसार उनका उपयोग करना।

कसोटी की २ कला।

इन लोगों के पास दो प्रकार की कसौटियां रहती हैं—लेने के लिये अलग और बेचने के लिये अलग। जब कभी इन को सोना लेना होता है तो उस को उस कसोटी पर घिसकर परखते हैं कि जो चिकनी और नरम होती है क्यों कि उसपर सोनेका कस उत्तम नहीं उतरता, जिससे अच्छे सुवर्ण को हलका ठहरा कर सस्ते भाव से मोल लेते हैं। परन्तु उसी सोने को जब बेचना होता है तो वे

१ उत्तम वर्ण वाला अर्थात् सोना और सुवर्ण—श्रेष्ठ जातिवाला—ब्राह्मण क्षत्रियादि।

अपनी उस कसोटीका उपयोग करते हैं जिस का पत्थर साफ नहीं होता, जिस पर हलके सोनेका रंग भी उत्तम दीख पड़ता है और इस प्रकार हलके को भारी—अधिक मोलवाला ठहराकर बहुत लाभ उठाते हैं खरदरे पत्थर पर थोडा ही घिसने से सोना तेजी देता है चमकने लगता है उत्तम कस आता है परन्तु नरम पत्थर पर तो उसी सोने का कस आवेगा जो उत्तम होगा । सुवर्णकार की दूसरी कलाएँ जो तोलाओं (बाट— Weight) की हैं वे पांच होती हैं ।

तोलों की ५ कला ।

१ चिकने तोले । २ भीगे हुए बाट । ३ मिट्टीके बनाए हुए । ४ रेत (बालू) के बाट और ५ गर्म हुए बाट ।

चिकने तोले लेन देन में सफाई दिखानेके लिये अति उत्तम होते हैं । सोना लेते समय वह प्रायः इन को काम में लाता है । भीगे तोला भी लेनेही के काम में आते हैं । मिट्टी के तोलों को वह बेचते समय काम में लाता है । इसी प्रकार रेत और उष्णतावाले तोले भी बेचने के काम के ही होते हैं ।

अब तुझको मूस—(सोना गलाने का पात्र) का भेद बताता हूं । इसकी छः कलाएँ इस प्रकार हैं:—

सोना गलाने की मूस की ६ कला ।

१ ' द्विपुटा '--अर्थात् दो पुटवाली मूस जो डिबिया जैसी होती है ।

२ जिस में प्रगटरूप से सोना गलाते हैं उसको 'स्फोटविपाका' कहते हैं ।

३ सुवर्ण के रस को पीनेवाली मूस जिसका नाम ' सुवर्णरसग्राहिणी ' है ।

४ जिस में तांबे का अंश हो वह मूस—इस का नाम ' सताम्र कला ' है ।

५—६ सीसा के मैल और काच के चूर्ण से बनी हुई मूस—इस का नाम ' सीस—मल—काच—चूर्ण ग्रहण परा ' है ।

सुनार की चौथी कला जो तोलने (वजन करने) की कला है वह १६ प्रकार की हैं ।

तोलने जोखने की १६ कला ।

१ मुडे हुए पलडोंवाला कांटा । २ छोटे बडे अथवा ऊंचे नीचे पलडों-वाला कांटा । ३ जिन (पलडों) में छेद हों । ४ (तोलते समय) पारा डाला

हुआ पलडा। ५ नरम पतरेके पलडों का कांटा। ६ पक्षकैटा कांटा। ७ ग्रंथी वाला—डोरी में गांठोंवाला कांटा। ८ कांटे की डंडी को समान करने के लिये छोटी थैली बंधा हुआ कांटा। ९ वहुतसी डोरियोंवाला कांटा। १० आगे की ओर झुकता हुआ तोलना ११ पवन से फिरता हुआ कांटा। १२ छोटा कांटा। १३ वडा कांटा। १४ प्रचण्ड पवन से उडे हुए रजकणों से भरा हुआ कांटा। १५ सजीव कांटा (एक ओर से सदा झुकता हुआ कांटा जिसको धडेवाला कहते हैं। १६ निर्जीव कांटा अर्थात् जिस से वराबर—ठीक २ तौला जासके ऐसा कांटा।

सुनारों की फूंक मारने की छः कलाएँ वहुतही जानने योग्य हैं सो भी तू जान ले।

फूंकने की ६ कला।

१ मंद २ फूंक देना २ जोरवाली फूंक देना। ३ वीच २ में टूटती हुई फूंक (फू—फू—फू) ४ शब्दवाली फूंक (फूउउउ फूउउउ) ५ एकतारी फूंक (सडसडाट वरावर फूंक देना) और ६ छींटेवाली फूंक (मुंहमें से थूकके छींटें फैलें तैसी)

ये छः प्रकार की फूंकें सोनी लोग अपने काम में लाते हैं और इनके द्वारा सुवर्ण को कुवर्ण कर डालते हैं।

और, ये लोग अग्नि भी छः प्रकार की कलावाली रखते हैं सो इस प्रकार से है—

अग्नि वर्ण की ६ कला।

१ ज्वालावाली अग्नि। २ धुंएवाली अग्नि। ३ फूटती हुई अग्नि (जिस से सोना गलानेकी मूस आडी टेढी होय अथवा उस में कोयला गिर जायँ) ४ मंदाग्नि। ५ चिनगारियोंवाली अग्नि। अग्निकी चिनगारियां उडने से पास में वैठा हुवा निगाह रखनेवाला मालिक कपडे जलजाने के भय से दूर भाग जाता है

---

१ जिस पलडे में वाट हों उस में युक्ति के साथ सोनी पारा रख देता है और वाट निकालते समय पारे को लुढका देता है जिससे तोलने में अधिक लेकर लाभ उठाता है। २ एक ओर से कटा हुवा।

और सोनी भाई अपना काम निकाल लेता है) ६ पहले से तांबा डाली हुई अग्नि । जब वह अग्नि में पहले से तांबा रख देता है तब चीमटे को बारम्बार चोंच २ कर मूस में का सोना निकाल देता है और तांबा मिला देता है, अथवा जिस पर तांबा धरा हुआ होता है उस कंडे से मूस को ढकता है जिस से कंडा जल जाने पर तांबे के कण मूस में गिर जाते हैं ।

सोनियों की १२ चेष्टा कला ।

चन्द्रगुप्त ! इन की १२ प्रकार की चेष्टा—चालाकी की कलाएं होती हैं सो भी अवश्य जानने के योग्य है ।

१ प्रथम कला—नाना प्रकारके सवाल करना—रोजगार (धंदा) की बातें पूछना । २ नाना प्रकार की वार्ता कला । ३ खुजलाने की कला (इस से निगाह रखने वाले का ध्यान दूसरी ओर बँध जाता है) ४ भीगा हुआ वस्त्र खेंचने की कला (शरीर पर का कपडा दूरकर दूसरा वस्त्र लिया करता है) ५ समय देखने की कला कितने बजे ? ऐसे कह कर चौकसी करने को बैठे हुए मनुष्य की निगाह चुकाना) ६ सूर्य देखना (पहले समय में घडियां नहीं होने से सूर्य कितना है सो देखने को जाना वा भेजना) ७ अधिक हंसने की कला । ८ मक्खियां उडाने की कला । कौतुक देखने की कला (राजमार्ग—सडक में आते जाते जुलूस और ढोल ढमाके को देखने को उठना वा उठाना) १० परस्पर झगडा करने की कला (जिस को ' सुनारी लडाई कहते हैं) ११ कुछ भी चाल न चल सके तो पानी का कूंडा फोडने की कला (जिस से दृष्टि रखनेवाला मनुष्य वस्त्र समेटता हुआ संभालता और ऊंचे लेता हुआ इधर उधर हटता है), १२ कारण वा अकारणसे बाहर जाना अथवा भेजना ।

इन कलाओं में से जिस को योग्य समझता है उस कला का उपयोग अवसर पाकर करने में सुनार कभी नहीं चूकता ।

श्रेष्ठ कला ११ ।

इन सुनारों में एकादश कलाएं ऐसी उत्तम हैं कि जिन के जाने विना कोई मनुष्य किसी प्रकार भी पूर्णता को नहीं प्राप्त होता और न इन चोरों की कलाओं को जानने में समर्थ होता है ।

१ घडे हुए गहने को ओप (जिलह) देने के लिये खार में लपेट कर अग्निमें तपाने की कला।

२ लोहे के पलडेवाले साधारण कांटे में तोल देना और एक पलडे के नीचे लोहचुंबक लगा रखने की कला जिस से खाली पलडा भी भरे हुए की नाईं नीचे झुकता रहै।

३ जो गहने लाख भरने के लिये पोले बनाये जाते हैं उन में सोने के रूणे (रवा-कण) रख देना कि जिन से तोलते समय तो पूरे उतरजावें परन्तु लाख भरने के समय उन को आसानी से निकाल लेना।

४ जेवरको जिलह (ओप) देते समय अथवा रेतीसे घिसते समय जो रूणे उस के लगे हुए हों उन को खेर लेना।

५ उत्तम सोने के गहने के बदले में चालाकी से हलके सोने का बनाया हुआ गहना सौंप देना।

---

१ पूर्व काल में सुनार लोग लोहे के कांटे रखते थे। उनके एक पलडे के नीचे लोहचुंबक रखते थे जिस के कारण से सोनेवाला पलडा स्वभाव से ही, लोहचुंबक की ओर खिंच जावे और सोना कम होने पर भी तोल में पूरा दिखाई दे। पर, सोना लेना हो तब उलटी रीति काम में लाना। इसी कारण से बादशाही समय में लोहे के कांटे और बाट रखने की मनाई थी। तब से फेरफार हुआ और अब पीतल के तोले काम में आते हैं।

२ एक समय बादशाह ने सुनारों को बुलाकर कहा कि "तुम लोग बडे भारी चोर समझे जाते हो? आज मैं तुमको हुक्म देता हूं कि तुम हमारे यहां गहना बनाओ और चोरी करो। जो चोरी नहीं करोगे तो तुम सबको फांसी दी जावेगी और जो करोगे और पकडे जाओगे तो भी सबको फांसी दी जावेगी; परन्तु चोरी करके नहीं पकडे जाओगे तो बहुतसा इनाम दिया जावेगा"। उन्हों ने कहा, "खुदावंद! यह काम एकदम होने का नहीं है, पर वर्ष दो वर्ष काम चले और ऐसा करने का हुक्म हो तो हमें कुछ काम सौंपा जावे।" बादशाहने उन को हुक्म दिया कि सुवर्ण का एक ऐसा हाथी बनाओ कि जो असली हाथी से डौल-डौल में कम न हो तो भी हलका ऐसा कि फूंक से उड जावे यह कहकर बहुतसा सुवर्ण उन को दिलवा दिया। इस काम को करने के लिये वे एक सुरक्षित स्थान में बैठाए गए कि जिस के चारों ओर अष्ट प्रहर चौकी पहरा रहता था। उन के

६ लेते समय भाव नहीं करना ।

७ घडते समय भी भाव नहीं करना ।

८ और लेते समय पूरा २ तोलना भी नहीं और सुवर्ण का रंग रूप भी नहीं देखना अर्थात् जांच बिलकुल नहीं करना ।

९ अधिक समय बिताना और समय पर गहना खोजाने वा चुराये जाने का बहाना करना ।

पास जाने की किसी भी मनुष्य को आज्ञा नहीं थी; और जब वे काम करके घर जाने लगते, उस समय उन के सब वस्त्र उतरवा कर सावधानी से संभाले जाते थे। पहरे वालों को कडी आज्ञा थी कि "कुछ दगा होगा तो शिर काट लिया जायगा"। दिन भर तो सुनार वहां काम करें और सांझ पडे तलाशी देकर घर जावें । उन्हों ने अपने घर पर रात को काम करने का लग्गा लगाया और दिन में जितना और जैसा काम सोने के हाथी का करें उतना और वैसाही पीतल का काम रात में अपने घर में करें । इस प्रकार दो हाथी एकसे तैयार हुए। जब बादशाह ने हाथी को देखा तो कहा कि "अच्छा हुआ"। सुनारों ने कहा "खुदावंद इस को ओपना (जिल्ह करना) चाहिये इस वास्ते इस को पानी में ले जाना है" बादशाह का हुक्म होने पर दूसरे दिन उस हाथी को वे तलाव में ले गये । उन्हों ने पहली रात्रि को पीतल के हाथी को ले जाकर तलाव में रख दिया । जिल्ह करने के समय सोने के हाथी को तो पानी में चला दिया और पीतल के हाथी को निकाल कर ओपने लगे । खूब घिसे जाने पर जब उस की चमक दमक सोने के हाथी को मात करने लगी तब उसे बादशाह के पास ले जाकर कहा "खुदावंद ! हाथी हाजिर है" बादशाहने उस सोने के हाथी का फस निकलवाया तो परखनेवालों ने उत्तम बताया क्यों कि बादशाह के सोने को खोटा कैसे बतावें? तब बादशाहने सुनारों से कहा कि "चोरी की या नहीं?" उन्हों ने कहा "खुदावंद ! ऐसे कडे पहरे में से चोरी कैसे हो सकेगी?" तब बादशाहने उन को दंड देना आरंभ किया, तो सुनारों ने कहा कि "हुजूर ! आपने क्या जांच की? और आपके सिपाही लोग भी क्या करेंगे ! आप बगौर निगाह फरमाइये कि यह हाथी सोने का है वा नहीं । खुदावंद ! हम ने सोने का सब हाथी का हाथी चुराया है और यह तो निखालिस पीतल का हाथी है ! इस वास्ते इनाम लेने का हमारा हक हो चुका"। फिरसे जांच करने पर यह बात ठीक निकली; और सुनारों को इनाम इकराम दिया गया । तब पीछे हाथी किस प्रकार बदला गया सो सुनकरके बादशाह चकित हो गया ।

१० गहना घडते समय, और सुवर्ण मिलानेके लिये पूछना (इस लिये कि हलका सोना मिलाकर अच्छा निकाल सके)।

११ कई प्रकार के गहने एकत्रित करके गलाना ।

सुनार इस प्रकार की ६४ कलाओं से सम्पन्न होते हैं और इन कलाओं का भेद किसी पर प्रगट न होने की वडी सावधानी रखते हैं । ये लोग दिन को काम नहीं करते और टालमटोल में समय बिता देते हैं, परन्तु रात्रि होते ही अपना काम आरम्भ करते हैं । जब सब लोग सोजाते हैं, नगर भर में सूनसान हो जाती है, कोई भी अपना काम नहीं करता तब ये लोग खटाखट खटाखट करने लगते हैं, इस का कारण यह कि रात्रि के समय में चोरी करना और गहना बदल लेना आदि काम सुभीते से होते हैं ।

सुनारकी सब से वडी चालाकी तो यह है कि रात्रि के समय वह दूकान में का सब माल अपने घर ले आता है । ये सब मिलकर उसकी ६४ कलाएं हैं कि जो विचार करने से जानी जा सकती हैं । परन्तु इनके सिवाय भी दूसरी गुप्त कलाएं हैं कि जिनको सहस्राक्ष इन्द्र भी देख सकता है वा नहीं इस बात में बडा संदेह है ।

सुनार की उत्पत्ति ।

मनुष्य—भूमि को छोड करके मेरु पर्वत पहलेही से अलग रहा है । इस का कारण ढूंढते हुए ऐसा जाना जाता है कि सुनारों की चोरी से अवश्य वह बहुत बिंध गया होगा । एक ऐसा समय था कि जब संसारके जीवनाधार सुवर्ण के सुन्दर शिखरों—वाले मेरु पर्वत को गणपति के वाहनों ने जहां तहां से खोद कर बडे २ बिल कर डाले थे । मूसोंकी सेनाके नखोंसे खोदी गई जडवाला गिरिराज कम्पायमान होकर आन्दोलन करने लगा तब वह विचित्र शोभासे शोभने लगा । उस के सुवर्ण के रजकणों से सम्पूर्ण पृथिवी पीली पीली दीखने लगी, दशों दिशाएँ सुवर्णमय दर्शने लगीं । एक जीर्ण शिखर में बसनेवाले देवताओं के मन में उसके आन्दोलन को देखकर प्रलय काल की शंका उत्पन्न हुई । उस से भयभीत देव-ताओं की रक्षा के लिये मुनिराज अगस्त्य ने दिव्य दृष्टि से सब कुछ देख कर

कहा कि " आप भय मत करो । देवासुर संग्राम में जितने ब्रह्महत्यारे निशाचर मारे गए थे वेही इन चूहों का अवतार धारण कर मेरुराज को उखाड डालने का प्रयत्न करते हैं । इसलिये हम सब को चाहिये कि दूसरी बार अब उन का फिर नाश करें; कारण यह कि वे ऋषि मुनियोंके आश्रम का भी नाश करते हैं । " इस प्रकार अगस्त्य मुनिका कथन सुनकर मेरुराज के निवासी देवताओं ने उन सम्पूर्ण मूसों के बिलों को धूंए से भर कर शाप से जले हुए मूसों को फिर जला दिए । हे वत्स चंद्रगुप्त ! उन्हीं चूहों ने इस भूमंडल पर सुनार का रूप धारण कर अवतार लिया है । और पूर्व जन्म के अभ्यास से सुवर्ण की चोरी करने में कुशलता दर्शाते हैं. इसलिये मेरा यह कहना है कि राजाओं को उचित है कि जब हत्या करनेवाला, चोर और लुटेरा कोई भी नहीं मिले तब सदा एक एक सुनार को पकड कर दंड दिया करें; क्यों कि वे सदा के चोर और धोले दिन धाडा मारनेवाले हैं ।

नवम सर्ग ।
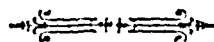
तीन चोरों की कला ।

आधी रात हुई तब आडंबर छोड कर मूलदेव महाराज ने अपने चेलों से गांवके गपाटे सुन कर चंद्रगुप्तको सम्बोधन कर अपनी कला प्रकाशना आरम्भ किया ।

वत्स ! जगत में तीन प्रबल चोर बसते हैं, और वे भिन्न २ रीति से धन हरण करते हैं । इन तीनों में पहला तो हर किसी का धनादिक चुरा लेवे सो चोर हीहै, दूसरा मद्यपान करनेवाला और तीसरा कामीजन है । चोर स्वयम् अनेक प्रकारसे चोरी करते हैं और अपनी कलाओं को नये २ रंग से रंगीली चमकीली करते हैं । चोरों से सदा सावधान रहना चाहिये । चोर की ३६

---

१ रात्रि में फिरने वाले राक्षस भी हैं और मूसेभी हैं ।

२ चूहे घरों—आश्रमों का नाश करते हैं और असुर मुनियों के आश्रमों को नष्ट करते हैं ।

कला नियत हुई हैं सो तुझे बताता हूं तू लक्ष देकर श्रवण कर। और उनको जानने के पीछे 'धन रक्षण कैसे करना' सो भी तुझ को सीखना चाहिये।

चोर की ३६ कला।

१ अंधियारे चौमासे में चोरी करने को निकलने की कला।

२ काले कपडे धारण करने की कला।

३ अपने साथ शस्त्र रखने की कला। [चोर सदा अपने पास में शस्त्र रखते हैं इस लिये उन से सावधान रहना चाहिये। तलवार, गणेशी, पिस्तोल, कैंची, संडसी, करौती, कपाल (काम पडे तो वस्त्र त्याग कर जोगी बन जायँ), सर्पाकार यंत्र, और रेशम की निसैनी ये चीजें चोरों के साथ में सदा रहती हैं।

४ जन्तु रखने की कला। [ये चोर आगे लिखे जानवर अपने पास रखते हैं, चोर के सिवाय और किसी के उपयोग में ये नहीं आते हैं। पाटडागोह जिसे खरगोह भी कहते हैं–(मकान पर चढना हो तो इस जन्तु की कमर में रेशम की डोरी बांध कर ऊपर फेंकै सो वह जहां जाकर गिरती है वहां ही दृढ चिपक रहती है तब चोर डोरी पकड कर ऊपर चढ जाते हैं।) बाज पक्षी—(इस के मुंह में डोरी देने से यह जाकर खिडकी में था दूसरी जगह उसे दृढता से बांध देता है।) भंवरों की टोकरी–(भय हो तो भंवरों को छोड देता कि जिन के काट खाने के भय से घर वाले भाग जायँ।) मापने की डोरी (सैंध लगाते समय, सहज से निकल पैठ सके उतना माप करने के लिये, किसी जगह चुराई हुई वस्तु को डोरी से बांध कर दूरही से खैंच सकें, यदि कोई जीवजंतु काट खावे तो लोहू बहने लगे उस को बांधकर रोक दें, और द्वार की कुंडी आदि भी खोलने के लिये डोरी आवश्यक होती है।) और बिना तेल के जलने वाला दीपक।]

५ भूतावल (भूत पिशाचादि के चारित्र) बनाने की कला।

६ भद्रकंथ नामवाले जल (बडे पतंगे) रखने की कला।

[इन जन्तुओं में ऐसा गुण है कि हाथ में से छूटते ही दीपक पर जा कर बैठते हैं और उसे तुरन्त बुझा देते हैं।)

७ सेंध लगाने की कला।

(सेंध कैसे लगाना, उस के लिये कौनसा स्थान पसंद करना आदि कलाओं का जानना । चोर राजमार्ग (सडक) में सेंध नहीं लगाते, परन्तु गली कूचों में लगाते हैं कि जिस से कोई देख नहीं सके । इस लिये पानी के घटादिक रखने का स्थान और टांकी आदि को घर के कोने में न रखना—वरन घर के बीच में रखना, क्योंकि घर का जो भाग पानी से तर रहता है वहीं चोर सेंध लगाते हैं—जैसे कि आग से जली हुई, पानी भरी हुई, खार जमी हुई और चूहों से खोदी गई दीवार कि जहां आसानी से सेंध लग सके और दीवार गिराते समय पत्थर न खडखडें ।

यदि ईटें मिट्टी की हों तो पानी छींट कर नरम कर लेते हैं और हाथ से वा हथियार से निकाल लेते हैं और लकडी होती है तो चीर डालते हैं । सेंध भी छः प्रकार से लगाते हैं, (१) पद्माकार, (२) सूर्याकार, (३) दूज के चंद्रमा के आकार, (४) बावडी के आकार (नीचे की ओर झुकती हुई कि तुरन्त उतर सकें); कुंभाकार (५) (ऊपर से छोटी, संकडी और मध्य में से चौडी) और (६) चौकोर आकारवाली अथवा सीधी सेंध लगाते हैं अपना घर सडक पर रखना, गलियों की ओर से घर की संभाल रखना नुक्कड (घर के बाहर के कोने पर खडी हुई पट्टी शिला या पत्थर गाड देना) रखना और चूहों से चौकस रहना । गलियों में जाली झरोखे न रखना ।]

८ घर में घुसने के समय पहले शिर न घुसाकर पैर घुसाने की कला; तथा शिर घुसावे तो उस पर लोहे का तवा बांधने की कला ।

[कई वार ऐसा होता है कि घर के मनुष्य जागते रहते हैं इस लिये ज्यों ही चोर शिर घुसाता है त्योंही तुरन्त वार करते हैं ? तवा शिरपर बंधा रहता है इस कारण जब ऐसा अवसर मिले तो गरदन पर चोट चलाना ।]

९ कंकर फेंकने की कला ।

(मनुष्य जागते हैं वा सोगये यह जानने के लिये कंकर पत्थर फेंकना ।)

१० किसी घरमें चोरी करने को घुस जाने के पीछे भाग निकलने का मार्ग खोजने की कला ।

(घर का दरवाजा खुला छोडते हैं । खूब दौडने और कूदने की चपलता को तो इस कलावाला अवश्यही जानता है । घर के कंवाड (कपाट) पुराने हों

आर खोलते बंद करते समय ची ई ई ई करते हों तो उन में ये लोग पानी गिराते हैं, परन्तु पानी पृथ्वी पर गिरकर शब्द होने का संभव हो तो ऐशी दशामें कंवाड उखाडकर दरवाजा खोलते हैं। इस कारण कंवाडोंमें गुप्तकला रखना उचित है।

११ दीपक बुझाने और प्रदीप्त करने की कला।

१२ अंधेरे में प्रत्येक वस्तु दीख पडने अथवा अंधियारे में कोई पदार्थ खोजने की कला।

(कहा जाता है कि पहले चोर बिल्ली का दूध पिया करते थे और इस कारण से अंधेरे में भली प्रकार देख भाल कर सकते थे। बहुतसे जीव दिन में ही देख सकते हैं, उन को रात्रि में दीखताही नहीं—जैसे कपोत, बटेर और काग। कई एक प्राणी केवल रात्रि में ही देखनेवाले होते हैं उन को दिन में कदापि कुछ नहीं दिखाई देता जैसे चमगादड, वागल (पक्षी विशेष कि जो प्रायः वटवृक्ष पर उलटे लटकते रहते ह।), उल्लूक इत्यादि, बहुतेरे जानवर रात्रि और दिन दोनोंमें भली भांति देख सकते हैं—जैसे बिल्ली, सिंह, व्याघ्र, चकोर। अंधेरे में भी देख सकने के अभिप्राय से चोर बिल्ली का दूध पिया करते थे। ऐसे चोरों की आंखें भी मांजरी होती हैं।

१३ शकुन देखने की कला।

(चोरी करने को घर से बाहर निकलते ही कोई रोटी आदि खाने का पदार्थ लिये हुए सन्मुख मिले तो कार्यसिद्धि का अनुमान करते हैं। प्रायः संध्यासमय भिक्षुक बनकर घर २ मांगते फिरते हैं; उस समय जिस घर से मांगते ही तत्काल कोई चीज मिल जाती है उसी के यहां पहले चोरी करते हैं। यदि कुछ माल हाथ नहीं लगता है तो नाकुछ चीज भी चुरा लाते हैं परन्तु पहले मोर्चेसे रीते हाथ नहीं लौटते। बांई दहनी छींक, गधे का रेंकना, मुर्दे का सन्मुख मिलना ये सब शकुन विशेष कर देखे जाते हैं।)

१४ पशु पक्षियों की भाषा जानने की कला।

(कादंबरी तथा सामलभट्ट कृत कलश की वार्ता में लिखा है कि चोर पशु पक्षियों की भाषा जानते थे, और उस पर अपने हानि लाभ का विचार करते थे। तीतर, रूपारेल और कोचर आदि के बोलने पर से मारवाड़के बावरी लोग अब भी अपना लाभाऽलाभ अनुमान करते हैं।)

१५ पशु की बोली बोलने की कला ।)

१६ पशु की नाईं चलने की कला; पशु के चर्म सदृश वस्त्र ओढ़ने की कला ।

(वासवदत्ता में वर्णन है कि पकडा गया चोर गधे का चमडा ओढ़ कर 'होंची होंची' बोलता हुआ भाग गया ।

(इस समय भी काला कम्बल ओढ़कर कुत्ते की नाईं चलकर घर में घुसते हुए चोर पकडे गए हैं ।)

१७ हाथ को गरम रखने की कला ।

(लाभ के चोघडिये में माल टटोलते समय किसी मनुष्य पर ठंडा हाथ गिरजावे तो वह तुरन्त सचेत हो जाता है परन्तु गरम हाथ लगने से कोई नहीं जागता । ऐसे समय में जागते समय एक साथ हा हू नहीं करना चाहिये क्योंकि पकडे जाने के भय से चोर चोट चलाने में नहीं चूकता । इस कारण अवसर देखकर पुकारना चाहिये ।)

१८ योगचूर्ण बनाने की कला ।

(इस चूर्ण से चाहे जहां चढ़ने की शक्ति आती है)

१९ योगाञ्जन बनाने की कला ।

(इस अञ्जन को आँजने वाला सब को देखता है पर वह किसी की दृष्टि में नहीं आता । ऐसे अवसर पर धुँआ करना चाहिये ताकि उसकी आँखों में जाने से गिरते हुए पानी के साथ योगाञ्जन धुप जावे और चोर पकडा जावे ।)

२० योगवर्त्तिका कला ।

(इस कला से घर में प्रवेश करते ही ज्ञात हो जावे कि कार्य होगा वा नहीं और लाभ है वा हानि; किम्वा भय है वा अभय । वर्त्तिका अर्थात् वत्ती । चोर ऐसी वत्ती रखते हैं कि उस को दीपक में रखने से सैकडों सांप और विच्छू दीखने लगें, कि जिन से घबराकर घरवाले भागानासी करें इतने में चोर अपना कार्य साध ले ।

२१ वेश्या के साथ मित्रता रखने की कला ।

२२ सुरंग खोदने की कला ।

२३ निद्रायुक्त करने की कला ।

(इस कला को कलश की वार्तावाले चोर जानते थे ।

२४ निद्राजीत होने की कला ।

(कदाचित् संकटग्रसित हो जाय तो कई दिवस तक सुगमता के साथ गुप्त रह सके।)

२५ पकडे जाने के पश्चात् छूटने के लिये स्त्रीद्वारा प्रपंच रचने की कला।

२६ दिन के समय साधुवेश से, साहूकार बनकर और कोई न पहचान सके ऐसी रीति से चोरी करने के स्थलों को जानने की कला।

(अपरिचित् साधुओं और साहूकारों से विशेष सावधान रहना चाहिये।)

२७ चित्र कला।

(किसी बडे भंडार को लूटना हो तो, उस के मार्ग कैसे और किधर हैं, चोर-मार्ग कहां हैं, कैसे कोठे हैं, ये सब बातें अपने साथियों को समझाने के लिये उस स्थान का चित्र उतार लेते हैं।)

२८ पकडे जाने पर पागल बनने की कला।

(पागलपन कीसी चेष्टा और बावलेपन की बातें करे तो ठगाना नहीं परन्तु चोर के धोखे से पकडे गए की पूरी चौकसी करना चाहिये।).

२९ संकट के समय प्राण देने और लेने की कला।

(प्राचीन काल के कार्यभारी इस कला का अध्ययन करते थे, तैसे ही चोर भी कभी पकडे जाने पर फजीहती न होने के लिये गुप्त रीति से प्राण हरण करते हैं और अवसर पर प्राण देते भी हैं; उस समय मृत चोर का मस्तक उस के साथी ले जाते हैं।)

३० पकडे जाने के पीछे बंदीगृह में डाला जावे तो वहां से छूटनेकी कला।

३१ कारागृह में अन्यान्य बंदियों को अपने मित्र बनाने और अपने साथ उन को भी छुडाने की कला।

३२ कोई भी नहीं जान सके ऐसी (अप्रगट) रीति से कुलटा स्त्री का सांग करनेकी कला।

(कुलटा स्त्री घर घर फिरकर इन बातों का भेद चोरों को बताती हैं कि धन कहां छिपाया गया है, कैसे व्यवहार में लाया जाता है और कैसे ढंग से वहां पहुंच सकते हैं।

३३ चोरी करने को जाते समय उदारता रखने की कला।

(सामलभट्ट की कलश की वार्त्ता में चोरों ने उदार बुद्धि से ब्राह्मण, वैश्य, सुनार और वेश्याओं के घरों को छोड दिये। ब्राह्मण तो पूजने के योग्य हैं; वणिक् पैसा २ चोरते है और कृपण होते हैं; सुनार महा चोर होते है, सगी वहन के सुवर्णादि में से भी (चोरना) नहीं छोडते और सुवर्ण को चुरानेवाला महापातकी होता है। वेश्याओं के अनेक कुकर्म करने से उन का द्रव्य काम का नहीं ऐसा विचार कर बडे घर चोरी करने को गए।)

३४ भंडार लूटने की कला।

३५ चोर होते हुए भी निर्मल रह कर राज दर्बार में जाने की कला।

३६ चोरी का द्रव्य वर्त्तने की कला।

(सब मिलकर चोरी की ४० कलाएँ हैं, परन्तु ४ मिली नहीं।)

ये चोर बिल्ली की नाईं चलनेवाले होते हैं, भागने में हरिण जैसे चपल दीख पडते हैं, घरको चीरने में बाज पक्षी की नाईं कुशल हैं; श्वान के सदृश निद्रालु होते हैं; भागते समय सर्प की नाईं कला और झडप प्रगट करते हैं (अर्थात् आडे टेढे दौडते हैं और जो सीधे दौडें तो सडसडाट चले जाते हैं); मायावी की नाईं वेश बदलते हैं, धैर्य बताने और स्थिरता दर्शाने में बडे पर्वत को भी हटाते हैं, गरुडवेग से चोरी करने को दौडते हैं, शशा (खरगोश) की नाईं पृथ्वी में घुस कर चोरी करते हैं; चील की नाईं झपट कर छीन लेते हैं, और सिंहकी नाईं अधिक बलवान होते हैं।

स्त्री के शब्द सुनै और वहां पुरुष हो तो वहां चोरी करने का साहस नहीं करता। भूमि में गाडे हुए धन को मंत्रविद्या से जान लेता है। इस प्रकार कर्णिपुत्र ने जो चोर-शास्त्र रचा है उस को सीखकर अनेक प्रकार से अनेक कला करके चोर पर द्रव्यहरण करते हैं, इस लिये ऐसे मनुष्यों से सावधान रहना। वे दिन को बडे साहूकार बने फिरते हैं, और सर्व स्थलों को अपने ध्यान में रखकर तथा नौकर चाकरों से मेल मिला कर घोर अंधेरी रातमें द्रव्य ले जाते हैं अपने घर के कामकाज के लिए नौकर रखने के समय अधिक सावधान रहना चाहिये। क्यों कि प्रायः ये चोर ही नौकरी स्वीकार कर घर की सम्पूर्ण वातों और गुप्त भेदों को जानकर काजल काढ जाते हैं। इन से धन की रक्षा करने के लिये वज्रमय तलघर, चोर-

द्वार, और गुप्तकलें बनवाना चाहिये कि, जिन में शास्त्र होते हुए भी चोर पार नहीं हो सकें।

मद्यप।

दूसरा चोर मद्य-पान करनेवाला है। मद्यप मनुष्य साहूकार और अनन्य मित्र बनकर अपने पास आता है। धीरे २ ऐसे पांव फैलाता है कि उस का प्रपञ्च क्या है इस बात को ब्रह्मा वा ईश्वर ही जानता है। पहले वह अनेक प्रकारके लाभ और लालच बताता है। प्रथम तो वह अपनी गांठ का गोपीचंदन करके श्रीमन्तों को फुसलाता है, और जैसेही वे मद्य पीने में लीन हुए कि, पानमार्ग से द्रव्य हरण करके उन्हें पददलित कर देता है। ये दारूबाज चंद्रमा की १६ कलाओं को अपनी ही बतलाते हैं।

मद्यपान करनेवाले की १६ कला।

१ व्यसन की प्रशंसा करने की कला। २ शास्त्र का निषेध न बताने और बडे पुरुषों का दृष्टान्त देने की कला। ३ मद्य के गुण वर्णन करने की कला (यह शरीर में शक्ति बढाता है, आनन्द देता है, कामोद्दीपन करता है, स्तंभन करता है, और स्त्रीरंजन करने में अद्वितीय है।) ४ पहले व्यसन कराने की कला। ५ पान करने के बाद छिपाने की कला। ६ पकडे जाने के बाद छिपने की कला। ७ अत्यन्त गरडी (विष पान कर के मत्त रहनेवाला) करने की कला। ८ साथी को बढावा देकर उस के द्रव्य से मौज की कला। ९ अमर्यादिक (अश्लील) शब्द सहन करने और बोलने की कला। १० अपराध सहन करने की कला। ११ नवीन नवीन मित्र बनाने की कला। १२ उत्तम विलास भोगने की कला। १३ नई नई इच्छा उत्पन्न करने की कला। १४ दुःख दूर करने की कला। १५ तीन लोक देखने की कला। १६ अत्यंत क्रोधित होने के कारण संग्राम में सन्नद्ध रहने की कला।

मद्यपान करनेवालों में ये सोलह कला निवास करती हैं, और वे उन में सदा मग्न रहते हैं। मद्यप मनुष्य द्रव्य और शरीर को नष्ट करते हैं, और इस कारण इस दुर्व्यसनशील जनों से अधिक सावधान रहने की अत्यन्त आवश्यकता है।

व्यभिचारी ।

मद्यपान करनेवाले से प्रबल चोर व्यभिचारी है । इस तृतीय चोर से अधिक सावचेत रहना चाहिये । ये संसारमण्डल में बडे स्थान हैं, इन को मार डालने का कोई पातक नहीं लगता । ये घरभंग करनेवाले और साहचोर हैं । पूर्व काल में व्यभिचारी के लिये उग्र दंड था, परन्तु अब वे क्षमा किये जाते हैं । संसारमण्डल के इन परम शत्रुओं में जो ६४ कलाएँ बसती हैं वे इस प्रकार हैं ।

कामीजन की ६४ कला ।

१ कंकर फेंकने की कला[1] । २ मानरहित होने की कला (आधीन हुई नायिका के पास) । ३ बहुमानी होने की कला (रति–कलह में) । ४ कोमल हृदयवाला होने की कला । ५ कठिन हृदयवाला होने की कला । ६ दयालु होने की कला (नायिका कुपित हो तो दया लाने के लिये पाखंड करे और दया दर्शावे.) ७ उदार होने की कला (नायिका की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये) ८ शठशिरोमणि होने की कला (नायिका द्रव्यवती हो तो उस से धन लेने के लिये) ९ नव रस जानने की कला । १० साहसी होने की कला । ११ हृदय हरण करनेकी कला (क्रिया से) १२ फुसलाने की कला । १३ फुसलाते समय फंस जावे तो तर्क होने की कला । १४ । १५ रुचिकर संभाषण करने की कला । १६ वैपरीत्यपूर्ण कार्य करने की कला । १७ उडाने की कला (नायिका को, किसी पीछा करने वाले को अथवा विक्षेप करने वाले को ।) १८ अधिक बातें बनाने की कला (जिस से नायिका प्रसन्न होकर वशीभूत होती है) । १९ मनोरंजन के लिये गप्पें मारने की कला । २० सदा सर्वदा हँसमुख रहने की कला । २१ समय साधने की कला । २२ संकेतस्थल रखने की कला (अभिसारिका की प्राप्ति के लिये.) २३ मेला यात्रा में जाने की कला । २४ नए २ वस्त्र धारण करने की कला । २५ अकड और स्वच्छता रखने की कला । २६ प्रेम-

---

१ चोर अथवा कामीजन किसी के घरमें जाने से पहले कंकर फेंकते हैं इस लिये कि यदि घर में रहनेवाली स्त्री चुप रहे तो कार्य सिद्ध हुआ जानकर भीतर प्रवेश करें ।

कटाक्ष से निहारने की कला। २७ नेत्र और करपल्लवी[1] जानने की कला। २८ गान करने की कला। २९ पद्मिनी आदिक स्त्रीजाति का भेद जानने और परखने की कला। ३० काव्य कला। ३१ स्त्री के अंग में के काम के निवास को जानने की कला। ३२ भांति २ के पक्षी पालने की कला। ३३ कुटनी को साधने की कला। ३४ इत्र और पुष्पादिक परीक्षण। ३५ कौतुक—कौशल्य। ३६ शृंगारसजने की कला। ३७ देखते हुए अंधा होने की कला। ३८ ईर्षा रखने की कला। ३९ वैद्यक कला। ४० साधु, संन्यासी और योगी फक्कड वनने की कला। ४१ जादू (मंत्र यंत्र) जाननेवाला वनने की कला। ४२ घरपति को ललचाने की कला। ४३ वेशान्तर करने की कला—चोरी (गुप्त रीति) से रहने की कला। ४४ मिष (वहाने) से मिलने की कला। ४५ सौगंध लेने और लिवाने की कला। ४६ अपने प्रति प्रेम उपजाने की कला। ४७ योगासन से वैठने की कला। ४८ विष पचाने (हजम करने) की कला (इस से कामोत्पत्ति होती है.)। ४९ वृक्ष पर चढने की कला। ५० तैरने की कला। ५१ भागजाने की कला। ५२ दूर के सम्बन्ध को निकट का वताने की कला (नजदीक का सम्बन्ध वताकर अपने प्रति परिचय और अपनापन उत्पन्न करने की कला)। ५३ वडी २ आशाएँ वंधाकर उन में विघ्न करने की कला। ५४ द्विअर्थी वाक्य वोलने की कला। ५५ लेखन कला (नाना प्रकार की चिट्टियां लिखता है कि, जिनको उस की नायिकाही पढ सकती है) पुनः ऐसा भी पत्र लिखे कि जिस में कुछ नहीं दिखाई दे, परन्तु आग पर तपाने,

---

१ नेत्र से अथवा हाथ के संकेत से वार्त्तालाप करना। यथा—अहिफण कमल चक्र टंकार, तरु पर्व्वै यौवन शृंगार॥ अंगुली अक्षर चुटकी मात। राम करै सीता से वात॥ अर्थ—सर्प के फण के समान हाथ की आकृति से १६ स्वर समझना; इसी प्रकार कमलाकृति से कवर्ग, चक्र की नाई अंगुली घुमाने से चवर्ग, टंकार से टवर्ग, वृक्षाकृति से तवर्ग, पर्व्वै से पवर्ग, यौवन शब्द से यवर्ग और शृंगार से श ष स ह क्ष त्र ज्ञ समझना चाहिये। पहले वर्ग वताकर तिस पीछे एक दो तीन अंगुलियां खडी कर वर्ग का अक्षर वताना और तव चुटकी वजा कर मात्रा प्रगट कर शब्द वनाकर वार्तालाप करना.

खाख (भस्म) लगाने वा अन्य प्रकार से उस परके अक्षर प्रगट हो जावें ।५६ प्रेम से उत्पन्न दुःख को सहन करने की कला । ५७ अन्य जन की निन्दा करने और अवगुण दर्शाने की कला (जिस से नायिका अन्य की इच्छा न करे ।) । ५८ वचनभंग हो तो ग्लानि न लाकर निर्भयता से विनती करने की कला । ५९ पान (ताम्बूल) खाने और खिलाने की कला । ६० अभिसार होने (नायिका के संकेत स्थान में जाने) की कला । ६१ प्रीति का स्मरण कराने के लिये अन्तिम चिन्हौती (निशानी) करने की कला । ६२ कुपित प्रिया को शान्त करने की कला । ६३ 'मैं मर जाऊंगा' ऐसा भय दिखाने की कला । ६४ सत्य कह कर शंकाशील करने अथवा विशेप चर्चा को रोकने की कला ।

ऊपर कही हुई ये ६४ कलाएं छंटे हुए छैलछबीलों में निवास करती हैं, और वे उन्हें बडे गुरुके पास से सीख आते हैं । ऐसे मनुष्यों से अधिक सावधान रहने की आवश्यकता है । मित्र होकर घर में प्रवेश करते हैं, परन्तु पीछे से शत्रु का काम करते हैं तथा, वे घरवाली (स्त्री) के साथ संकेत करके अपना वित्त हरण कर भाग जाते हैं और जिस से कनक, कान्ता और कीर्ति इन तीनों का समूल नाश होता है । संसारमंडल के इन क्रूर राक्षसों का संसर्ग अत्यन्त दुःखद है. उन को वहुत संभालना चाहिये । घर के नौकर चाकर भी ऐसे होते हैं कि जिन के कपट भरे कर्मों का भास विधाता को भी नहीं होता, तो फिर अल्प प्राणी तो किस गिनती में ? इन तीन चोरों से विशेप सावधान रहनेवाला पुरुप सदा सुखी रहता है ।

दशवां सर्ग ।

दीवान की कला ।

रात्रि के समय जब सब जल स्थिर हो गया तब उज्जयनी का एक वडा धनवान पुरुष, धूर्त्तशिरोमणि मूलदेव महाराज के पास वेशान्तर करके आया । उस

---

१ इस प्रकार के चतुराई और चालाकी से भरे अनेक कौतुक करने और जानने की इच्छा हो तो मेरा बनाया हुआ रसायणरत्नाकर अथवा हुनर–हजारा देखिये ।

ने प्रेमपूर्वक अनेक प्रणाम करके रत्नजटित दो कंकण मूलदेव के चरणों के निकट रक्खे, तिस पीछे अपनी व्यवस्था का वर्णन किया। उस ने अपने पर चलाए हुए राज्यकार्यभारियों के प्रपंच का प्रदर्शन कर मूलदेव से आश्रय की याचना की। लक्ष्मी के मोह से मोहित मूलदेव ने उस देशान्तरवाले वणिक को गुप्त रीति से बहुतसी सम्मति देकर विदा किया।

तदनन्तर चन्द्रगुप्त को समीप बुलाकर, उस की पीठ पर हाथ फेर कहा, देखा! जैसे और २ धूर्त्त होते हैं तैसे राज्य के कार्यभारी भी हैं। वे दीवान, वजीर, अमात्य, मंत्री, प्रधान इत्यादिक अनेक नामों से पहचाने जाते हैं। जैसे वे अनेक नामधारी हैं तैसेही उन के काम भी अनेक हैं। श्रीमंतों को लूटने में वे इक्के (अद्वितीय) होते हैं। कई भांति से वे धनाढ्यों के शत्रु होते हैं, परन्तु ऊपर से ऐसा बनाव बनाये रहते हैं, कि जिस के तेज से बहुतसे जन चकाचौंध हो जाते हैं। 'वे राजा को सदा नेत्रहीन और हियाफूटा बनाये रखते हैं और कभी चूं नहीं करने देते! इस लिये उन के क्रूर कर्म प्रगट में नहीं आते। असल में तो दीवान ही सारे राज्य का स्वामी गिना जाता है। वह सब की पूछताछ करता है, पर उस को कोई भी नहीं पूछता। यदि उसका कोई शत्रु होता है तो वह उस को तुरन्त सीधा कर देता है; और ऐसा करने के लिये वह सैकडों पापिष्ठ युक्तियों को काम में लाता है, प्रपंच रचता है, ठगाइयां करता है, बनावटें करता है और अपने काम में हाथ डालनेवाले को हर प्रकारसे हटा देता है। यदि दीवान का किसी पर कोप होता है तो पहले वह उसे बुलाताहै, फिर उस को चमकाता है, घबराताहै, समझाता है, दोष लगाता है, और इस प्रकार अपना सब कार्य साध लेता है। ये (मंत्रीगण) काल के भी काल और क्रूर से भी क्रूर हैं। उनका स्नेह और शत्रुता दोनों ही अपनी संपत्ति का नाश करनेवाले हैं, इस लिये उन को तो नौगज का नमस्कार ही करना चाहिये।

कार्यभारी अर्थात् दीवान (दीवा=न) अर्थात् दीवा (दीपक) नहीं सो दीवान, अर्थात् उनके आगे पीछे अंधकार और दिनके बडे भयंकर चोर होतेहैं। वे स्वयम् अंधकार की मूर्त्ति हैं, और चहुं ओर अंधकार फैलाने अर्थात् काले कर्म करने में उन को किञ्चिन्मात्र बाधा नहीं होती। उन का दूसरा नाम वजीर

है, किसी का भी माल लेकर पचा जाने की शक्ति को धारण करता है इस लिये उस का नाम वजीर रक्खा गया है । अनेक मनुष्यों को सता २ कर राजा के नाम से वह उन से द्रव्य लेता है और उस को ऊपर का ऊपरही चाट जाता है। वह अपना सारा जीवन ऐसेही कार्यों में व्यतीत करताहै । राजा को कठपुतली की नाई नचाता है और जहां राजा सवारी, शिकारी और सुन्दरियों में मस्त रहता है वहां तो दीवानही राजाधिराज बन बैठता है । ऐसे अवसर पर वह बडा ढोंग रचता है कि राजा के पूछे विना कोई काम नहीं करता—राजाही स्वामी है, महाराज की खास मर्जी है, और श्रीजी हजूर ऐसा फरमाते हैं और वैसा हुकम देते हैं इस प्रकार प्रगट करता हुआ सब को छलता है । यदि अपने किसी धनवान शत्रु पर उस की दृष्टि पडी तो हरेक रीति से उस का धन खैंचता है, और वही राजा की भेंटकर आप वल्लभ बनजाता है; और यदि राजा आंख बदलता है तो उसे भी मिट्टी में मिलादेने में कदापि नहीं चूकता ।

उस का तीसरा नाम अमात्य है । अमात्य अर्थात् मत्त नहीं । पर वह तो ऐसा मस्त हाथी है कि जिस के बराबर कोई भी नहीं । वह मीठी २ बातें कह कर कार्य कर देने की आशा देता है परन्तु पीठ पीछे उस का सत्यानाश कर डालता है । इस का चौथा नाम मंत्री है मंत्री अर्थात् किसी को मंत्र लेने (मंत्रित करने) वाला हर भांति करके धन, वित्त, दारा को मंत्र लेने में उस के जैसा कोई कुशल नहीं । उस का पांचवां नाम प्रधान है । प्रधान—परधान अर्थात् जिस की अन्य के धान्य—धन को अपनाही करने की वृत्ति सदा रहती है उसे प्रधान कहते हैं । सदा उस का चित्त दूसरे के द्रव्य को अपना करने के लिये चला करता है ।

कार्य भारी की उत्पत्ति की कथा ।

एक समय यमराज के कार्यभारियों ने एक ऐसा प्रपंच का पचंडा फैलाया कि किसी महापातकी को तो घूंस (रिश्वत) लेकर मुक्ति प्रदान की और एक दूसरे पुण्यात्मा प्राणी को वैरभावसे रौरव नरक की यातना भुगताई । इस प्रकार अपने यहां अधर्म होने के कारण यमराज का सिंहासन थरथराने लगा। तब यमराज ने ध्यान धरके देखा तो जाना कि इस घोर अनर्थ के कारण यह घटना हुई ।

तदनन्तर अपने धर्मासन पर विराजमान होकर यमराज ने इस अघटित कृत्य करनेवालों का विचार करना आरम्भ किया और उन यमदूतों को जिन के नाम श्वानमुख, मार्जारमुख, मूषकमुख, कालदास, अधर्मसंकर, असत्यभाई, शृगालचंद थे पकडवा मंगाये । ये आतेही अति क्रुद्ध होकर अपने को सच्चा दर्शाने के लिये अनेक बातें बनाने लगे, परन्तु धर्मराजने उन की एक न सुनी और झटपट यह आज्ञा सुनाई कि "तुम अधर्म के पक्षी हो, इस लिये दुष्टो ! जाकर पृथ्वी पर पडो, अधर्म करो और अपना पेट भरो !" इस रीति से पृथ्वी पर आए हुए अधर्मी यमदूत मनुष्य शरीर धारण कर ठाट बाट से रहने लगे और राज्यकारभार अपने शिर पर लिया । राजा को असत् मार्ग में चलाकर अधर्म से वर्ताव करना तो उन की परम्परा की रीति है । कपट रचकर राजा प्रजा दोनों को लूट खाना उन का सनातन धर्म है । अपना अधम विचार और स्वार्थ सिद्ध करने में वे अनादि से कुशल हैं । इन की कला के १६ रूप हैं जिन को जानकर इन के फंदे में न फंसनेवाला कोई विरलाही है ।

दीवान की षोडश कपट कला[1] ।

१ घबराकर पूछने की कला[2] २ समझाकर पूछने की कला[2] ३ चकित होकर अथवा अचंभित करके पूछने की कला[2] ४ निरपराधी को अपराध लगाने की

[1] कामन्दकीय नीतिसार में मंत्री को शोभा देनेवाली ये १६ कलाएं लिखी हैं—१ सत्य का आग्रह रखना । २ स्वदेशाभिमानी होना । ३ कुशलवक्ता होना । ४ कुल, शील और बलवान होना । ५ संभाषण करने में सारग्राही होना । ६ गम्भीर होना । ७ शास्त्रवेत्ता और दुर्गुणरहित होना । ८ समय सूचकता (हाजिर जवाबी) रखना । ९ उत्साहवान् होना । १० विकार रहित रहना । ११ धैर्य रखना । १२ सब से हिलमिल कर चलना । १३ कला कौशल जानना । १४ विवेकवान् और प्रतापवान होना । १५ शीघ्रता से कार्य सिद्ध करना । १६ राजभक्ति रखना ।

[2] नन्दकुल का निकन्दन करनेवाले चाणक्य मुनि ने, राक्षस मंत्री के मित्र चन्दनदास से उस का भेद जानने के लिये इन तीन कलाओं का वर्त्ताव किया था ।

कला ५ पेट में पैठ कर गला घोंटने की कला । ६ मीठा बोल कर कार्य साधने की कला ७ राजा की प्रसन्नता दर्शाकर कार्य सिद्ध करने की कला ८ राजा के नाम से द्रव्य लेकर पचा बैठने (हजम कर जाने) की कला ९ निन्दा फैलाने की कला । १० लोगों को अपने पक्ष में करने की कला । ११ दोनों (वादी प्रतिवादी—फरीकैन) के पास से द्रव्य लेने की कला । १२ योग्य के साथ मित्रता और शत्रुता रखने की कला । १३ राजारानी का वल्लभ होने की कला—दोनोंके बीच में शत्रुता करा देने की कला । १४ राजा को संशयवान् (वहमी—शक्की) करने की कला । १५ राजा को नेत्रहीन रखके दोषों को गुप्त रखने की कला । १६ बदलते (विपरीत होते) हुए राजा को घबराकर अंकुश में लाने की कला ।

चंद्रमा में तो षोडश कलाएं एक के पीछे एक रहती हैं, परंतु इन प्रधानों में ये समग्र कलाएँ एक साथ समा रही हैं. वे अंकुशरहित उन का उपयोग मदोन्मत्तता से करते हैं, और इसी कारण इन मंत्रियों का कि जो सदा दूसरे को मंत्रने में निपुण हैं कभी विश्वास नहीं करना । वे अपने अन्नदाता—स्वामी को मार डालने—उस का निकन्दन करने में भी कदापि पीछे नहीं हटते, इस प्रसंग पर एक सत्य वार्त्ता कहता हूं सो ध्यान देकर श्रवण कर ।

नन्दनिकन्दन कथा ।

पहले समय में, श्रीकृष्ण भगवान से अनेक वार पराजित किये गये जरासंध नामक राजा के राज्य अर्थात् मगधदेश में महानन्द नाम का एक राजा राज्य करता था । यह राजा महामदानन्द और क्रोधकलेवर था । शकटाल नाम करके एक उस का प्रधान था कि जिस ने अपना प्रताप इतना अधिक बढा लिया था कि जिस के कारण से राजा पराधीनता को प्राप्त हुआ दृष्टि आता था । प्रधान शकटाल उद्धत—स्वभाव और अत्यन्त अभिमानी होने के कारण सदा राजा को अपनी मुट्ठी में रखने में तत्पर रहा करता । अमात्य के

---

२ " कहो सेठजी ! आप के यहां की स्त्रियां बडी छली हैं, और अमुक पुरुष ने उन पर फर्याद की है " इसी ढंग की अनेक बातें कह कर घबराहट पैदा करना ।

अंकुश की अनी से उत्पन्न हुए क्रोध ने अपना प्रभाव राजा को दर्शाया कि जिस के वश होकर उस ने प्रधान को पूरा दंड देकर प्रतिष्ठा के पाट से उत्तार दिया।

इस प्रकार प्रतिष्ठा भङ्ग होकर अनादर प्राप्त होने के कारण शकटाल का शरीर शत्रुभाव से परिपूर्ण हो गया—उसकी रग २ में रिपुता का रोग व्याप्त हो गया इस लिये मानभङ्ग का वदला लेने एवम् अपनी पूर्व प्रतिष्ठा को पुनर्वार सम्पादन करने के लिये उस ने दृढ निश्चय किया। एकदिन राजा और मंत्री दोनों मृगया खेलने के लिये वन में गये। वडी दूर निकलजाने पर राजा तृषित होकर घवराने लगा और अन्त को एक वावडी में जलपान करने के लिये उतरा, उस समय शकटाल ने सुअवसर जान महानन्द के प्राण हरण किये और उस को वहीं एक शिला के नीचे दवा दिया।

गुप्तमार्ग (सुरंग) से नगर में प्रविष्ट होकर शकटाल ने सच्चा वनने के लिये राजा की खोज कराई। प्रजा में घवराहट मच गई और चहुं ओर दूत पर दूत दौडने लगे परन्तु महानन्द का पता नहीं लगा किंतु जंगल में भटकता हुआ उस का घोडा लेकर दूत लौट आए। अपने किये हुए काले कर्म का दुराव करते हुये शकटाल ने कहा कि कहीं आखेट करते समय राजा का स्वर्गवास हुआ है और इस लिये महानन्द के ज्येष्ट पुत्र का राज्याभिषेक किया। "खून चौडे हेला पाडै है" इस मारवाड देशीय कहावत के अनुसार शकटाल के कर्मकपाट भी खुल गये। शकटाल के इस घोर अनर्थ ने किसी प्रसंगवश उस के शत्रु के मन में संशय उत्पन्न किया इस लिये उस (शकटाल के शत्रु) ने महानन्द के पुत्र—विद्यमान राजा को इस वात की शोध करने के लिये कहा। उस ने विचार किया कि यदि कोई सिंहादिक राजा के प्राण लेता तो घोडे का जीवित रहना कदापि सम्भव नहीं था, और जो लुटेरे उस को लूटते तो अश्व पर का वहु मूल्य सामान किस लिये छोड जाते, इस लिये शकटाल को बुलाकर उस ने पूछा तो उस ने अपना अपराध स्वीकार करते समय कहा कि "अपना प्रभुत्व प्रगट करने के लिये निर्लोभता से मैं ने आप के पिता को प्राणरहित किये हैं परन्तु आप को सिंहासन दिया है।" नँदनन्दन के चित्त पर

१ हत्या प्रगटरूप से पुकारती है अर्थात् अपने आप प्रगट हो जाती है।

इस प्रकार राजगद्दी प्राप्त होने के कारण प्रसन्नता न हुई किन्तु अपने पिता की अकाल मृत्यु का घोर आघात पहुंचा, इस कारण उस ने शकटाल को तुरन्त वन्दीगृह में भेज दिया; परन्तु यह बात तो प्रज्वलित अग्नि में घृताहुति देने की नांई हुई। राजा ने अपने पिता की हत्या करनेवाले प्रधान के सारे कुटुम्ब को भी कारागार की हवा खाने के लिये भेज दिया और उन के निर्वाह मात्र के लिये थोडासा आटा दिया जाने का प्रबंध कर दिया।

राजा प्राय: मूर्ख होते हैं, और विचारशील राजा भी कभी २ बडी भूल करते हैं। वे जिस पर प्रसन्न होते हैं उस को एक साथ अत्यन्त चढा देते हैं परन्तु जिस पर अप्रसन्न होते हैं उस को मिट्टी में मिला देने में भी विलम्ब नहीं करते। इसी पर कहा हुआ परशुराम नामक कवि का वचन है कि "राजा, जोगी, अग्नि, जल इन की उलटी रीति। डरते रहियो परशुराम, ये थोडी पालैं प्रीति।" राजाओं को चाहिये कि किसी को चढावें नहीं। कदाचित् कोई अपने आत्मबल से चढ जाय तो उसकी चौकसी रखना उचित है, इस पर भी चढता चला जावे और उस की वृद्धि को रोकने की आवश्यकता हो तो उस को निर्मूल करना चाहिये। यदि उस का एक भी अंश सबल रह जाता है तो वह अवसर पाकर अपना बदला लेने में कदापि नहीं चूकता और उलटा, राजा को निर्मूल कर छोडता है।

कारागार की कठिन यंत्रणा शकटाल को अत्यन्त असह्य हुई। उस ने वन्दीगृह में पडे हुए अपने कुटुम्ब वालों को पूछा कि 'इन १०० जनों में (उस के १०० पुत्र थे) कोई मेरा वैर लेने वाला है?' ९९ पुत्रोंने कहा कि "जैसा किया तैसा पाओ और जो बोया सो लवो! किस लिये अपने अन्नदाता का घात किया था? उस ने अपनी क्या हानि की थी कि जिस से राजा को मार डाला अत: अब अपने किये कर्म के फल भुगतो" १०० वां पुत्र कहने लगा कि "चाहे जैसा है तो भी यह अपना पिता है, उस के अवगुणों को देखना क्या? अपने कार्य के लिये राजा का नाश किया है। राजा अपने पिता के साथ वैरभाव रखता था तो ऐसा कौन होगा कि जो अपने शत्रु का संहार न करे। अपने पिताजी ने राजा को मार करके कुछ अपना भला नहीं विचारा, किन्तु उस के ही पुत्र को गद्दी पर बिठाया तो इस में क्या अपराध हुआ? एक

बुरा काम किया तो क्या दूसरा अच्छा नहीं किया ? तदुपरान्त अपराध तो अपने पिताने किया है, पर अपन सबने कौनसा अपराध किया कि एक के बदले १०० के प्राण लिये जाते हैं ? यह कैसा न्याय ? अतः अपने पिता का वैर तो लेना ही चाहिये।" शकटाल ने जाना कि यह पुत्र अवश्य वैर लेवेगा इस लिये सब का सब आटा उस को दिया और कहा कि "हम तो मरेंगे पर तू वैर लेना"।

वन्धन में पडे हुए शकटाल के वंश का शनैः २ नाश होने लगा और एक के पीछे एक एक करके वह तथा उस के और सब पुत्र परलोक को पयान कर गए, और १२ वर्ष व्यतीत होगए तो भी एक पुत्र नहीं मरा। एक दिन राजा ने पूछा कि 'अब भी कोई वन्दीगृह में जीता है वा नहीं ?' आटा पहुंचाने वालों ने कहा "हां महाराज ! कोई अब तक आटा लेता है।" राजा ने उस को जीवदान देकर वन्धन से मुक्त किया।

यह कनिष्ट पुत्र वन्दीगृह से छूटने के अनन्तर राजा के राक्षस मन्त्री के पास नौकर रहा। एक समय मंत्री ने प्रसन्न होकर उस को कार्य सौंपा कि राजा के यहां श्राद्धहै सो मुख्यासन पर बैठाने के लिये किसी प्रतिष्ठित ब्राह्मणको बुला ला। शकटाल का कनिष्ट पुत्र तुरन्त गंगातट पर किसी ब्राह्मण को खोजने को गया। वहां कोयलेसा काला और क्रोध की मूर्त्ति चाणक्य नामका एक ब्राह्मण अरण्य में बैठा हुआ कुशा के मूल में मधु और आटा पूरता था। प्रणाम करके उस ने भूदेव से पूछा "ऋषिराज ! आप क्या करते हैं ?" उस ने कहा "इस दर्भा की नोंक चुभने से मेरे पिता की मृत्यु हुई है उस का वैर लेने के लिये मैं इस दर्भा को निर्मूल करता हूं। यह मधु और आटा डालने से चींटिया इस के मूल को खा जायंगी और इस का निर्वंश होगा।" कार्यभारी के पुत्र ने मन में कहा कि "यह अवश्य नन्द के वंश को नष्ट करेगा, इस का निमंत्रण करूं कि यह राजा पर कोप करे कि बस।" चाणक्य ने उसके निमंत्रण को स्वीकार किया। श्राद्ध के दिन चाणक्य मुनि को, कि जो काले वर्ण वाला, एक आंख से काना, कुरूप और श्राद्ध में निषिद्ध था मुख्य आसन पर स्थित देखते ही नन्द के शरीर में क्रोध व्याप्त होगया और सेवकों को आज्ञा दी कि इस को तुरन्त निकाल दो। चाणक्य को उठाते समय सेवकों ने उस के धक्के मारे जिस से श्राद्ध के दिन खैंचातान में शिखा के केश विखर गये; इस से वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और कहा कि "मैं

इस मदोन्मत्त नन्द को निर्वंश करूंगा तबही अपनी शिखा को फिरसे बांधूंगा। जिस को राज लेना हो सो मेरे साथ चलो ।"

इतिहास में प्रसिद्ध चन्द्रगुप्त मृत महानन्दका अनौरस पुत्र था और नवनन्द उस को दासी पुत्र कह कर धिक्कारते थे । उस ने विचार किया कि मैं इस के साथ जाऊंगा तो कदाचित् भला होगा, इस कारण वह और शकटाल का पुत्र चाणक्य के पीछे २ हो लिये । चाणक्य अपनी पर्ण कुटी में गया, वहां इन दोनों ने जाकर प्रेम पूर्वक उस को प्रणाम किया । तदनन्तर यह निश्चय किया कि अनेक भांति करके राजा को नष्ट करना । पहले तो चाणक्य की प्रतिज्ञा पूर्ण करने के अर्थ अरण्य के दर्भ का विध्वंस किया । तिस पीछे नन्द की राजनीति और उस के राज्य का सब भेद जान लिया; और राजा के मुख्य मंत्री राक्षस को कि जो अत्यन्त विलक्षण था, दूर करने के अनेक प्रयत्न किये । विचित्रबुद्धि राक्षस ने इन के रचे कपट—जाल का तन्तु २ बिखेर दिया तो इन्हों ने नैपाल के राजा पर्वतेश्वर को आधा राज्य देने का वचन दिया और उस की सेना को मगध पर चढा लाये और इस प्रकार नवनन्द को निर्मूल कर दिया ।

चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को राज्य—तिलक देने का वचन दिया था, और अब नैपालेश्वर आधे राज्य का अधिकारी हो गया, इस से अपने वचन को निष्फल होता हुआ देख कर अपनी कुटिल नीति की करवत चलाई । पर्वतेश्वर के दो पुत्र मगध देश को विजय करने के लिये आये थे उन में से मलयकेतु के पास दूत भेजा कि "चाणक्य वडा कुटिल है । 'सौ में सूर (अंधा) सहस्र में काणा, सो यह काना कपट करके तुझ को मार डालना चाहता है" यह सुनकर मलयकेतु तो अपने देश को पलायन कर गया । दूसरे पुत्र विरोधक को खड्ग से खपा दिया और पर्वतेश्वर जो विषयान्ध था उस के पास परम सुन्दरी विषकन्या[१] को भेंट में भेजी और कहला भेजा कि "आप ने हमारी परम सहायता की है इस कारण नगर में से पहली भेट जो हम को मिली सो आप स्वीकार करें ।" प्रेमपूर्वक विषकन्या को ग्रहण कर उस के साथ विलास करते समय पर्वतेश्वर भी नवनन्द के साथ स्वर्ग को सिधारा ।

---

१ अपने विरोधी को विनष्ट करने के लिये कन्या को जन्म से ही विष जराकर विष-मय कर रखते हैं ।

इस प्रकार से शकटाल मंत्री के एक पुत्र ने सारे नन्दनकुल का नाश करा दिया । कार्यभारी अत्यन्त कुटिल कर्मों—वाले होते हैं अतः उन का विश्वास कदापि नहीं करना । यदि उन के साथ सम्बन्ध हो तो अति चतुराई के साथ वर्त्तना चाहिये । अमात्य के अपकृत्य का वर्णन करने में चतुर्मुखधारी ब्रह्मा वा सहस्र मुखवाला शेषनाग भी समर्थ नहीं तो मनुष्य की कौन गिनती है ।

सर्ग ग्यारवां ।

६४ धूर्त्तों का वर्णन ।

पिछली रात्रि को जब कि सर्व स्थलों में जल जम रहा था, और कहीं भी मनुष्य के चलने फिरने का शब्द नहीं होता था उस समय धूर्त्त—शिरोमणि मूलदेव महाराज ने शिष्यों को अपनी कपट—कला का उपदेश करना आरम्भ किया । उसने अति सुन्दर स्वर से चन्द्रगुप्त को कहा:-बेटा ! बहुतसे द्रव्य हरण करनेवाले लोगों का वर्णन तुझ को मैं ने श्रवण कराया है परन्तु और भी छोटे २ कई लुटेरे हैं कि जिन का विस्तार पूर्वक वर्णन नहीं हो सकता, तथापि संक्षेप से कुछेक का वर्णन करता हूं ।

६४ धूर्त्त ।

१ इस भूमंडल के एक छोर से दूसरे छोर तक सम्पूर्ण स्थलों में माया की अपार लीला फैल रही है कि जिस की सीमा नहीं । जिस भांति धीमर (मच्छी-मार) बुद्धिशून्य मछलियों को फंसाने के लिये जाल फैलाते हैं, और अज्ञान मछलियां उन में फंस कर अपने प्राण खो देती हैं तैसे ही अनेक जन ऐसे मायावी हैं कि भोले भाले मनुष्यों पर भुरकी डालकर कलेजा काढ़ लेते हैं ।

२ दूसरा धूर्त्त वैद्य है । जिस अमूल्य प्राण के लिये मनुष्य को अनेक प्रयत्न करने चाहिये वह अपना सर्वस्व और मुख्य प्राण सदा सर्वदा वैद्यों के हाथ में रहता है । वैद्य लोग उस प्राण को खिलाखिला कर देह को अत्यन्त कष्ट देते हैं । इस कारण वैद्यों को विरह की नाईं अतिशय दुःखदाई समझना चाहिये । जैसे ग्रीष्म ऋतु

के दिवस तृषा उत्पन्न करके अत्यन्त व्याकुल करतेहैं, वैसे ही वैद्य जन भी झूठी झूठी आशाएं देकर शरीर को शुष्क कर देते हैं । वे अपनी विद्या की परीक्षा करने के लिये नाना प्रकार की औषधें अदल बदलकर अनेक उपायों से सहस्रों मनुष्यों को परलोक पहुंचा देते हैं । तब अन्त में सिद्ध वैद्य बनते हैं । इन के कहने से पुष्टिकारक और कामोत्पादक औषधों का सेवन करना नितान्त मूल है । सच्चा वैद्य तो विरली ही जगह मिलता है । इस कारण नाम के वैद्यों का विश्वास नहीं करना ।

३ धन को हरण करनेवाला तीसरा धूर्त जोषी (ज्योतिषी) है । वह राशि-चक्र लिखकर, मुख से चेष्टा कर, हाथ की उंगलियों के पेरुओं पर मीन मेष की गणना कर और अति गम्भीर भाव से विचार करने का ढोंग करके बडी देर पीछे प्रश्नकर्ता के प्रश्न का उत्तर देता है, और आकाश मण्डल में सूर्य के साथ विशाखा का समागम बताया करता है. परन्तु उस की स्त्री अनेक जारों के साथ किस २ भांति से विलास करती है जिस को वह नहीं जानता ।

४ चित्रकार । धन प्राप्त करने के लिये पहले तो वह चित्रकारी सीखने में अपने धन को स्वाहा कर देता है और तब किसी चित्रों के रसिक धनवान को खोज करके उस को अपनी चतुराई में फंसा कर उस के द्रव्य का नाश करा देता है ।

५ धातु को मारना जानने वाले वैद्य । ऐसे वैद्य लोगों को कहते फिरते हैं कि 'हम ने अनेक जडी बूटियों के संयोग और बडे परिश्रम से अमुक रस तयार किया है कि जिस का सेवन करने से वृद्ध पुरुष भी तरुण होजाता है और सहस्रों स्त्रियों को रति—क्रीडा में पराजित कर सकता है । वह ऐसी २ बातें बनाता है परन्तु स्वयं नागाभूखा, दरिद्री और दुर्बल देखा जाता है । पुनः तांबे के कलश जैसे मस्तक वाला वृद्ध रसायनी वैद्य श्वेत बालों वाले लोगों के पास केशों को भंवर जैसे काले कर देने की बातें करके द्रव्य खैंचता है ।

६ सिद्धमंत्री—तारकासुर और शम्बरादिक की स्त्री के साथ भी विलास करने की आशा रखनेवाले कई एक कामी जन बिल्वफलादिकका हवन करते हैं और उनका धुँआ नेत्रों में जाने से अन्धे होजाते हैं तब कपाल के हाथ लगा कर अपने कर्मों को रोते हैं । कई एक प्रयोग जाननेवाले कहते हैं कि जो

आकाश का फल मिल सके तो देवांगना सहज में वश हो सकती है। और मच्छर की अस्थि प्राप्त हो तो उस से अनेक सिद्धियाँ सम्पादन की जा सकती हैं। यदि काले घोडे की लीद लेकर उस की वत्ती बनाकर दीपक जलाया जावे तो गगनमण्डल में देवताओं के मंदिर दृष्टि पडते हैं। जो मनुष्य अपने अंग में मेंडककी मज्जा लगाते हैं वे अप्सराओं को अति प्रिय होते हैं। मंगलवार को स्मशान का कोयला लाकर उस की स्याही बनावे और काग की पांख से कंकाकुंडी यंत्र लिख जिस के घर में डाल दे उस का उच्चाटन होता है। तथा काले उडदों को कुक्कुट के रुधिर से रंग कर देवी के आगे तीन दिन अमुक मंत्र का जप करने से इच्छित पुरुष की मृत्यु होती है। इसी ढंग की अनेक ऊटपटांग बातें करके अनेक स्थलों में, भ्रमण करते हुए अभिचारी (कामणगारे—जादूगर) जन ऋद्धि सिद्धि का लालच देते हुए हजारों मूर्ख नर नारियों को ठगा करते हैं।

७ वशीकरणी—जिन को कामतंत्र अथवा काम के मूल मंत्रों का तो किञ्चिन्मात्र ज्ञान नहीं, तोभी वशीकरन करने की इच्छावालें धूर्त लोग जहां तहां भ्रमण करके स्त्रियों को वशीकरण की भस्म देकर लूटते हैं।

८ मार्गों में फिरते हुए योगी बहुतसे साधारण दीक्षावाले ढोंगी साधु मार्गो में गुरु का ढोंग करके साधारण योग का ज्ञान कराके पारधी की नाईं मूर्खों को लूटते हैं; और उन की स्त्रियों को भ्रष्ट करते हैं।

९ हाथ देखनेवाले धूर्त्त—कितनेक धूर्त्त, इस कन्या के कर में धन की रेखा वडी है और उस का पति चंचल मनवाला है इस प्रकार कहकर कुलवती स्त्रियों के कमल से कोमल कर को मलते और दवाते हैं।

१० हाजरात—कई एक मायावी अपने अंगूठे के नख पर जल की बूंद डालकर किसी लडके लडकी को उस में देखने के लिये कहते हैं और अनेक प्रश्नों का उत्तर देकर मनुष्यों को भ्रम म डालते हैं। परन्तु वे वडे दम्भी जन हैं और जो कुछ करते हैं वह सब इंद्रजाल की नाईं मिथ्या है।

---

१ कई लोग कामाक्षी आदिक के मंत्रों का जप करके कहते हैं कि 'हमने उस देवी के साथ विलास करने के लिये यह किया है।' परन्तु बहुतसे जन अप्सराओं के साथ भोग करने के लिये उन के मंत्रों का अनुष्ठान कर परम दुःखी बने हुए जगत में प्रसिद्ध हैं।

११ कोई २ धूर्त मंत्ररहित साधारण धूप करके अपने शरीर में भैरवादिक को प्रविष्ट करते हैं, लोगोंके हाथ से मार खाते हैं और लोगों को ठगकर चैन उडाते हैं।

१२ अनेक मायावी बगल में पुस्तक को दबाकर कहते हैं कि इस में नागार्जुन नाम के धूप की विधि बहुत अच्छी लिखी है; इस लिये यह प्रयोग करो तो कार्य–सिद्धि होगी। ऐसे कह कर लोगों का द्रव्य अग्नि में फुंका देते हैं।

१३ और भी मिथ्या धूप ध्यान करने वाले कई लोग हैं। इन धूप करने वाले धूर्तों को याक्षिणी के पुत्र जानना, क्यों कि वे दरिद्री और स्थितिरहित फिरते हैं यह उन के दुष्कर्मों का फल है।

१४ धूर्त। कई एक धूर्त्त कहते हैं कि अमुक धनाढय महाजन ने मेरे पास से मेरी लडकी को पुत्र की नाईं रुपये देकर मोल ली है। ऐसी झूठी बातें बनाकरके विचारे वणिक को, कन्या के लिये उस की अनेक भांति से निन्दा करके लूट लेते हैं, क्यों कि प्रतिष्ठा के भय से वह उन को, द्रव्य देकर दवाना चाहता है।

१५ मुनि चोर। जो अपने अभिप्राय की बातें करता हो; और मर्म जानने वाला हो उसको हृदय–चोर जानना चाहिये। ऐसे मनुष्यों को; चर्चा देखने के लिये दूसरों के पठाये हुए दूत समझना। वे मौनी और बहरे हो कर रहते हैं; अतः उन से सावधान रहना।

१६ दंभी चोर–अपने शरीर में भस्म रमा कर साध्वी हुई वेश्या; वृद्ध जती और देवसेवा रखने वाली वृद्ध गणिका–अपने यहां नित्य प्रति सांझसवेरे ठाकुरजी

---

१ अन्य जाति वाले की अथवा दूर देश से कन्या लाने के सम्बन्ध में यह बात है। चाहे जहां से कन्या विवाह लाने वाले इस प्रकार फंस जाते हैं, क्यों कि वास्तव में हो कन्या हर किसी जाति की होती है और इसी लिये कई एक धूर्त घबराहट उत्पन्न करके उस का लाभ उठाते हैं।

रामपुर में कुशलचन्द नामक महाजन पर ऐसी आपत्ति आई थी। इस बात को अनुमान से ५–७ वर्ष हुए। कुशलचन्द ने अपने लडके का विवाह दक्षिण देश के किसी ग्राम में रहने–वाले एक मारवाडी की कन्या से किया था। इस कारण २–३ धूर्तों ने आकर उस पर दवाव डाला और अन्त में २००० रु० लेकर चम्पत बने।

के दर्शन कराने वाली गणिका—ये सब, अनेक उपायों से कुलवती स्त्रियोंके धन और शीलका भंग करते हैं, इन से बचे रहना।

१७ कामीचोर—एक धनाढ्य तरुण विधवा स्त्री तेरे सदृश तरुण छैल को गुप्तपति करना चाहती है ऐसी अनेक गढन्त करके मूर्खोंको फंसाकर उन का सब धन आप पचा जाते हैं, उन से सावचेत रहना।

१८ कालचोर—निरन्तर वेतन पर काम करने के लिये रहनेवाले—बढई, लोहार, राज और गुमाश्ते आदिक अपने करने के काम में बारम्बार विघ्न लाकर दिनेक दिन बिता देते हैं, और सदा खेला करते हैं। अतः इन धूर्तों को कालचोर जानना।

१९ रमलवाले। अत्यन्त प्रसिद्ध और कपट—कला में परम प्रवीण जुआरी पाशा (रमल) चलाने के नाम से भिन्न २ गणना करके, अनेक भांति से हाथचालाकी करके अनेक प्रकारके छल छन्द रचते हुए देशविदेश में भ्रमण और द्रव्य हरण करते फिरते हैं।

२० जिस के घर में आमदनी भोजनमात्र जितनी होती हो और वह जुआ, मद्य, और वेश्या के लिये बहुत द्रव्य उडाता हो उस मनुष्य को घर का चोर अथवा नीच कृत्य करनेवाला किम्वा पराये घर का दास जानना; और उस से सावधान रहना।

२१ 'शास्त्र मात्र तो किसी के रचे हुए हैं इसलिये वे सब बनावटी और मिथ्या हैं; तैसे ही क्या कोई परलोक देख आया है? नहीं। तो पर लोक कैसा?' ऐसे कहने वाले चाण्डाल चार्वाक् का कदापि विश्वास नहीं करना; कारण उस मतवाले हाथी को किसी का डर नहीं है।

२२ लाभचोर—अधिक लाभ का लालच रखनेवाले लोगों को दुगुना लाभ दर्शाकर उन से बहुतसे रुपये ऋण लेता है, ऐसे को अधिक चतुर और लाभ—चोर अर्थात् जैसे बने तैसे द्रव्य इकट्ठा करनेवाला जानना।

२३ न्यायचोर। मनुष्यों के पाससे धन निकलवानेवाले कई एक विद्वान कहा करते हैं कि समुद्र के आधार से उस में के जल को शोषण करनेवाला वडवानल रहा है; ऐसे भाषण करनेवाले भट्ट लोगों को न्यायचोर जानना।

२४ सुखचोर—जो मित्र केवल वैभव काही उपभोग करने की इच्छा रखते हों; और जब विपत्ति आवे तब तटस्थ होजाते हों ऐसे मित्रों को सुखचोर जानना ये तो धन के दौडाये हुए दौडते हैं ।

२५ कर्णचोर—जो मनुष्य किसी नई घटना का, बिना कल्पना करनेके बडे २ शब्दों में वर्णन करके दूसरे को प्रसन्न करते हों उन को कर्णचोर—जाति के धूर्त समझना ।

२६ स्थितिचोर—संभाषण में सयानत करनेवाले धूर्त जन दोषों में भी गुणों का आरोपण करके मिथ्या प्रशंसा करते हैं; और अपने पर प्रीति उपजाकर बडी रचना रचते हैं । ऐसे दुराचारी लोगोंको स्थितिचोर अर्थात् हालत में फेरफार करने वाले जानना ।

२७ गुणचोर—अनेक प्रयत्न करके दूसरे के गुणों को ढकता हुआ अपने गुणों का वर्णन करे उस मनुष्य को गुणचोर जानना । ऐसे धूर्त मूर्खों के मन पर अपना आतंक जमा सकते हैं । ऐसे महिमा के चोर इस समय संसार में बहुत हैं ।

२८ वृत्तिचोर—पहले तो अपने साथ प्रीति बांधकर अत्यन्त वल्लभ बन जाता है और दूसरे के पास से, जिस मार्ग से जो कुछ मिलता है उस से जानकार होजाता है तब मत्सरता से अनेक कपट रचकर उस आय को रोककर अपनी ओर खैंचता है; उस से सावधान रहना और उस को वृत्तिचोर जानना ।

२९ कीर्त्तिचोर—बाह्य और अभ्यन्तर इन्द्रियों का निग्रह न करता हो, भक्ति भाव का लेश न रखता हो तथापि अति कठिन तप करने का ढोंग करता हो उस को कीर्ति चोर समझना । ऐसा मनुष्य अपने ज्ञान की गौरवता को प्रगट करता हुआ सत्पुरुष का तिरस्कार करता है और स्वार्थ साधता है ।

---

१ शम, दम को धारण करने से कोई भी नहीं जानता परन्तु व्रतादिक—बाहर का ढोंग लोगों की दृष्टि में आता है कि जिस से लोगों में उस की कीर्ति फैलती है । जितने व्रत करनेवाले हैं उन सब को कीर्तिचोर जानना । बाइबल में लिखा है कि " उपवास करना हो तो मुंह पर तेल लगाके कर परन्तु लोगों को बताने को मत कर । "

३० देश चोर—परदेश में नाना प्रकारके उत्तमोत्तम पदार्थ खाने पीने को मिलते हैं, थोडा सहारा पाने से वहुतसा द्रव्य मिलता है और सब प्रकार का आनन्द रहता है; ऐसी २ वातें वनाकर कई धूर्त लोग पशु—समान मूर्खों को लुभाकर उन को अपनी मुट्ठी में करके देश छुडा देते हैं; इन को देशचोर जानना।

३१ स्वभावचोर—जो मनुष्य हास्य के अनेक भेदों से भरपूर और चालाकी मिले हुए वाक्य कह कर कौतुक किया करते हैं उन को स्वभावचोर जानना। वे इसी निमित्तसे द्रव्य हरण करते हैं।

३२ कुट्टन—जो पहले तो अपनी सब सम्पत्ति पर पानी फेर देता है और तिस पीछे दूसरों की दौलत पर दांत चलाता है; और प्रकाशरूप से वेश्या की प्रशंसा किया करता है कि 'जिन नहिं सेया गणिका का घर; उनका जीवन मनुष्य में खर'। ऐसे मनुष्य को जार—भडुआ जानकर उस से डरते रहना—कदापि उस का संग नहीं करना।

३३ कपटी साधु—जो अत्यन्त पवित्रता प्रगट कर दूसरे का द्रव्य ग्रहण न करता हो, सब से श्रेष्ठ वनकर वैठता हो, नियमों को पालन करता हो और निस्पृहता वताता हो ऐसे साधु को धूर्त[1] जानना चाहिये और उस का सत्संग भी नहीं करना।

---

१ इस पर एक वात प्रसिद्ध है कि काठियावाड में रस्ते जाते हुए दो मित्रोंने एक योगी को एक एकान्त स्थल में देखा। उस के पास न तो कोई वस्त्र था और न कुछ और सामान। एक मित्र ने कहा कि 'यह पूर्ण योगी है क्यों कि इस के पास वरतन वा वस्त्र एक भी नहीं तो धन और धान्य को लेकर कहां धरे' इस पर दूसरे मित्र ने उस की परीक्षा लेने का संकल्प किया और दोनों ने पास जाकर नमन किया। परन्तु वावाजी तो नेत्र मूंदे हुए बैठे थे इसलिये न तो उन्हों ने कुछ देखा और न कुछ वोले। तव एक ने कहा, मुझ को पांच रुपये ऐसे सत्पुरुष की भेट करना है परन्तु क्या करूं? महाराज तो मौन धरे हुए हैं, देखते भी नहीं और इन के पास वस्त्र भी नहीं कि जिस के पल्ले वांध देता। जो पास धर जाऊं तो कोई दुष्ट उठा लेजावे तो क्या जान पडे इसलिये लाचार! चलो भाई।' ऐसे कहकर ज्यों ही जाने का विचार किया कि तुरन्त वावाजी ने मुख फैलाकर दर्शाया कि मुख में रखदे। उन्हों ने एक चुकटी धूल की वावाजी के मुख में डालते हुए कहा कि 'धन की तृष्णा कोई नहीं छोडता!'

इस विषय में 'चोरी करे जटाधारी, मारा जाय घरवारी' की कहानी मंगा कर पढिये।

३४ नगर के निवासी और कपट कला में कुशल वणिक जब अपने घर में आते हैं तब अपने हाथ से बालक को काच का टुकड़ा देते हैं तो वह भी अमूल्य वस्तु बन जाती है ! वे ऐसे कपटी होते हैं कि उन के हाथ ही में कुछ खूबी है अर्थात् वे ऐसे कपटी हैं कि काच देकर कंकण उड़ा लेते हैं अतः इन से सावधान रहना चाहिये ।

३५ अपनी इच्छा के अनुसार वर्त्ताव करनेवाले, अपने अवटित काम करने की इच्छा करें तो उसे श्रेष्ठ बतानेवाले और मीठे २ बोल कर धन लूट लेनेवाले लोगों को विष जैसे जानकर उन से किनारा खैंचना ही अपना धर्म है । यदि ऐसा न करें तो वे हलाहल की नाईं अपने भीतर घुसकर अन्त में महादुःखी करते हैं ।

३६ महाराज तुम पर अधिक प्रसन्न हुए हैं, और एकान्त में तुम्हारी प्रशंसा करते थे, इस प्रकार कई एक धूर्त, बुद्धि के शत्रुओं को समझाकर उन के पास से रुपया ठगते हैं ।

३७ मैं ने एक मास पर्यन्त उपवास किये इस लिये महालक्ष्मीजी ने प्रसन्न होकर मुझ को दर्शन दिए और फिर, कर में कमल धारण कर तेरे घर में प्रवेश किया, उस समय आदर से मुझ को कहा कि "तुझ को जो कुछ आवश्यक होगा सो मेरा भक्त तत्क्षण तुझे देगा; तू जाकर उस को मेरा वृत्तान्त कहना" ऐसी बनावटी बातों से बहका कर मूर्ख लोगों को ठगते हुए अनेक धूर्त जहां तहां देखे जाते हैं । और वे लोभियों तथा मूर्खों को ही लूटते हैं ।

३८ अनेक धूर्त्त ऐसे होते हैं कि जब कभी कोई नगर बसता हो अथवा नष्ट होता हो, अथवा कोई विवाह वा यज्ञादि हो तो उस ससय अपने कुटुम्बी का वेष धारण करके मनुष्यों के बीच में घुस जाते हैं और अवसर पाकर वस्त्रमोचन कर जाते हैं ।

३९ जिस समय उस के सम्बन्धी और परिवार वाले मद्यादिक पान करते हों उस समय वह न पीताहो और रातभर जागरण किया करता हो अथवा दिनभर

---

१ धनवान पुरुषों के घर में जाने आनेवाले लोग प्रायः ऐसा करते हैं और चन्द्रगुप्त भी द्रव्यपात्र था इस कारण उस को उपदेश देते समय 'अपने' शब्दका प्रयोग किया है न कि वणिक के लिये ।

पाठ पूजा सेवा भक्ति किया करता हो उस मनुष्य को ऐसा समझना कि वह किसी सांकेतिक कार्य के लिये उद्योग कर रहा है; इस को बडा धूर्त्त जानना।

४० चोर—पुकारने पर उत्तर न देवे और प्रत्युत्तर दे तो हकबकाकर कुछका कुछ बोले, जिस के मुख परसे तेज उड गया हो; घबराता हुआ दृष्टि पडे और कभी २ कांपने लगे ऐसे मनुष्य को निःसंशय चोर जान लेना चाहिये।

४१ पापी—ढोंगी—जो सदा परम पवित्र रहने की इच्छा प्रगट करता हो, आडम्बर कर के संभाषण करता हो, और अपने नीच कृत्य को दुराता हो ऐसे मनुष्य को पापी और ढोंगी जानकर उस से सदा डरते रहना।

४२ जो मनुष्य अपने सन्मुख वा अनुपस्थिति में किये हुए काम को कहे वा न कहे अथवा नहीं किये हुए वा किये हुए को कहे वा न कहे और कार्य करते समय निर्भय हो करके करे ऐसे मनुष्यों से अवश्य भयभीत रहना।

४३ धूर्तकामी—जो समझ बूझकर मूर्ख बनकर स्त्रियों के मध्यमें नपुंसक की नाई, स्त्री के अनुकूल बातें करता हो उस को घर में रहा हुआ कामदेव समझना। वह स्त्रियों के साथ मीठी २ बातें करके अपनी हलकी इच्छा को पूरी करता है, इस कारण ऐसे धूर्त्त को अपने घर में नहीं आने देना।

४४ लक्ष्मी का चूहा—जो सदा सर्वदा नीचे को दृष्टि रखता हो, वैभववान होने परभी मैले कुचैले कपडे पहनता हो, दंत, अन न करता हो और धन के भंडार में बैठा हुआ लिखा करता हो उस को भांडार में रहने वाला मूसा जानना।

४५ व्यवहार दूत—जो हमेशा अपने घर में बैठा रहता हो, अथवा अपने इष्ट बांधवों के घर में बैठा रहता हो, और वहां घर की दडी बडी बातें बनाया करता हो उस को दूत जानना और ऐसे घर की बात लेजानेवाले का सर्वथा त्याग करना।

४६ जो मनुष्य ऐसा अनुचित कार्य करता है कि जिस के कारण से उस को निन्दा के योग्य अधिक दंड भरना पडे तो, उस मनुष्य ने अपने जीवन पर्यन्त भय से निर्वाह कर सके ऐसा एक अखूट संग्रह कर लिया है ऐसा समझना चाहिये। जैसे कि कृत्रिम नोट बनाकर लोगों में चला देता है और आप गत रहता है इस लिये कि कपट से उपार्जन किये हुए द्रव्य का निर्भय हो...

उपभोग नहीं कर सकता क्यों कि प्रगट होने पर जन्मपर्यंत दुःख की फांस गले में पडती है।

४७ गुप्त कामी—जो मनुष्य इन्द्रियनिग्रह की बातें करता हो, अष्ट प्रहर रामनाम जपता हो, बिल्ली की नाईं सदा नीचे को दृष्टि रखता हो, स्त्रियों का पूर्ण अभाव प्रगट करता हो, इन्द्रियदमन करनेवाले सन्त जनों की महिमा वर्णन करता हो और अपनी निन्दा करके आत्मा को नष्ट करता हुआ सांकेतिक बात में निष्कामीपन झलकाता हो उस को महा कामी और गुप्त चोर जानना।

४८ धूर्त मनुष्य, पहले तो मूर्ख के गुप्त वृत्तान्त को भली भांति देख लेते हैं और तिस पीछे उस का रहस्य क्षणमात्र में जानकरके उस मतिहीन को अपने आधीन कर लेते हैं, और वह मूर्ख अपनी गुप्त वार्त्ताओं के प्रगट किये जाने के भय से उस धूर्त्त से डर कर चलता है, इस कारण गुप्त वार्तालाप करने के समय सदा सावधान रहना चाहिये।

४९ अनेक धूर्त्त किसी धनाढय पर अन्याय करने के लिये विना राजा की आज्ञा के अपने घर में अथवा और किसीजगह में नकली सिक्के—रुपये आदिक बना कर अथवा मिथ्या लेख लिखकर अज्ञात रीति से उन को किसी द्रव्य पात्र के घर में रख आते हैं और तिस पीछे उस को भयभीत करके द्रव्य लुञ्चन करते हैं। अतः इन लोगों से अधिक सावधान रहना।

५० पाशधारी यम—जो धनाढय पुरुष हलके स्वभाववाले, शस्त्रधारी दुर्बल मनुष्य को अपने घरमें रखकर अन्नादिक से उस का पालन पोषण करते हैं उस लालन पालन से हृष्टपुष्ट हुए मनुष्य को पाशधारी यम समझना क्यों कि पुष्ट हुआ दुष्ट मनुष्य बुरा परिणाम उपजाता है।

५१ धूर्त्त लोग लज्जाशील, कुलवान; शुद्ध स्वभाववाले और मर्य्यादा के भीतर रहने वाले सत्पुरुषों पर व्यभिचार का दोष लगाकर, गर्भवाली स्त्रियों के द्वारा निष्पाप पुरुष को स्त्रीरूप बना देते हैं—सत्पुरुष अपने ऊपर आपत्ति आने के डर से उन के आधीन होकर रहते हैं और द्रव्य देते हैं।

५२ भोगलम्पट एक प्रकार के चोर हैं। ये लोग पति परदेश चले जाने पर घर में अकेली रहती हुई स्त्री को कपट भरी अनेक झूठी सची बातों से ठगते

हैं—वे कहते हैं कि "तेरा पति अब शीघ्र थोडे ही दिनों में आनेवाला है, अथवा वह रोग से पीडित है; किम्बा उस पर क्रूर ग्रह की कडी दशा है इस लिये ग्रह-शान्ति कर; नव ग्रह को नैवेद्य चढा; घी का दीपक कर और ब्राह्मणों को भोजन करा।" इत्यादिक इधर उधर की बातें मिलाकर भोलीभाली स्त्रियों को लूटते हैं।

९३ माया के पुतले धूर्त्त, मनुष्यों की भीड—मेले और उत्सवादिक में सुन्दर वस्त्र एवम् मूल्यवान् आभूषण पहन कर प्रवेश करते हैं। तदनन्तर अनेक लोगों के धन और वस्त्रों को चुपके से विदा कर उन्हें दीन कर छोडते हैं। ऐसा करते हुए पकडे जाते हैं तो कहते हैं कि 'हम ने तो हंसी की है' और कोई नहीं देखे तो लेकर चलते बनते हैं।

९४ कई धूर्त्त अपना घर छोड किसी लक्ष्मी से भरेपूरे नगर में जाते हैं, वहां आडम्बर करके अपने तईं लक्ष्मीपात्र प्रगट करते हैं और बडी भारी दूकान खोल-कर धन इकट्ठा करते हैं। तिस पीछे उस धन को घडों में भर कर अपने घर में गाड देते हैं। अच्छे साहूकार बनकर एक दो वर्ष तो भली भांति व्यवहार चलाते हैं पर, पीछे से लाखों की जमा डुबाकर दिवाला निकाल पलायन करजाते हैं।

९५ बहुतसे धूर्त्त सुवर्ण के चकचकाट झगझगाट भल भल करते हुए सुवर्ण के आभूषण धारण कर, मलमल के महीन कपडे पहन कर, जरी के दुपट्टे कंधे पर डालकर लोगों के पास जाकर कहते हैं—"अमुक शत्रु ने हमारे पिता को परा-जित कर मार डाला और हमारे राज्य को अपने आधीन कर लिया है, हम राज-कुल में से हैं;" ऐसे कह कर घर २ फिरते हुए अचम्भित करते हुए पुजाते हैं और बढाकर द्रव्य लेते हैं[1]।

९६ मूर्ख मनुष्य, धूर्त्त के कपट भरे हुए शब्दों से मोहित होकर अपने देश में उत्पन्न हुए हृष्टपुष्ट बैल को उसे देकर बदले में उस के पास से पवित्र बकरा लेता है और ऐसा समझता है कि बराबर (अथवा विशेष) लाभ हुआ ऐसा

---

१ लखनऊ और दिल्ली आदिक मुसलमानी राजधानियों में यात्रियों को विशेष कर ऐसे लोग मिलते हैं और अपने को नव्वाब के खानदान में से बतलाते हैं।

करके उस समय तो वह अत्यन्त प्रसन्न होता है परन्तु अन्त में जब वकरे को निरर्थक जानता है तब पछताता है।

९७ कोई मनुष्य, कोई पदार्थ अर्पण करे तो उस वस्तु का अनादर सहित त्याग करे तब जानना कि वह धनाढ्य लोगों की सम्पत्ति को द्वेषदृष्टि से देखता है। ऐसे धूर्त्त वेषधारी बाबाओं के निकट निर्धन मनुष्य भी भय रहित जाकर के उन की लटपट में फंस कर थोडे धनको भी उन की भेंट करते हैं।

९८ कई एक मायावी भोजपत्रादिक पर बडी २ रकमें लिख कर चहुं ओर भ्रमण करते हुए सहस्त्रों धनवंतों को लूटते हैं। पुनः अनेक जन पारस मणि का लोभ दिखाकर अथवा कीमिया (रसायण) करने का ढोंग बता कर लूटते हैं।

९९ कोई २ गंगा और गयाजी की यात्रा का ढोंग करके परदेश में जाकर द्रव्य हरण करते हैं और कईएक मूर्खों के पास जाकर कहते हैं कि "हमारा भाई

---

१ दृष्टान्तः-एक गृहस्थ के पास एक छोटासा शंख था जिस मेंसे नित्य प्रति सवा रती सुवर्ण निकला करता था; पर उस से वह संतुष्ट नहीं होता था। एक समय एक साधु उस के ग्राम में आया। इस साधु के पास एक शंख था। जब साधु कहता कि 'डफोल शंख लाख' तो शंख तुरन्त उत्तर देता कि 'ले दो लाख'। तब साधु कहता 'रहने दे बच्चा अब चाहिंगे तब लेवूंगा'। ऐसा खेल देख कर उस गृहस्थ का मन ललचाया और उस ने अनेक प्रकार से बाबाजी की चरणचम्पी आदिक सेवा करके प्रसन्न किये। जब बाबाजी प्रसन्न हुए तब वह कहने लगा कि 'महाराज! यह शंख तो मुझ को देओ। और यह मेरा छोटा शंख आप लेओ; इस में से सवा रती सुवर्ण प्रति दिन निकलता है सो आप जैसे महात्मा को बस है।' बाबाजी ने पहले तो बहुतसी आनाकानी की परन्तु पीछे पलटा कर लिया और दूसरेही दिन वहां से कूच कर गये। अब उस लोभी ने अपने घर जाकर कहा 'डफोल शंख! लाख'; त्योंही शंख बोला 'ले दो लाख' दो चार दिन तो बाबाजी की नाईं यह भी कहता रहा कि पीछे लेऊंगा। कई एक पीछे आवश्यकता हुई तब शंख तो 'ले, ले' कहा करे पर एक पाई नहीं देवे। निदान शंख ने कहा कि "मैं तो बातें करूं पर एक कौडी नहीं देऊं" तब वह लालची भट रोकर घर बैठा और सवा रती वाला शंख खोया।

मरगया है, अथवा गुरु मरगया है—जिसकी क्रिया करने के लिये द्रव्य चाहिये" इस प्रकार कह करके लोगों के पास से दान के मिष से द्रव्य निकलवाते हैं। पुनः कईतो कन्या का विवाह करने का वहाना कर के द्रव्य लेने को आते हैं।

६० रात्रि के समय में वेश्या अपने वस्त्रों को जला करके अपने पास सोये हुए मूर्ख को लूट करके चल देती है; पर उस वेश्या को भी खोटा रुपया देकर ठग जानेवाले लम्पट पुरुष भी विद्यमान हैं; इन दोनों से अपने को सावधान रहना चाहिये।

६१ ठग लोग किसी लक्ष्मीपात्र व्यापारी की दूकान पर जाकर उस के यहां से कई प्रकार का माल मोल लेते हैं; तब पीछे 'अभी दाम दिलाता हूं' ऐसा कह कर अपने साथ के किसी गूंगे बहरे आदमी को दूकान पर विठाकर आप माल लेकर चम्पत बनते है। जब उनको गये हुए वहुत विलम्ब होजाता है और कोई लौट कर नहीं आता है तो उस आदमी' को पूछते हैं; वह गूंगा और वहरा होने के कारण कुछ उत्तर नहीं दे सकता तब माथा ठोंक रह जाते हैं।

६२ धूर्त्त लोग अल्प परिचय, कुछेक निर्लज्जता और साधारण कल्पना इन सब साधनों से विवाद करके सर्वज्ञ बन वैठते हैं—मिथ्या पंडिताई का आडम्बर करके लोगों को लूटते हैं।

६३ धूर्त्त लोग मिथ्या धनाढ्यता के कारण, पुस्तकों के ज्ञान के कारण, कथा आदिक के ज्ञान के कारण; वर्णन करने में शूरवीरता दर्शाने के कारण और चपलता के कारण से चारों ओर प्रकाशते हैं।

---

१ एक समय की वात है कि—मेरे परम स्नेही श्री० पं० किसनलालजी साहव को मुम्बई में एक धूर्त मिला; उस ने कहा कि 'भुलेश्वर में मेरा गुरु मरा हुआ पड़ा है उस की दाह क्रिया के लिये जो श्रद्धा हो सो देओ।' उक्त पंडितजी ने कहा कि 'मृतक-संस्कार करने के लिये सोनापुर में धर्मार्थ काष्ठ मिलता है।' इस पर साधु बोला—काष्ठ के सिवाय मुझ को और २ सामग्री लानी है; क्यों कि मेरे गुरु की आज्ञा के अनुसार वड़ी धूमधाम से वैकुंठी निकालनी है। मेरे गुरुदेव वडे सत्पुरुष थे' पंडितजी उस की धूर्त्तता समझकर उस के साथ होलिये तो थोडी दूर जाकर वह मायावी उन के चरणों में गिर गया और कहने लगा कि 'हम अपने पेट के लिये करते हैं। आप को इस में कुछ लाभ नहीं' तब वे वहां से लौट आये बंबई की विचित्र लीला जानना हो तो मेरी बनाई हुई 'बंबई विहार' नाम की पुस्तक देखिये।

६४ अपनी इच्छानुसार फिरने वाला और कपट से साधुवेषधारी महा धूर्त अपने मनुष्यों को कह रखता है कि "जब मैं अपने शरीर को डुलाऊं तब तुम चले जाया करो ।" तब पीछे कोई भक्त मिलता है तो शरीर धुना कर अपने आदमियोंको विदा कर देता है और उस के पास जा करके भूतभूतल की बातें करके, भयभीत करके और घबरा करके, वस्त्र आभूषण और द्रव्य हर लेता है । तैसे ही, कोई २ कहता है कि "मैं श्रीपर्वत पर उत्पन्न हुए सौवर्ष के प्राचीन आंवले का फल खाकर आया हूं, और अभी शुभ शकुन है वा नहीं इस का विचार करता हूं ।" इस प्रकार से अनेक बातों के तड़ाके फड़ाके मार-कर मनुष्यों को लूटते हैं ।

इस भांति धूर्त्त लोगों के सहस्रों माया जाल—कपटकौतुक हैं कि जिन सब को कोई नहीं जान सक्ता । परन्तु मैं ने उन सब का सार तुझको ऊपर लिखे अनुसार थोड़े में सब कुछ कह बताया है । उन सब से चौकस रहकर धन की रक्षा करना चाहिये ।

बारहवां सर्ग ।

गृहस्थ तथा गृहिणी की कला ।

मूलदेव महाराज आज अधिक आनन्द में विराजमान थे । चन्द्रमा शिर पर प्रकाशमान था और सम्पूर्ण शिष्य जन इधर उधर बैठे थे । उस समय कुन्दकलिका की कान्ति को लज्जायमान करने वाले दशनों में से मंद २ मुसकुराते हुए चन्द्रगुप्त को कहा कि "वत्स ! जो जो कुटिल कलाएं थीं उन का उपदेश ११ रात्रि पर्यन्त तुझ को मैंने दिया । आज तक धूर्तता और माया का रहस्य तुझे समझाया; परन्तु अब उत्तम कलाओं का वर्णन करता हूं । पीछे वर्णन किये गये धूर्तों की कथा जानने के योग्य है; उस के जानने से नये २ ज्ञान का प्रसाद मिलता है । उस प्रसाद के प्रताप से मनुष्य किसी जगह नहीं फँसता । परन्तु स्मरण रखना कि उन ठगोंकी कलाओं का उपयोग तथा आचरण करना तुझ

को उचित नहीं। कलाओं में कपट रहित शुद्ध कलाएं भी बहुतसी हैं—अनेक कलाएं सुनीति से भरी पूरी हैं और वे सव ग्रहण करने के योग्य हैं, कारण कि उन पर अभ्युदय का आधार है।

केवल अर्थ कलाही से मनुष्य मात्र को लाभ नहीं पहुंच सकता किन्तु अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष इन चारों की कलाएं जानना अत्यन्तावश्यक है, इन में से तीन पदार्थ इस लोक में सम्पादन होते हैं और वे तीनों पदार्थ यथार्थ रीति से भोग लिये जाने के पश्चात् मोक्ष स्वतः ही प्राप्त हो जाती है. इस मोक्ष की भी कला हैं परन्तु वे इस लोक में भोगने के लिये नहीं रची गई हैं, इस लिये उन के सम्बन्ध में तुझे कुछ भी नहीं वताना है। संसार में अवतार धारण कर मनुष्य को सुख भोगना चाहिये जिस के मुख्य साधन स्त्री, पुत्र और द्रव्य हैं. केवल स्त्री हो पर पुत्र और द्रव्य से रहित हो तो मनुष्य मुरझाजाता है। इसी प्रकार द्रव्य हो और स्त्री पुत्र न हो तो द्रव्य फेंकने योग्य—निरर्थक है। इस लिये हे पुत्र! इन तीनों को एक साथ भोगना वडे भाग्य की वात है और ऐसे पुरुष को वडभागी कहते हैं. मैं तुझे पहले कह आया हूं कि स्त्री का विश्वास नहीं करना परन्तु स्त्री से सावधान रहकर सव काम करना। मतिमन्द मनुष्य मनमोहनी कामिनी के मोह—पाश में ग्रसित होकर उस के मनोरंजनार्थ अनेक प्रकार के खेल करता है. उस के सन्मुख कठपुतली की नाईं नाचता है जैसे स्त्री कहती है वैसेंही करता है और उस के विरुद्ध एक पैंड भी नहीं धरता। परन्तु चन्द्र-गुप्त! तू जानता है कि नहीं! कि ऐसा करना कठिनाई की ओर दुःखका मूल है। अतः ऐसा न कर चतुराई से उस के साथ वर्त्तनेवाला मनुष्य परम सुख को प्राप्त होता है। विवाह होने के पीछे वा पहले, परन्तु स्त्री को अवश्य सीखना चाहिये ऐसी वहुतसी कलाएं हैं. और उन को यथार्थ रीति से चतुराई के साथ सीखना चाहिये कि जिन के प्रभाव से वह स्वयम् सुखी होकर अपने पति आदि सव को सुखी रख सके। जिन उत्तम कलाओं के कारण स्त्री की शोभा और सारा सुख है उन को केवल श्रीशेषशायी नारायण वा रुक्मिणीपति श्रीकृष्णही जानते हैं. और इन्द्र, चन्द्र तो इधर उधर ही घूमा करते हैं।

सच्चरित्रशीला स्त्री की ६४ कला ।

१ षोडश शृङ्गार कला ।

१ मज्जन कला. २ कंचुकी ओढनी आदि वस्त्रधारण करने की कला. ३ बिंदा देने की कला. ४ शिरके बाल संवारने की कला. ५ वेणी गुंथने की कला. ६ नेत्रांजन कला. ७ अंगराग तथा मुख राग कला (शरीर पर सुगंध लगाने तथा पान खाने की कला ८ अवतंस कला. (वेणी और कर्ण में पुष्प टांगने की कला) ९ नथनी पहनने की कला. १० कंकण पहनने की कला. ११ कंठमें मालादि पहनने की कला. १२ कटिमेखला पहनने की कला. १३ कुचों पर चन्दन चर्चने की कला (जिस देशमें कंचुकी नहीं पहनी जाती जैसे काश्मीर और दक्षिण १४ पांव में पायल आदि धारण करना. १५ नेत्रों को चञ्चल होते भी स्थिर रखना. १६ चतुराई से वर्त्तने की कला ।

२ षोडश अंगशोभा कला.

१ हंस—गति से गमन करना. २ पैर के घूंघरू धमकाने की कला. ३ भ्रमर सदृश काले केश रखने की कला. ४ कहीं गोरापन और कहीं श्यामता दर्शाने की कला (इस से विशेष मोह उत्पन्न होता है) ५ दंत—पंक्ति मोतियों जैसी रखना. ६ नितंब भारी बताने और रखने की कला. ७ नखादिक स्वच्छ रखने की कला. ८ नासिका स्वच्छ और चमकती हुई रखने की कला. ९ पयोधर पीन रखने की कला. १० अधर अमृत—भरे रखने की कला. ११ कटि केहरिसी रखने की कला. १२ हाथ सुंदर रखने की कला. १३ कपोल कोमल रखने की कला. १४ चरण स्वच्छ रखने की कला. १५ होंठ और गाल पर तिल बनाने की कला. १६ अंग मदमत्त रखने की कला ।

३ षोडश पतिरंजन करने की कला ।

१ मुख प्रसन्न रखने की कला. २ स्मितहास्य विकासित मुखारविंद करकर बोलने की कला. ३ घर आने पर पति का सत्कार करने की कला. ४ रसोई बनाने और परोसने की कला. ५ मुखवास बनाकर देने की कला. ६ शृंगार

सजकर बताने की कला[1]. ७ उत्तम रीति से कविता और पुस्तकादि पढकर पति को प्रसन्न करने की कला. ८ पति की रुचि के अनुसार खेल खेलने की कला. ९ मनहरण गान करने की कला. १० मधुर वाणी बोलने की कला. ११ क्रूर वचनों पर उदासीनता प्रगट करने की कला. १२ पति के दोषों पर विचार न करने की कला. १३ प्रत्येक कार्य में पति को उचित सम्मति देने की कला. १४ पति के आरोपित दूषणों पर क्रोध न कर विनय दर्शाने की कला. १५ परपुरुष के साथ हास्य–रहित बातचीत करने की कला. १६ रति–विलास में संतोष देने की कला।

४ अष्ट क्षेमकला (गृह कार्य सम्बन्धी.)

१ किफायत करने की कला. २ परघर जाकर अपने घरके छिद्र न उघाड़ने की कला. ३ निर्धनता न दर्शाने की कला. ४ घर की संपत्ति को शुद्ध रखने की कला. ५ वर्त्तन बासन तथा घर को स्वच्छ रखने की कला. ६ वस्त्र आभूषण आदि संभालने की कला. ७ बालक को पालने की कला. ८ बालक को पढाने की कला।

५ अष्ट स्वाभाविक कला।

१ विनय विवेक धारण करने की कला. २ लज्जा करने की कला. ३ शील पालने की कला. ४ पति में चित्त लगाने की कला. ५ पिता के घर में भक्ति न रखने की कला. ६ मेले ठेले और नाटक उत्सव आदि में अकेली न जाने की कला. ७ बूढे बडों की उचित आज्ञा पालने तथा सेवा करने की कला. ८ स्वतंत्रता न दर्शाने की कला[2]।

स्त्रियों की इन ६४ कलाओं के सिवाय अन्य ६४ कला और भी हैं जिन का जानना भी तुझे बहुत लाभकारी है. इन कलाओं को कई पुरुष मुख्य नमान

---

१ गोस्वामी लोगों में ऐसी प्रथा है कि सायंकाल के ५ बजे बहूजी शृंगार सजकर, हास्यमय वदन रखकर पतिको मुख दिखाने के लिये जाती हैं।

२ बालापान पितुमातवश, यौवन पतिवश आहिं। पति अभाव रहै पुत्रवश, स्त्री स्वतंत्र कहुं नाहिं ॥ यह शिष्टजनों का मत और शास्त्रकी आज्ञा है।

कर गौण समझते हैं परन्तु उन में जो विशेषता (खूबी) है सो भी तुझ को बताऊंगा पहले कला सीखले.

कर्माश्रय २४ कला—१ गीत, २ वाद्य, ३ नृत्य, ४ लिपिज्ञान, (देश की भाषा और अक्षर जानना) ५ उदारवचन, ६ चित्रविधि, ७ पत्रच्छेद्य (पत्रादि पर खोदने की कला. इस कला का उपयोग शकुन्तला ने किया था), ८ माल्य विधि (नाना प्रकार के पुष्पहार बनाना), ९ पुस्तककर्म, १० आस्वाद्यविद्या (स्वादिष्ट पदार्थ बनाना और उन की परीक्षा करना), ११ रत्नपरीक्षा, १२ सीने की कला, १३ रंगपरिज्ञान (रङ्ग बनाने और मंडप रंगने की कला), १४ उपकरण क्रिया (रसोई बनाने का साहित्य सीखना जैसे कभी २० पाहुने आगए तो उन के लिये कौन २ सा पदार्थ कितना २ लेना. इस बात को नहीं जानने वाली बहुतसी स्त्रियां रसोई बनाने तो बैठ जाती हैं और पीछे से पति आदि को वारम्बार यह ला वह ला कह कर खेदित करती हैं. यदि कोई स्त्री दूसरों को नहीं सताती है तो उसी को हरेक पदार्थ लेने के लिये वारवार ऊठ बैठ करनी पडती है.) १५ मानविधि (मान देने तथा समय पर स्वयम् मानिनी होने की कला), १६ आजीवज्ञान (अपना निर्वाह किस प्रकार करना इस विषयका ज्ञान—अपनी आय में से उचित द्रव्य गृहकार्य में खर्च कर शेष बचा रखना) १७ तिर्य्यग्योनि चिकित्सा (पशु पक्षी आदि की वैद्यक जानना). १८ मायाकृत पाखंडसमय ज्ञान (दूसरे के किये कपट को यथार्थ रीति से जानना तथा स्वयम् कपट में प्रवीण रहना), १९ क्रीडाकौशल्य (अपने पति के साथ रतिरंग समय हास्य विनोद करने में कुशल होना. इस का जानना थोडा आवश्यक नहीं परञ्च अधिक आवश्यक है.) २० लोक ज्ञान) किसी के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध करना हो तो वह उत्तम मध्यम या अधम है ऐसा जानना) २१ विलक्षणता, २२ संवाहन (पति की पगचम्पी करना, शिर दाबना, इस कला को न जानने वाली अनेक स्त्रियां प्रायः अपने प्यारे पति को अप्रसन्न कर देती हैं. (२३ शरीर संस्कार (देह स्वच्छ रखने की कला) २४ विशेषकर कौशल्य कला) टीकी टपकी चोटी बेंदी करना ।)

पति के साथ भोग विलास करने की २० कला—१ आयुः प्राप्ति (तीन पासों का खेल यथार्थ रीति से खेलना जानने की कला-जैसे कि दो सार एक साथ कब चलना इत्यादि) २ अक्षविद्या (पासे किस प्रकार डालना) ३ रूप संख्या (दम्पति कभी होड बदे तो मूठ धरना) ४ क्रिया मार्ग (सार चलने का मार्ग कैसा है। उलटा सीधा तो दाव नहीं चला गया आदि) ५ बीज ग्रहण (होड दबने के पीछे पति के पास से द्रव्य कैसे निकलवाना) ६ नय—ज्ञान (हार जीत होने पर कैसे न्याय करना) ७ करणादान (होड में ठहराया हुआ द्रव्य कैसे लेना) ८ चित्राचित्र विधि (चित्रविचित्र खेल जानना जैसे चौसर, गंजफा, शतरंज बाघबकरी आदि) ९ गूढ राशि (मूठी में पैसे धर कर पूछना कि कितने हैं. पति जीते तो ५० के ५ बताना और आप जीते तो थोडे के अधिक अर्थात् ५ के ५० बताना) १० तुल्याभिहार (समान द्रव्य लेना और देना) ११ क्षिप्र ग्रहण. १२ अनुव्याप्ति लेखास्मृति (जीते हुए धन का हिसाब जानना किस लिये कि पति धोखा न दे सके. हास्य के लिये कभी ६० के १०० बताना.) १३ अग्रिमक्रम (खेलते समय आगे किस प्रकार दाव चलाना यह जानने की कला.) १४ छल व्यामोह (कपट करके मोह उत्पन्न करना) १५ ग्रहदान (होड बद कर मूठ भरी हो तो उतने पैसे देना)।

सजीव कला ५—१ युद्ध, २ रुत (हा हा खाना और बबराना) ३ गत (हारने पर खेल उठा देना. चलो २ जीते वाह जीतने वालों के मुख तो देखो! ऐसे कह खेल बिगाड देना. ४) नृत्य. ५ उपस्थानविधि (दो सखी वा पुत्र और पति खेलते हों तो एकसाथ प्रवेश करना.) ये सब कलाएं छोटे २ बालक भी जानते हैं और इन को द्यूत कला भी कहते हैं।

शयनोपचारिका षोडश कला—१ भाव ग्रहण, २ स्वराग प्रकाशन, ३ प्रत्यंगदान, ४ नखदंत विचार, ५ नीवी स्रंसन, ६ गुह्यका संस्पर्शनानुलोम्य, ७ परमार्थ कौशल्य, ८ हर्षण, ९ समानार्थता, कृतार्थता, १० अनुप्रोत्साहन, ११ मृदु क्रोध प्रवर्त्तन, १२ सम्यक् क्रोध निवर्त्तन, १३ क्रुद्ध प्रसादन, १४ सुप्त परित्याग, १५ चरम स्वापविधि, १६ गुह्य गूहनमिति।

उत्तर कला ४—१ साश्रुपात रमणाय शयन (पति कुपित होकर जाता हो तो अश्रुपात करके जाने का अवरोध करना) २ स्वशपथ क्रिया (मेरी सौं तेरी सौं

कर पति को प्रसन्न करना. और काम निकाल लेना.) ३ प्रस्थितानुगमन (पति रिसाकर जाता हो तो उस के पीछे २ जाकर मनाना) ४ पुनः पुनर्निरीक्षण (वारंवार पति को देखना) ।

इस प्रकार स्त्रियों की ये ६४ कलाएं हैं. सुशीला स्त्रियां अपने प्यारे पति को रिझाने के लिये इन सब कलाओं का उपयोग करती है. कि जिससे कैसाभी दुराचारी पति हो वह भी अपनी पत्नी में एकरस होजाता है. पुनः इन कलाओं को आन्तरिक ९१ कला है पर वे विशेष उपयोगी नहीं ।

उपरोक्त कलाओं को जाननेवाली विदुषी सदा अपने घर की शोभा बढाती है. विवाह करने से पहले चाहिये कि उस के गुण जानलेवे. गुणवती और कुलवाली स्त्री के साथ विवाह होने ही से परम सुख प्राप्त हो सकता है जिस कामिनी के— सुन्दर वर्णके आगे सुवर्ण की दमक कुछ नहीं केशों की श्यामता देख भंवर लज्जित होते हों, नेत्रों की शोभा निरख मृग दूर भागते हों, सुन्दर मुख की द्युति देख चन्द्रमा क्षोभ को प्राप्त होता हो, नासिका की लटक शुक के हृदय में खटकती हो, शरीर में से फैलती हुई सुगंध के सन्मुख कमल सकुचाते हों, दशनपंक्ति दाडिम के बीज और मोतियों को मात करती हो, अधर की अरुणता बिम्ब को शरमाती हो, कर्ण की आकृति देख कर सीप समुद्र में जा बसे, वाणी की मधुरता कोयल के हृदय में चुभती हो, कंठ की सुन्दरता देख शंखका तेज उड जाय, स्तनों की कठिनता और लघुता मनहरण किये लेती हो, नाभि की गंभीरता देख मन धीरज न धरे, कटि देख सिंह वन में भाग जाय, आहार देख मुनि जन भी लज्जित हों ऐसी परम रूपवती मनमोहनी सुन्दरी सचमुच घर का भूषण है, ऐश्वर्य की आत्मा है और लोक परलोक में परम सुख देनेवाली है. जो रमणी मंद मुसकानेवाली, थोडा बोलनेवाली, लज्जावाली, धीमी चालवाली कमल जैसी कोमल, बुद्धि जिस की विमल, पतिसेवा में लक्ष्मी का भी मन खट्टा करती है प्रभु में आस्था रखती है, पवित्र आचार और शुद्ध विचारवाली है, कुटुंबवाली और पूर्ण समझनेवाली, तथा प्रेम की पवित्रता और कांति को जाननेवाली है ऐसी स्त्री के साथ विवाह करना चाहिये, क्यों कि इसी में सच्चा सुख है । लम्बी ताड जैसी, क्रोधवती, तिरछी गर्दनवाली, बहुत खानेवाली, अधिक बोलनेवाली, मुख सूर्पनखा जैसा, पसीना हाथी जैसा, पिंगल

वर्ण की, मोटे चरण की, बडे २ होंठवाली, सदा किचकिच करनेवाली, कुलहीना, और मलीना के साथ पाणिग्रहण करना आंखों के होते कुए में गिरना है. कर्कशा स्त्री सब दुःखों का मूल और जन्म तक का शूल है ।

हे पुत्र ! गुणवती स्त्री की कला तो तुझे मैंने सिखाई, अब सच्चरित्रवान् पुरुष की कला भी तुझको बताता हूं सो ध्यान देकर सुन । तू जानता है कि केवल स्त्री केही गुणशीला होने से काम नहीं चलता, स्त्री पुरुष दोनों को कला-निपुण होना आवश्यक है । तुझ जैसे श्रीमंत को ऐसे उत्तम काम करने चाहिये कि जिन की कीर्ति यावत् चंद्र दिवाकर बनी रहे । अनेक धनवान् कृपण होते हैं, वे कोई सुकृत नहीं कर सकते । उन की लक्ष्मी पतिहीना स्त्री की नाईं है श्री सदा चंचल है, सो या तो एक दिन तू उस को छोड देगा या वह तुझ को एक दिन छोड देगी । इसलिये जो तू चाहता है कि तेरी कीर्ति बनी रहे तो उन कलाओं को सीख कर उपयोग में ला जिन का वर्णन अब मैं करता हूं ।

सद्गृहस्थ की २५ कला।

१ उदार होने की कला, २ सत्यवादी होने की कला, ३ विनयवान होने की कला, ४ अनुचर वर्ग को प्रसन्न रखने की कला, ५ कीर्तिवाले काम करने की कला, ६ प्रताप दर्शाने की कला, ७ बुद्धिमान् होने की कला, ८ सच्छास्त्र जानने और मानने की कला, ९ शुभ कार्य करने की कला, १० विद्वज्जनों का सत्कार करने की कला, ११ सेवक को वढाने की कला, १२ बंधुओं को वढाने की कला, १३ शत्रुपर दया करने की कला, १४ प्रवल शत्रु का पराजय करने की कला, १५ शरणागत को अभय देने की कला, १६ मित्र का हित चिंतन करने की कला, १७ असम्बन्ध वात पर लक्ष न देनेकी कला, १८ गुणग्राहक होने की कला, १९ सब कलाओं में निपुण होने की कला, २० उपकार जानने और मानने की कला, २१ घर के कामकाज पर देखभाल रखने की कला, २२ समदृष्टि रखने की कला, २३ आपत्ति का उपाय रचने की कला, २४ थोडे को वहुत और बहुत को थोडा मानने की कला[1] २५ एकपत्नी व्रत धारण

---

१ उपकार जो थोडा भी हो तो उस को अधिक मानना परन्तु अपकार के बहुत होने पर भी थोडा समझना ।

करने की कला (स्वपत्नी के सिवाय बड़ों को माता के तुल्य, छोटी को कन्या के तुल्य और समान को भगिनी के तुल्य मानना; ऐसे ही दुष्टाचरणवाली स्त्री को मरे हुए कुत्ते के सदृश समझना चाहिये) इन २९ कलाओं से भूषित चतुर पुरुष सदा उत्तम गति को पाता है । पुरुषत्व के योग्य कला येही हैं. इन को तू धारण कर । जिस पुरुष से विद्वान प्रसन्न रहते हों चहुं ओर जिस का यश फैलरहा हो; शूरवीर और सुभट जिस का मान करते हों, तरुणावस्था देख कर कुलशील वाली स्त्रियां जिस के साथ अपना बंधुत्व भाव दर्शाती हों, जिसके उत्तम गुण और स्वभाव चारों दिशाओं में प्रसिद्ध हों, सुन्दर स्वरूप देख कंदर्प दर्प छोडता हो, मधुर वचन श्रवण कर सभा रंजित होती हो, आचार पालने से विद्वान सन्तुष्ट हों. दीन दुखिया जिस को देख कर चहुं ओर से घेर लेते हों, जिस की विचित्र बुद्धिका प्रभाव देख वृद्ध पुरुष भी सम्मति लेते हों. कुल-परम्परा और व्यवहार—परम्परा जानने से कुटुम्बी लोग पूछते हों, पाप—बुद्धि जिस के पुण्य—प्रताप से जली जाती हो, सत्य भाषण करने से हरिश्चन्द्र को भी ईर्षा होती हो, मित्र का समागम देख कर श्रीरामचन्द्र अपना मंत्रित्व देने को उद्यत होते हों उदारता देखकर बलि घबराता हो, प्रेमप्रीति का ज्ञान देखकर कामदेव भागता हो और शैया सुख देखकर रति लज्जित होती हो ऐसे सत्पुरुष को प्रतापी पुरुष कहते हैं. और अन्य—इन गुणों से हीन पुरुष तो पाषाण तुल्य ही है. केवल अवयवों से ही पुरुष नहीं समझना चाहिये किन्तु पुरुष का कार्य करे उसे पुरुष कहना चाहिये ! बहुधा वणिक खाट के खटमल गिने जाते हैं. सो गुण तुझ में न होना चाहिये पर तुझे सच्चे पुरुषार्थ को प्राप्त करना चाहिये ।

इस प्रकार कलाज्ञान देने के अनन्तर अतिकाल हो जाने के कारण मूलदेव महाराजने शिष्यमण्डली विसर्जनकी ।

तेरहवां सर्ग ।

मुख्य कला—स्वरूप ।

रात्रि के समय चन्द्रमा पूर्णता से खिल रहा था, और नक्षत्र गगन में चमक रहे थे तब दंभरहित—केवल अपने कार्य की सिद्धि में तत्पर वह मूलदेव स्फटिक

आसन पर विराजमान हुआ। शिष्योंने प्रणाम किया और उसने स्वीकार किया तदनन्तर चन्द्रगुप्त को कहा कि १४ विद्या और ६४ कला श्रीकृष्ण भगवान ने संदीपन ऋषि के यहां जाकर अध्ययन की थीं सो अब तुझे कहता हूं. इन कलाओं के ज्ञान से तुझ को अत्यन्त लाभ होगा—ऐसी उत्तम कलाओं के ज्ञाता विद्वज्जन सर्वत्र पूजे जाते हैं और विद्या के बल से स्वर्ग, कि जहां जाने से किसी पदार्थ की तृष्णा नहीं रहती उसे भी प्राप्त कर सकते हैं,

चौदह विद्या—४ वेद (ऋग्वेद १ यजुर्वेद २ सामवेद ३ अथर्ववेद ४) ६ अंग (शिक्षा १ कल्प २ व्याकरण ३ निरुक्त ४ छन्द ५ ज्योतिष ६) मीमांसा ११, न्याय १२, धर्मशास्त्र १३, पुराण १४। कई विद्वानों का ऐसा भी मत है कि ४ उपवेद अर्थात् आयुर्वेद (वैद्यविद्या) १ धनुर्वेद (शस्त्रास्त्रविद्या) २ गांधर्ववेद (संगीत विद्या) ३ और स्थापत्यवेद (शिल्प विद्या) ४ मिलकर १८ विद्या कहलाती हैं.

इन चौदह विद्याओं में वेद ऐसा गहन विषय है कि उस में जो प्रवीण होता है वह सृष्टि और स्रष्टा को पहचानने में कदापि पीछे नहीं रहता। इस विश्व में जो कुछ है वह सब वेद में वर्णित है. वेद से बाहर सृष्टि में कोई पदार्थ नहीं है. पांचवीं विद्या शिक्षा है. इस से शुद्धोच्चारण और अक्षरों के यथोचित उपयोग का ज्ञान होता है। कल्प जानने से धर्मकार्य की समझ आती है और ईश्वर के गुण का ज्ञान होता है. व्याकरण का लाभ तो प्रसिद्ध ही है। निरुक्त वेद का अर्थ जानने में सहायता करता है। छन्दशास्त्र से नाना प्रकार के छन्द बनाने का ज्ञान होता है। मीमांसा के ज्ञान से जगत् और जगदीश्वर का पूर्णत्व जाना जाता है। न्यायशास्त्र से पदार्थ—विज्ञान आदि का प्रत्यक्ष स्वरूप समझा जाता है। धर्मशास्त्र से धर्माधर्म और इस लोक तथा परलोक के सुख का बोध होता है—धर्म जो सदा श्रेयस्कर है उस का ग्रहण होता है और अधर्म का परित्याग। पुराण जानने से बहुत से इतिहास जाने जाते हैं, जिन से देशकी पूर्वदशा का ज्ञान होता है। आयुर्वेद जानने से सहस्रों प्राणियों का उपकार, अपने शरीर की आरोग्यता और विमल यश प्राप्त होता है. धनुर्वेद के ज्ञान से शस्त्रास्त्र का सम्यक् प्रयोग और उन के बनाने की क्रिया जानी जाती है। इस के चार भेद हैं अर्थात् १ मुक्त, जिस में चक्र आदि व्यवहार में लाने की कला

है । २ अमुक्त, धनुषबाण का उपयोग करना । ३ जिस में कई एक शस्त्रों के विभाग छूटते हैं और कई एक हाथ में रहते हैं उस के ज्ञान को मुक्ताऽमुक्त कला कहते हैं । ४ मंत्रयुक्त अर्थात् गोली चलाने की क्रिया और तुपक बंदूक व्यवहृत करने का ज्ञान । राज काज हाथ में होने के समय इन कलाओं से प्रगट में आनेवाला लाभ अकथनीय है. गांधर्व वेद मन को प्रफुल्लित करनेवाला है । संगीतादि सब पदार्थ इसी में आ जाते हैं । इस का ज्ञान होने से गवैये लोग गला फाड कर धोखा नहीं दे सकते जो नर इस में निपुण होता है वह अत्यन्त आनन्द का अनुभव करता है । स्थापत्यवेद में बहुतसी कलाएं समा रही हैं । इस वेदमें पारंगत मनुष्य राजनीति में कुशल, अश्वविद्या में निपुण, गजविद्या में परायण और ऐसे ही अनेक कलाओं में सर्वोपरि होता है । हे वत्स ! प्राचीन काल में इस विद्या में कुशल नर विपुल ऐश्वर्य को प्राप्त करते थे ।

चौसठ कला निरूपण ।

हे चन्द्रगुप्त ! चौदह विद्या के अनन्तर अब तुझ को ६४ कला सिखाता हूं उन्हें तू ध्यान देकर सुन । ये कलाएं विशेष उपयोगी हैं कि जिन को जाननेवाला किसी से भी नहीं ठगा जा सकता १ गीत २ वाद्य ३ नृत्य ४ नाट्य ५ आलेख्य ६ विशेषकच्छेद्य ७ तंदुल कुसुम बलि विकार ८ पुष्पास्तरण ९ दशन १० वसन ११ मणिभूमिका कर्म १२ उदकवाद्य १३ शय्या रचन १४ तैरना १५ माली की कला १६ शिर गूंथने की कला १७ वेष बदलना १८ कर्णपत्रभंग १९ सुगंध युक्ति २० भूषण—योजन २१ इन्द्रजाल २२ हस्तलाघव २३ पाकशास्त्र २४ निशान करने की कला २५ सीने की कला २६ भरत कला. २७ वीणा डमरु वाद्य २८ प्रहेलिका २९ प्रतिमाला ३० दुर्वचक योग ३१ वाचन ३२ नाटयाख्यायिका दर्शन ३३ काव्य, समस्यापूर्ति ३४ पट्टिकावेत्र वाण कला ३५ तर्कवाद ३६ सुतार (बढई खाती) काम ३७ शिलावट (राज) का काम ३८ रौप्य, रत्न परीक्षा ३९ धातुवाद ४० मणिरागज्ञान ४१ आकर ज्ञान ४२ वृक्षायुर्वेद ४३ मेष कुक्कुट लावक युद्धविधि ४४ शुकसारिका प्रलापन ४५ उत्सादन ४६ मार्ज्जन कौशल्य ४७ अक्षर मुष्टिका कथन ४८ अन्य देशीय भाषाज्ञान ४९ देश भाषा ज्ञान ५० शकुन कला ५१ यंत्रमातृका ५२ धारण मातृका ५३ असंवाच्य मानसी काव्य क्रिया ५४ अभिधान (कोष) ५५

छन्दोज्ञान ५६ क्रिया विकल्प ५७ चोरी कला ५८ छलितक योग ५९ द्यूत कला ६० आकर्ष क्रीडा ६१ बाल क्रीडन कला ६२ वैनायिकी कला ६३ कृषि कला ६४ वैतालिक कला।

बहत्तर कला।

इस प्रकार विद्वान् लोग ६४ कला गिनाते हैं परन्तु कई एक ७२ कलाओं का कथन करते हैं जो नीचे लिखे अनुसार हैं। १ चित्र कला २ पोशाक ३ पाक कला ४ भोजन करना ५ तैरना ६ स्नान ७ वाद में जीतना ८ हाव भाव बताना ९ पलंग पर बैठना १० शयन करना ११ संभाषण १२ गमन करना १३ शर्त जीतना १४ देवपूजा करना १५ शृंगार करना १६ कोई काम देखते वैसेही करना १७ कोई पदार्थ लेना. १८ लज्जितत्व बताना १९ भोगना २० लिखना २१ हिल मिल रहना २२ दूसरों को रिझाना २३ खेती करना २४ व्यापार करना २५ विवेकबताना २६ शूरता दिखाना २७ वृक्ष पर चढना २८ मृगया करना पर पाप न हो २९ शब्दवेधी[१] बाण मारना ३० परिश्रम करना पर थकित कम होना ३१ अश्वारोहण ३२ घोडे को चलाना और शर्त जीतना ३३ औषध सेवन ३४ अफीम या और नशा खाना और दूसरे को उस का ज्ञान न होने देना। ३५ स्नेह परखना ३६ स्नेह सिखाना और संपादन करना ३७ मधुर भाषण ३८ यथार्थ न्याय करना ३९ धर्म पालन करना ४० गाना ४१ मन को वश में करना ४२ चौपायों को पढाना. ४३ उपासना करना ४४ आसन सीखना ४५ मंत्रविद्या ४६ यंत्र विद्या ४७ जप विद्या ४८ अन्यका पोषण करना ४९ दोष जानना ५० मन हरण करना ५१ शरणागत को पालना ५२ चोरी सीखना ५३ चटपट चेतना ५४ दान देना लेना ५५ मान देना लेना ५६ अपमान को समझना ५७ झूट को परखना ५८ संचित धन जानना ५९ प्रपंची की परीक्षा करना ६० दंड देना ६१ पाखंड को जानना ६२ अपनी आवश्यकतानुसार करना ६३ किसी को बिना जाने छोड देना ६४ सेवा करना

---

१ रात्रि के समय में अपने नेत्रहीन माता पिता की तृषा निवारण करने के लिये जलभरने को गये हुए श्रावण को, जल हिलने का शब्द सुनकर दशरथजी ने बाण से मारा था। दिल्लीपति चौहानचूडामणि पृथ्वीराज भी यह कला जानते थे।

६५ देवदर्शन करना ६६ किसी प्रिय से मिलना (गुप्त रीति से) ६७ किसी के मन की बात जान लेना ६८ शरीर से दुःख सुख सहना ६९ प्रीति की रीति जानना ७० किसी के यहां से पैर निकालना, किसी को अपने यहां से निकालना ७१ ठगाया न जाने के लिये विचार करना ७२ सदा सत्य बोलना ।

छहत्तर कला ।

इन ऊपर लिखी ७२ कलाओं के सिवाय ७६ कला और हैं सो भी तुझे बतलाता हूं सो ध्यान देकर सुन ।

१ लेखन कला २ पठन कला ३ बुद्धी ४ गान ५ नृत्य कला ६ वैद्य कला ७ व्याकरण कला ८ छन्द कला ९ अलंकार कला १० नाटक कला ११ साटक कला १२ चेटक कला १३ नखछेदन कला १४ पत्रछेदन कला १५ आयुद्ध कला १६ गजारोहण कला १७ अश्वारोहण कला १८ गजपरीक्षा १९ सश्वहु- की २० रत्नपरीक्षा २१ स्त्रीपरीक्षा २२ पुरुषपरीक्षा २३ पशुपरीक्षा २४ मंत्रवाद २५ यंत्रवाद २६ रसवाद २७ विषवाद २८ गंधर्ववाद २९ विद्यावाद ३० बुद्धि प्रकार (बुद्धि के सर्व लक्षण जानना उस के सब प्रपंच काले, गोरे उत्तम अनुत्तम का ज्ञान करना) ३१ रुद्र कला ३२ तर्कवाद ३३ संस्कृतवाद ३४ प्राकृतवाद ३५ प्रत्युत्तर कला ३६ देश भाषा ३७ कपटकला ३८ चित्र विज्ञान कला ३९ सत्य सिद्धान्त ४० निर्मलता ४१ वेदान्त- ज्ञान ४२ गारुडी विद्या ४३ इन्द्रजाल विद्या ४४ वीणा विद्या ४५ दान कला ४६ शास्त्र की कुञ्जी कला[१] ४७ ध्यान कला ४८ पुराण इतिहास ज्ञान ४९ दर्शन

---

१ शास्त्र की कुञ्जी कला जानने की वर्तमान काल में: अत्यन्त आवश्यकता है । श्रीमद्भागवत, वेद, स्मृति आदिक ग्रन्थों में किस हेतु से क्या लिखा गया है; परन्तु आधुनिक विद्वान उस शास्त्र कला के परिज्ञान से शून्य होने के कारण अनेक आक्षेप करते हैं ; और इसी कारण गोवर्द्धनधारण, कालियमदन, रासलीला, चीरह- रण आदिक महत्त्वशाली आख्यायिकाओं के आशय को समझे बिना श्रीकृष्ण भगवान को कलङ्क लगाते हैं । ऐसेही वेद के गम्भीर आशय को न समझकर उन पवित्र ग्रन्थों पर भी कटाक्ष करते हैं । इस कला को भली भांति जाननेवालों को ऐसे दोष आरोपित करने का स्वप्न भी नहीं हो सक्ता ।

कला ५० भेद समझाने की कला ५१ खेचरी कला ५२ भूचरी कला ५३ चमार कला[1] ५४ गमन कला ५५ पाताल कला[2] ५६ धूर्त्त कला ५७ वृक्षारोपण कला ५८ काष्ठ घडने की कला ६१ वशीकरण कला ६२ कृतवर्ण बाजी कला ६३ चित्रकला ६४ धर्म कला ६५ कर्म कला ६६ यंत्र कला ६७ रसवंति कला ६८ काय साधन कला ६९ हँसने की कला ७० प्रयोग--मंत्र कला ७१ ज्ञान कला ७२ विज्ञान कला ७३ प्रेम कला ७४ नेम कला ७५ समय और सभाचातुरी ७६ समयोत्तर कला।

६४ कला निरूपण।

इस प्रकार इस संसार में अनेक भांति की कला हैं जिनका जानना नैपुणिक के लिये अत्यन्त लाभदायक है। उन का परिज्ञान होने से मनुष्य किसी

---

१ कोई शंका करेगा कि चमार की कला विद्वान् को किस काम की ? इस के सम्बन्ध में एक जानने योग्य बात यहां लिखी जाती है। अप्पयजीदीक्षित और रामानुज सम्प्रदाय के वेदान्ताचार्य के वाद विवाद हुआ तब व्यंकटगिरि के राजा के दरबार में वेदान्ताचार्य को सर्व-कला-कुशल की उपाधि मिली, इस कारण अप्पयदीक्षित को बडा असंतोष उत्पन्न हुआ। और वेदान्ताचार्यजी की प्रतिष्ठा को भंग करने के लिये सभा के बीच में कहा कि चपल (मुम्बई प्रान्त में बनते हुए एक प्रकार के जूते जिन को प्रायःदक्षिणी गुजराती पहना करते हैं.) बनादो ! इन जूतों के बनाने में बडी कठिनता यह है कि अग्रभाग को सीने के समय चमडे को मुख में लेना पडता है। जो चर्म को मुख में लेवे तो वेदान्ताचार्य विटल जायं और जातिच्युत होना पडे; और नहीं, तो जूता बनाना परम कठिन हो जाय। परन्तु सर्व कला-कुशल वेदान्ताचार्य ने यह याचना स्वीकृत की, और मुख को बाहर (प्रगट) रख करके शेष अंग को ढांप लिया; तथा हाथों से झटपट चपल सींकर तुरन्त अप्पयुदीक्षित के समीप भेज दिये। ऐसा कहते हैं कि प्रतिज्ञा के अनुसार दीक्षितजी को ये चपल अपने मस्तक पर धारण करने पडे। अप्पय दीक्षित परम प्रसिद्ध विद्वान थे। इसी प्रकार बुद्धिधन नामक कोई सर्व कला-सम्पन्न विद्वान था उस से भी राजसभा में ऐसी ही याचना की गई थी। यह बुद्धि धनकी वार्ता सन् १८६५ के बुद्धिप्रकाश (गुजराती मासिक पत्र) में छपी है।

२ पाताल कला—पाताल में पैठने का ज्ञान नहीं, किन्तु पाताल-कुंए, तालाब, बावडी (वापी) आदिक खोदने का ज्ञान।

६५ देवदर्शन करना ६६ किसी प्रिय से मिलना (गुप्त रीति से) ६७ किसी के मन की बात जान लेना ६८ शरीर से दुःख सुख सहना ६९ प्रीति की रीति जानना ७० किसी के यहां से पैर निकालना, किसी को अपने यहां से निकालना ७१ ठगाया न जाने के लिये विचार करना ७२ सदा सत्य बोलना ।

छहत्तर कला ।

इन ऊपर लिखी ७२ कलाओं के सिवाय ७६ कला और हैं सो भी तुझे बतलाता हूं सो ध्यान देकर सुन ।

१ लेखन कला २ पठन कला ३ बुद्धी ४ गान ५ नृत्य कला ६ वैद्य कला ७ व्याकरण कला ८ छन्द कला ९ अलंकार कला १० नाटक कला ११ साटक कला १२ चेटक कला १३ नखछेदन कला १४ पत्रछेदन कला १५ आयुद्ध कला १६ गजारोहण कला १७ अश्वारोहण कला १८ गजपरीक्षा १९ सस्त्रहुकी २० रत्नपरीक्षा २१ स्त्रीपरीक्षा २२ पुरुषपरीक्षा २३ पशुपरीक्षा २४ मंत्रवाद २५ यंत्रवाद २६ रसवाद २७ विषवाद २८ गंधर्ववाद २९ विद्यावाद ३० बुद्धि प्रकार (बुद्धि के सर्व लक्षण जानना उस के सब प्रपंच काले, गोरे उत्तम अनुत्तम का ज्ञान करना) ३१ रुद्र कला ३२ तर्कवाद ३३ संस्कृतवाद ३४ प्राकृतवाद ३५ प्रत्युत्तर कला ३६ देश भाषा ३७ कपटकला ३८ चित्र विज्ञान कला ३९ सत्य सिद्धान्त ४० निर्मलता ४१ वेदान्तज्ञान ४२ गारुडी विद्या ४३ इन्द्रजाल विद्या ४४ बीणा विद्या ४५ दान कला ४६ शास्त्र की कुञ्जी कला[१] ४७ ध्यान कला ४८ पुराण इतिहास ज्ञान ४९ दर्शन

---

१ शास्त्र की कुञ्जी कला जानने की वर्तमान काल में: अत्यन्त आवश्यकता है । श्रीमद्भागवत, वेद, स्मृति आदिक ग्रन्थों में किस हेतु से क्या लिखा गया है; परन्तु आधुनिक विद्वान उस शास्त्र कला के परिज्ञान से शून्य होने के कारण अनेक आक्षेप करते हैं ; और इसी कारण गोवर्द्धनधारण, कालियमदन, रासलीला, चीरहरण आदिक महत्त्वशाली आख्यायिकाओं के आशय को समझे विना श्रीकृष्ण भगवान को कलङ्क लगाते हैं । ऐसेही वेद के गम्भीर आशय को न समझकर उन पवित्र ग्रन्थों पर भी कटाक्ष करते हैं । इस कला को भली भांति जाननेवालों को ऐसे दोष आरोपित करने का स्वप्न भी नहीं हो सक्ता ।

कला ९० भेद समझाने की कला ९१ खेचरी कला ९२ भूचरी कला ९३ चमार कला ९४ गमन कला ९५ पाताल कला ९६ धूर्त्त कला ९७ वृक्षारोपण कला ९८ काष्ठ घडने की कला ६१ वशीकरण कला ६२ कृतवर्ण वार्जा कला६३ चित्रकला ६४ धर्म कला ६५ कर्म कला ६६ यंत्र कला ६७ रसवंति कला ६८ काय साधन कला ६९ हँसने की कला ७० प्रयोग--मंत्र कला ७१ ज्ञान कला ७२ विज्ञान कला ७३ प्रेम कला ७४ नेम कला ७५ समय और सभाचातुरी ७६ समयोत्तर कला।

६४ कला निरूपण।

इस प्रकार इस संसार में अनेक भांति की कला हैं जिनका जानना नैपुणिक के लिये अत्यन्त लाभदायक है। उन का परिज्ञान होने से मनुष्य किसी

---

१ कोई शंका करेगा कि चमार की कला विद्वान् को किस काम की ? इस के सम्बन्ध में एक जानने योग्य बात यहां लिखी जाती है। अप्पयजीदीक्षित और रामानुज सम्प्रदाय के वेदान्ताचार्य के वाद विवाद हुआ तब व्यंकटगिरि के राजा के दरबार में वेदान्ताचार्य को सर्व-कला-कुशल की उपाधि मिली, इस कारण अप्पयदीक्षित को बड़ा असंतोष उत्पन्न हुआ। और वेदान्ताचार्यजी की प्रतिष्ठा को भंग करने के लिये सभा के बीच में कहा कि चपल (मुम्बई प्रान्त में बनते हुए एक प्रकार के जूते जिन को प्रायःदक्षिणी गुजराती पहना करते हैं.) बनादो ! इन जूतों के बनाने में बड़ी कठिनता यह है कि अग्रभाग को सीने के समय चमड़े को मुख में लेना पड़ता है। जो चर्म को मुख में लेवे तो वेदान्ताचार्य विटल जायं और जातिच्युत होना पड़े; और नहीं, तो जूता बनाना परम कठिन हो जाय। परन्तु सर्व कला—कुशल वेदान्ताचार्य ने यह याचना स्वीकृत की, और मुख को बाहर (प्रगट) रख करके शेष अंग को ढांप लिया; तथा हाथों से झटपट चपल सींकर तुरन्त अप्पयुदीक्षित के समीप भेज दिये। ऐसा कहते हैं कि प्रतिज्ञा के अनुसार दीक्षितजी को ये चपल अपने मस्तक पर धारण करने पड़े। अप्पय दीक्षित परम प्रसिद्ध विद्वान थे। इसी प्रकार बुद्धिधन नामक कोई सर्व कला—सम्पन्न विद्वान था उस से भी राजसभा में ऐसी ही याचना की गई थी। यह बुद्धि धनकी वार्ता सन् १८६५ के बुद्धिप्रकाश (गुजराती मासिक पत्र) में छपी है।

२ पाताल कला—पाताल में पैठने का ज्ञान नहीं, किन्तु पाताल—कुंए, तालाब, बावडी (वापी) आदिक खोदने का ज्ञान।

के फंदे में नहीं फंसता, और किसी बडे प्रसंग पर वह अपनी आत्मा तथा सम्बन्धियों का भी संरक्षण कर सकता है। श्रीकृष्ण भगवान ने संदीपन ऋषि के आश्रम में ६४ दिवस में जिन ६४ कलाओं का अध्ययन किया था और जिन के नाम मैंने तुझ को ऊपर बता दिये हैं उन ६४ कलाओं में जानने योग्य क्या है सो तुझ को बताता हूं, तू ध्यान धर कर श्रवण कर।

१ गीत—गान कला। किस प्रकारसे गाना, कैसे राग निकालना, कहां ठहरना, कहां चढाना, कहां उतारना इत्यादिक बातों का ज्ञान इस से होता है। सप्तस्वर और तालादिक इस में अवश्य जानने के योग्य[1] हैं।

२ वाद्य बजाने की कला। इस के चार भेद हैं:—तप, आनक, स्वासित और धन। तार के कारण से जो बाजे बजाये जाते हैं वे तप कहाते हैं जैसे वीणा, सितार, सारंगी, ताऊस (मोरचंग वा मुहचंग) रुबाब इत्यादिक। जो चमडेसे मंढे गये हों और बजाये जावें वे आनक हैं यथा ढोल, मृदंग, पखावज, डफ (चंग), डमरु (डुगडुगी)। पवन के भरने से जो शब्द करें वे स्वासित; जैसे कि रणसिंगा, मुरली, सीसोटी, पावो। धातु के झनकार से जो शब्द करें उन बाजों को धन कहते हैं. जैसे झांझ, घूघरे, घंटा, करताल।

३ नृत्य—नाचने की कला। इस के लास्य और ताण्डव ये दो भेद हैं। तांडव नृत्य शिवजी करते हैं। लास्य नृत्य को गुजरात की स्त्रियां भली भांति जानती थीं, पर कर्नाटक की स्त्रियें अद्यपर्यन्त भी जानती हैं। तांडव नृत्य में लघुताण्डव, उद्धत और कोमल ये तीन भेद हैं। लघु ताण्डव हर्ष उत्पन्न होने से उत्पन्न होता है और हास्य उस की सीमा है। उद्धत नृत्य युद्ध—प्रसंग में और कोमल करुणा रस में होता है। नृत्यविद्या सर्वोपरि है, जब कि भली भांति जानी जावे।

४ नाटय कला—इस कला को जाननेवाला मनुष्यभूषण चाहे जिस प्रसंग पर जैसे चाहता है वैसे ही हाव भाव दर्शा सकता है। वह करुणा, हास्य, रौद्र, वीर इत्यादिक रस साक्षात् रूप से दर्शाकर अपना मनोरथ पूरा करता है।

५ आलेख्य कला—चित्र कला। यह विद्या सर्वश्रेष्ठ है, और मैं जो पीछे कह

---

१ इस विषय में **स्वरतालसमूह** नामक पुस्तक देखिये।

कर आया हूं कि चित्रकारी करने वाले जन अन्यान्य मनुष्यों को ठगते हैं सो उन को तो चित्रकार के चित्ररूप जानना । भावसे भरे और मुख से बोलते हुए चित्र खेंचने की कला तो अत्यन्त मान के योग्य है ।

६ विशेषकच्छेद्य—कागज अथवा केले आदि के पत्ते को कतर कर उन पर रमणीय—सुन्दर चित्र—हाथी, घोडा, पशु; पक्षी इत्यादिक बनाना ।

७ तंदुल कुसुम वलि विकार—चाँवल आदिक के मंडल पूरने का हस्त कौशल यह कला चतुराई की है । जो यह कला जानी हुई हो तो एक मुट्ठीभर रंग लेकर भात (दीवार) अथवा किसी पाट पर ऐसी रीति से फेंके कि जिस से हाथी घोडों के साक्षात् चित्र बनजावें और देखनेवाले मोहित होजायँ ।

८ पुष्पास्तरण—फूल बिछाने की कला । फूलों को इस ढंग से फैलावे कि, जिस से नाना प्रकार के चित्र बनकर नेत्रों को आनन्द देवें ।

९ दशन—हाथीदांत को खोदने (नकशा करने) की कला ।

१० वसन—वस्त्र बुनने की कला ।

११ मणिभूमिका कर्म कला—मणि को कतरने और वींधने की कला ।

१२ शयन रचन—शय्या किस प्रकार से बिछाना यह बात इस कला में मुख्य है । देश, काल और स्थान का विचार करके पूर्व, पश्चिमादिक दिशाओं की ओर शिर करना, कैसा बिछोना, बिछाना, और शिरके ओर का भाग ऊंचा रखना इत्यादिक अनेक बातों का विवेक करना आवश्यक होता है ।

१३ उदकवाद्य—जल पर हाथ फेरकर बाजा बजाने की कला जैसे कि जल-तरंग; वीणतरंग, आदि ।

१४ तैरने (पैरने) की कला—इस कला को जानने वाला अगाध जलमें तरता हुआ भी लोगों को खडा हुआ दृष्टि आता है, जल में गिरी हुई किसी वस्तु को डुबकी (गोता) मार कर ढूंढ लाता है, और आपत्ति काल में पहरों तक जल ही में गुप्त रह कर अपनी रक्षा करता है । पांडव और कौरवों के युद्ध (भारत) के अन्त में दुर्योधन सरोवर में छिप गया था सो इसी कला का प्रताप ।

१५ माली की कला—हार (माला) तुर्रा, वेणी, चद्दर, गुलदस्ते इत्यादिक गूंथने की कला । इस कला से चाहे जैसे फूलों को तीन चार दिवस तक जैसे

के तैसे बने रख सकते हैं; और अवसर आने पर एक स्थल से उठा कर दूसरे स्थल पर विछाते हैं ।

१६ शिर गूंथने की कला— यह कला शोभा और प्रसन्नता के लिये है । श्रीकृष्ण भगवान श्रीराधिकाजी की वेणी गूंथा करते थे ।

१७ वेश वदलने की कला—संकट के समय में वेश वदलने से अकेला भाग सकता है । वहुरूपी (वहुरूपिये) लोग सांग बनाकर जहांतहां फिरते रहते हैं; वे कभी साहब बहादुर बनते हैं और कभी मेम साहिबा कभी बादशाह का सांग भरते हैं और कभी फकीर बनते हैं । वे लोग वेश वदलने की कला को कि कौनसे देश, जाति, और अवस्था में कैसा वेश बनाना चाहिये भली प्रकार जानते हैं और इसी लिये कोई उन को पहचान नहीं सकता :।

१८ कर्णपत्र भंग—फूल खोदने की कला ।

१९ सुगंध युक्ति—नाना प्रकार के अतर [इत्र] बनाने की कला ।

२० भूषण योजन—शृंगार करने और कराने की कला । श्रीकृष्णजी ने राधिकाजी आदिक गोपियों के साथ इस कला का वर्त्ताव किया था ।

२१ इन्द्रजाल—जादू की कला । इस कला को जानने के लिये औषधियों का गुण जानना चाहिये । इस से शरीर का रंग, वेश वदला जा सकता है । और हाथताली देकर छटक जा सकता है ।

२२ हस्तलाघव—हाथ से पटा, वरछी, तलवार आदिक को नाना प्रकार से फिराना । युद्ध के समय यह कला वड़ी उपयोगी है ।

२३ पाकशास्त्र—भोजन बनाने की कला । पांच पांडवों में से भीमसेन इस कला को भली भांति जानते थे ।

२४ मादक द्रव्य [नशा] बनाने की कला—भांग, गांजा, मद्य किस प्रकार बनाना, कैसे पान करना, और पान करने पर भी उन्मत्तता न हो ऐसी युक्तियाँ इस कला में समाई हुई हैं ।

२५ सीने की कला—यह कला स्त्री और पुरुष दोनों के लिये है; अपना निर्वाह करने के लिये विशेष उपयोगी है ।

---

१ **रसायणरत्नाकर** अथवा हुनर हजारा इन सब बातों का भंडार है ।

२६ भरत भरने की कला—स्त्री पुरुष की चतुराई के लिये है।

२७ वीणा डमरू बजाने की कला।

२८ प्रहेलिका—मध्यम पुरुष [सन्मुख वाले] को बोलने से बंद करने के लिये उलझे हुए (पेचवाले) प्रश्न पूछने की कला। इस कला को जानने से न्यायालय में वकील लोग दूसरे को मूक कर सकते हैं। और जो दृष्टान्त कहे जाते हैं सो भी इसी कला का भाग है। चातुर्य दर्शाने के लिये यह कला बड़ी लाभदायक है।

२९ प्रतिमाला—यदि कोई कुछ पूछे तो उस का उत्तर तत्काल विना विलम्ब के देने की कला। (और भी, विद्यार्थी गण आपस में अन्ताक्षरी (श्लोक अथवा दोहे कवित्तादिक के अन्त का जो अक्षर हो वही अक्षर जिस के आरम्भ में हो ऐसे श्लोक, छन्द, कविता बोलते हैं सो भी इसी कला का एक भाग है.) इस कला को जाननेवाले की स्मरणशक्ति बढ जाती है और वह अनेक बातों को याद रखने में समर्थ होता है।

३० दुर्वचक योग—ठग विद्या। इस कला को जानने के लिये, अपने भंडार में जो अनुपम ग्रन्थ हैं उनको तू देखा कर इस कला को सीख करके ठगविद्या नहीं करना चाहिये किन्तु ठगाई करनेवाले ठग किस प्रकार से ठगते हैं सो जानना चाहिये। अपनी पाठशालामें पढ़ा हुआ मनुष्य इस कला से चोर और शाह की परीक्षा कर सकता है।

३१ वाचन कला—भाषा कैसी है, अक्षर कैसे हैं, किस ढंग से वांचने से दूसरे का रंजन हो, ये सब बातें इस कला में समाई हुई हैं। रुक रुक कर नहीं किन्तु धारा—प्रवाह की नाईं स्पष्टता पूर्वक वांचना चाहिये। दांत अथवा होठ को उचित स्थल ही पर संकुचित करना चाहिये, और जहां विराम का चिह्न हो तहां नियत काल तक ठहर कर तथा कहीं धीरे २ और कहीं जोर देकर इस रीति से वांचना चाहिये कि, लिखनेवाले के हृदय का भाव साक्षात् दर्शने लगे इस कला को जानने के लिये अनेक ग्रन्थ देखना चाहिये लिपि की उत्पत्ति भी इसी कला का एक भेद है। भाषा का नियम और, उसमें सांकेतिक

१ भाषा के रसिकजन मेरा संग्रह किया हुआ अन्ताक्षरी छन्दप्रकाश देखें।

शब्द कैसे हैं, किस रीतिसे बांचे जाते हैं ये सब बातें वाचन कलाके ज्ञान से आती हैं ।

३२ नाटकाख्यायिका दर्शन—यह कविता समझने का एक भेद है । दृश्य और श्रव्य ये काव्य के प्रकार हैं । इन दोनों के रस, अनरस और न्यूनाधिकता को जानने की योग्यता इस कला से प्राप्त होती है ।

३३ काव्य समस्या पूर्त्ति—यह भी कविता का ही एक प्रकार है । इस कला से बुद्धि तीव्र होती है और तुरन्त उत्तर देकर अपनी चतुराई बता सकते हैं ।

३४ पट्टिकावेत्र बाण कला—हाथ के खेल तमाशे । शरीर को साधने के लिये यह कला बड़ी उपयोगी है । गेंद दड़ी, गिल्ली डंडा, पटा फेरना इत्यादिक खेल इस कलाके अन्तर्गत हैं । पुनः इस कला के जानने से बाण चलाने का ज्ञान होता है । राजाओं को इससे बड़ा लाभ होता है । तेरी इच्छा हो तो अपने भण्डार में 'पट्टिकाविचार' नाम का ग्रन्थ है उसको देखना ।

३५ तर्कवाद—इस कलाको जाननेवाला अज्ञात वस्तु की भी परीक्षा कर सकता है और बहुत लाभ उठाता है । यह कला जानना हो तो गदाधरी, शिरोमणि, मुक्तावली, सामान्य निरुक्ति इत्यादिक ग्रन्थ अपने भण्डार में हैं ।

३६ सुतार (बढ़ई) काम की कला—नक्शा करना, देवालयों में रम्यता लाना और भवनों को भपकेदार करना इस कला का गुण है ।

३७ राज (शिलावट—कड़िया) के काम की कला—इसको वास्तु विद्या कहते हैं । गुप्तद्वार, तलघर, गुप्त भण्डार, भूलभुलैयांवाले मार्ग, देवता और मनुष्य की प्रत्यक्ष प्रतिमा बनाना, भयंकर मूर्तियां बनाना कि जिनको देखते ही मनुष्य भ्रमित और भयभीत होजाय, ये सब बातें इस कला के अन्तर्गत हैं । और प्रशंसा—योग्य मूर्त्तियां तो इस कला में निपुण हुए बिना बनही नहीं सकती मनुष्य-मूर्त्ति तथा देवप्रतिमा अमुक ऊंचाई की हो तो उंगली कितनी लम्बी चरण कितने लम्बे और ऊंचे, उदर का घेरा (परिधि) कितना, मुख कितना बड़ा, नाक कान आंख आदिक किस ढंग के बनाना ये सब बातें इस कला में कुशल होने से ही आती हैं । पत्थर खोदने का काम और कन्दराएं बनाना भी इसी का भेद है । इसलिये 'प्रतिमामंडन' और 'प्रासादमंडन' ग्रन्थ अपने पुस्तकालय में देखने के योग्य हैं ।

३८ रौप्य रत्न परीक्षा—भिन्न २ प्रकार की धातुओं और रत्नों की परीक्षा करने का काम इस कला को सीखने के उपरान्त अपने हाथ में लेना चाहिये। सच्चे (असली) रत्न, कृत्रिम रत्न, अधिक मूल्यवान् तथा थोड़े मूल्यवाले रत्नों की परीक्षा, नवीन खान के और पुरानी खान के हीरे कैसे होते हैं सो सब इस कला से जाने जाते हैं। धातु परीक्षा में विशेष कर नाना प्रकार के सिक्कों (रुपयों) का पहचानना मुख्य समझा जाता है। चांदी सोने की निरख परख करनेवाले सर्राफ कहलाते हैं और रत्नों का काम करनेवाले जौंहरी के नाम से विख्यात हैं। अगस्त्य मुनि का बनाया हुआ 'रत्न परीक्षा' नाम का ग्रन्थ तू पढ, यह तुझे बडा लाभदायक होगा।

३९ धातुवाद—कंसारे की कला। धातुओं को कैसे गलाना, पत्रे कैसे बनाना, घाट कैसे गढ़ना, धातुओं का मिश्रण कैसे तैयार करना, ये सब इस कला में समावेश करती हैं। प्राय: ऐसा होता है कि सुवर्ण और चांदी के बरतन देखने में बडे सुन्दर और चमकते हुए होते हैं किन्तु भीतर कुछ नहीं होता; इस बात का भेद धातुवाद कला के ज्ञान से तत्काल खुलता है।

४० मणिराग ज्ञान—बढिया रत्नों के रस बनाकर दूसरे रत्नों पर रंग चढाने की क्रिया का नाम मणिराग कला है। इस प्रकार से आब चढाए हुए रत्नों को देखकर अजान मनुष्य तो ऐसा ही समझता है कि ये रत्न अकृत्रिमही हैं। रत्न चार जाति के होते हैं, तैसे ही हिरा भी चार प्रकार का होता है। सफेद हीरा—बिलकुल साफ हो और चोट लगने से फूट जाय वह श्रेष्ठ हीरा होता है। जो हीरा कुछेक ललाई लिये हुए हो और अधिक चोट सहे सो हलका; कुछेक पीलापन लिए हुए हो, कुछ दृढ और कुछ नरम (कोमल) हो वह उस से भी हलका; श्वेत होने पर भी कुछेक श्यामता लिये हुए हो और चाहे जैसी चोट लगने से भी नहीं फूटे वह सब से हलका होता है। रत्नों में भी नवरत्न श्रेष्ट समझे जाते हैं। मणिधर की मणि की परीक्षा भी इसी विद्या के ज्ञान से होती है।

४१ आकरज्ञान कला—रत्न तथा धातु की खान सम्बन्धी कला। इस को जानने से भूमि कैसी है, किस जगह कोई खान निकलेगी, इत्यादि बातों की निपुणता प्राप्त होती है। कुआ, तालाब, बावडी (वापी) खनन कराते (खुदाते) समय भूमि की परीक्षा करने में यह कला विशेष उपयोगी है। पृथ्वी की सर्दी गर्मी

और रंग रूप का ज्ञान इस कला से होता है परन्तु वत्स! गुरु के बताये विना यह कला नहीं आती।

४२ वृक्षायुर्वेद कला—वृक्ष लगाने की कला। माली तथा किसान के लिये यह कला बडी लाभदायक है। बगीचा, कुंज, लतामंडप आदि बनाने में इस कला के विना जाने काम नहीं चलता। झाड कैसे लगाना, खात कैसा डालना वृक्ष के रोग को कैसे दूर करना, फल फूलों की वृद्धि कैसे हो सो सब इस कला से जाना जाता है। और भी, इस कला से कई एक अद्भुत बातें जानी जाती हैं। गारुडी (ऐन्द्रजालिक) लोग झाड के पत्ते तोड कर पीछे चिपका देकर स्तब्ध करते हैं, यह भी इसी कला का भेद है। भिन्न भिन्न जातिके वृक्षों में से अनेक वस्तुएं उत्पन्न करना भी इस कलाके अन्तर्गत है। जैसे बासमें से केले और कांटों में से अनार, और कांसमें से बंसी चांवल होते हैं। पुनः बांस में से गेहूं भी होते हैं। जब तू बणज व्यापार करेगा तो इस कला की बहुत आवश्यकता होगी। यह कला सीखने के लिये 'वराहमिहिर' ग्रन्थ उपयोगी है।

४३ मेषकुक्कुट लावक युद्ध विधि—मेंढा मुर्गा आदिक लडाने का खेल। यह केवल विनोदजनक परन्तु चतुराई की कला है। मेंढे, बकरे, मुर्गे इनको सिखाकर कैसे लडाना, वे हारजीत के रस में कैसे उतरें यह बात जानना कुछ तमाशा नहीं है। इसमें पशु—परीक्षा करना सीखने का लाभ समाया हुआ है।

४४ शुक सारिका प्रलापन—तोता मैना को पढाने की कला तोते को राधाकृष्ण, सीताराम, रामराम इत्यादि शब्द मनुष्य की नाईं कैसे पढाना; उन को काम काज कैसे सिखाना, किस प्रकारकी औषधें उन को देना, इन सब कार्योंको करने में इस कला का उपयोग किया जाता है। ऐसे तोते और मैना घरके रक्षक हैं इतना ही नहीं, किन्तु वे मनुष्य की नाईं बहुतसे कार्य करते हैं। युद्ध काल में कबूतरों के द्वारा पत्र पहुंचाए जाते हैं। तोता और मैना किसी गुह्य बात को जानकर मालिक को कह देते हैं। किसी स्थान पर संकट आ पडा हो और किसी प्रकार से सहायता नहीं मिली हो तो ऐसे समयमें सिखाये पढाये हुए तोते अपने पास में हों तो वे जाकर सहायता का प्रवंध कर आते हैं। इस कला के परिज्ञान के लिये 'शुक सारिका प्रलापन'

नाम का ग्रन्थ अपने संग्रहालय में है उस को कंदलि के साथ विचार लेना। यह कला तुझ को विशेष लाभ दायक है।

४५ उत्सादन—चिपका हुआ पदार्थ दूर करने की कला। शरीर पर किसी प्रकार का रंग लग गया हो उसे दूर कर देना, डाढी मूंछ सफेद होने पर किस प्रकार से और कौनसा कलप लगाना, ऐसे ही कोई मनुष्य अथवा पशु पक्षी किसी संकुचित स्थान में फंस जावे तो उस को विना दुःख पहुंचाने तथा अंगभंग होने के किस रीति से बाहर निकालना सो इस कला को सीखने से आता है।

४६ मार्जन कौशल्य—किसी जगह पर रंगादिक पदार्थ फैले हुए हों और एक दूसरे पर हों तथा उनमें से नीचे का एक दूर करना हो तो कैसे निकालना, तथा उस को निकालते हुए दूसरे में कुछ हलचल न हो ऐसी रीति से निकाल करने को मार्जन कौशल्य कहते हैं। ऐसेही शिर धोना, केश स्वच्छ करना, शरीर का मार्जन कैसे करना, कौन २ से तेल अंगपर मलना, यह इस कला का दूसरा भेद है। पुनः इस का तीसरा भाग विनोद भी है। इस कला में कुशल होने वाला मनुष्य चाहे जैसे कृपण और स्तब्ध मनुष्य को हंसा सकता है। इस कला का चौथा भाग योग विद्या है। नेती धोती क्रिया करके शरीर के भीतर की शुद्धि भी इस कला को जानने से हो सकती है। यह कला शरीर की आरोग्यता के लिये अत्यन्त आवश्यक और लाभदायक है।

४७ अक्षर मुष्टिका कथन—किसी के हाथ में अथवा गुप्त स्थल में कोई वस्तु हो उस की परीक्षा करने के लिये इस कला की आवश्यकता होती है। कौनसी वस्तु को हाथ में रखने से कैसे हावभाव होते हैं; मुख का विकार, शरीर का रंग, हाथ की स्थिति, ये सब उस पदार्थ को जानने के समय बडी सहायता करते हैं। तैसेही, यदि न पहचान सके तो उस का रंग, गुण, नाम के अक्षर, उन अक्षरों से कौन २ से शब्द बनते हैं ये सब प्रश्न पूछ कर उस वस्तु को जानना चाहिये। यह तो केवल कौतुक ही है, पर इस का दूसरा भेद बडा उपयोगी है। कोई मनुष्य दूर बैठकर, नहीं बंचाने के योग्य लिखे जाते हुए पत्र को हाथ की मोड और कलम के हिलने चलने से पढ़कर जान लेता है।

---

१ कश्मीरी पंडित इस कला में परम प्रवीण होते हैं और गुप्त पदार्थ को जानकर ठग लेने वाले मनुष्य काशी आदि स्थानों में बहुत देखे जाते हैं।

४८ विदेशी भाषा ज्ञान—भिन्न २ देशों की भाषा जानना । इस के द्वारा बनज व्यापार और राजकाज में बडा लाभ पहुंचता है । इस में तीन वस्तुओं की आवश्यकता है । यथा व्याकरण, कोष और इतिहास । व्याकरण से भाषाका शुद्ध लिखना और बोलना आता है, कोषे से व्यापारिक वस्तुओंका परिज्ञान होता है । और इतिहास से लोकस्थिति तथा राजनैतिक वृत्तान्त ज्ञात होतो है

४९ देश भाषा ज्ञान—स्वदेशी भाषा को भली भांति से जानना । इस में व्याकरण और कोष मुख्य हैं ।

५० शकुन कला—शरीर के अवयव, नेत्र, भुजा, ओष्ट आदि के स्फुरण (फरकने) से शकुन अपशकुन गिने जाते हैं । कभी २ शकुन से संशय (वहम) उत्पन्न होता है परन्तु यदि इस कला को भली भांति जानता हो तो शकुन अपशकुन को जानकर संशय रहित हो सकता है ।

५१ यंत्र मातृका—संचा (ढांचे) बनाने की कला । यांत्रिक कला । रोजगार और गुप्त कार्य करने के लिये यह कला उत्तम है । अपना कोई शत्रु हो और उस को नष्ट करना हो तो किसी पेटी में गुप्त रीति से भुशुंडी आदिक शस्त्र की योजना करना कि पेटी को खोलते समय तत्काल खोलनेवाला मारा जावे—ऐसा अपूर्व कार्य इस कलौं से होता है ।

५२ धारण मातृका—तोलने की कला । चाहे जैसी वस्तु को इस कला से तौल सकते हैं । हाथी और पर्वत आदिक को तोलना भी इस कला से सुगम है । कभी २ बहुत से तोलनेवाले गडबड सडबड करते हैं, उन की भी परीक्षा इस से हो सकती है । अपने भंडार में इस विषय का 'धारण मातृकाकल्पलतिका' ग्रन्थ है उस से सब ज्ञान हो सकता है ।

---

१ यहां पर कोष शब्द से केवल शब्दकोष ही नहीं लेना चाहिये किन्तु ऐसा पुस्तक समझना चाहिये जैसे कि अंगरेजी भाषा में (एनसिक्लोपिडिया Encyclopedea) और Dictionrary of Arts, manufactures & mines इत्यादिक हैं !

२ इस विषय में दशभाषाशिक्षक बड़ा उपयोगी है। अंगरेजी, हिन्दी, उर्दू बंगाली गुजराती, मराठी कर्नाटकी, तैलंगी, गुरमुखी, महाजनी भाषाओं को सिखाने के लिये अद्वितीय पाठक है । मंगाकर देखने से इस के गुण आपही प्रगट हो जायंगे ।

३ इस के सम्बन्ध में मोतकी कुञ्जी पढ़िये कि जो एक छोटी और मनोहर कहानी है।

९३ असंवाच्य मानसी काव्य—चाहे जिस विषय पर नवीन कविता बनाने की विधि। यह कला विद्वानों के लिये मनोरंजक है।

९४ अभिधान (कोष)—अमुक पदार्थ के कितने नाम हैं सो इस से जाने जाते है कि जिस से यदि कोई सांकेतिक शब्द बोलता हो तो समझ लिया जावे। काव्य करने वाले को इस कला का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक और उपयोगी है।

९५ छन्दोज्ञान—कविता बनानेवाले के काम की कला। छन्द मुख्य कितने हैं, उन के भेद कितने हैं, एक २ छन्द में कितने २ अक्षर होते हैं; कितने अक्षरा का गण होता है, कौन २ से अक्षर तथा गण शुभ हैं—कौन २ से अशुभ हैं, छन्द के बनाने में किन २ बातों का ध्यान रखना चाहिये; कौन २ से शब्दों का उपयोग नहीं करना चाहिये ये सब बातें छन्दशास्त्र से जानी जाती हैं।

९६ क्रिया विकल्प—सिद्ध किये हुए पदार्थ कैसे हैं सो इस कला से जाने जाते हैं। भोजन करते समय की चतुराई इस से आती है। चार पदार्थ इकट्ठे धरे हों और उन में से किसी में विष हो तो तुरन्त जान लिया जावे। कौन २ से भोज्य पदार्थ कितने समय तक धरे रहने से नहीं बिगडते सो भी इसी कला से जाना जाता है। चतुर गंधी और वैद्य के लिये यह कला परम हितकारिणी है। इस कला से राजाओं को अपूर्व लाभ पहुंचता है। ' चन्द्र गुप्त ' को मार डालने के लिये ' राक्षस ' का भेजा हुआ वैद्य विष देने के लिये गया तब 'चाणक्य' मुनि ने इस कला से तुरन्त उस को पकड लिया था।

९७ चोर कला—चोरी करने के काम की है। कौनसी जगह धन गाडदिया गया है सो इस से जाना जा सकता है। तैसे ही;अप्रगट रीति से दीवार तोडने और सेंध लगाने की चतुराई भी इसी में है।

९८ छलित योग—छलने की सब युक्तियां इस से जानी जाती हैं, और उन से नहीं ठगाना चाहिये। और भी, वस्तु को कहां छिपादी हैं सो जानकर चोर को पकड सकते हैं। तथा जन्तुओं के सम्बन्ध की बहुतसी जानकारी भी इस से होती है।

९९ द्यूत कला—जुआ खेलने की कला। जुआ, चौसर, गंजफा, शतरंज आदिक खेलने के समय कैसे दावपेच खेले जाते हैं उन का ज्ञान इस कला को सीखने से होता है। युधिष्टिर, शकुनि और नल इस विद्या में निपुण थे।

६० आकर्ष क्रीडा—कसरत, कुस्ती पटाबाजी युद्ध पट्टी, मल्लखंभ इन का ज्ञान देनेवारी यही कला है । श्रीकृष्णजी इस कला में परम प्रवीण थे । उन्हों ने मल्ल के साथ युद्ध किया (कुस्ती लडी) और कंस का विध्वंस किया ।

६१ बाल क्रीडन कला—बालकों के खेलने की कला । राजकुमार को राजा, प्रधान, सिपाही घुडसवार देकर कैसे लडना सीखना तथा न्याय कैसे हो; वैश्य का लडका हो तो व्यापार कैसे हो; ये बातें खेलतमाशे में सिखाने के समय इस कला का उपयोग किया जाता है ।

६२ वैनायिकी कला—जादूगरों की ठगाई को ज्ञान लेने की कला ।

६३ कृषि कला—खेती विद्या । हल, खात, बैल, इत्यादिक खेती के साधनों का ज्ञान इस कला से होता है । 'क्षेत्रविचार' नामक ग्रन्थ अपने भंडार में है उसको विचार ।

६४ वैतालिक विद्या—बहुत से मनुष्य इस को भुतावल कहते हैं । कैसे पदार्थों का धूप देने से मन और तन के आवेश दूर होते हैं सो इस कला से जाने जाते हैं । कभी २ अज्ञात, अद्भुत और भयानक वस्तु का स्पर्श होने से शरीर तथा मन की स्थिति पलट जाती है । उसका परिज्ञान भी इसी कला से होता है । किसी समय पर भतावल दिखाकर संकट से भी छूट सकता है ।

इस प्रकार से मुख्य ६४ कलाओं का ज्ञान है जिस का वर्णन मैंने तुझ को सुनाया । इन कलाओं को जाननेवाला मनुष्य कभी किसी से नहीं ठगा जाता और अपने धन, प्राण की रक्षा करता हुआ सदा आनन्द में रहता है ।

स्वात्म बुद्धि की अष्ट कला ।

और भी एक दोहा है कि जिस में कही हुई आठ कलाएं स्वपराक्रम से ही प्राप्त होती हैं यथा ।

दोहा—मैथुन, तरना, चोरना, निज बल ही ते जान । राग, पाग, अरु, परखना, न्यायऽरु नाडी ज्ञान ।

गान करना, अपनी इच्छानुसार पाग बांधना, अन्तःकरण की शुद्धता और मलीनता (प्रीति अथवा वैमनस्यता) को परखना, यथार्थ न्याय करना, नाडीज्ञान (हाथ पांव की नाडी को देखने पर से रोग का ज्ञान अर्थात् उस के बढाव

घटाव आदि को जान लेना), स्त्री संभोग, जलाशय में तैरना और चोरी करना ये आठ कलाए अपने पराक्रम से ही प्राप्त होती हैं—इन के लिये गुरु का उपदेश किसी काम का नहीं।

श्री शुक्राचार्य की ६४ कला।

हे वत्स चन्द्रगुप्त ! दानवों के गुरु श्रीशुक्राचार्यजीने अपने रचे हुए 'शुक्रनीति' नामक ग्रन्थ में जो ६४ कलाएं लिखी हैं वे भी तुझ को बताता हूं से ध्यान में रखना।

गान्धर्व कला ७—१बाजा बजाने की कला। २ हाव भावादिक सहित नृत्य करने की कला। ३ वस्त्र तथा अलंकार धारण करने की कला। ४ अनेक रूप धरने की कला। ५ शय्यारचन पुष्पग्रन्थन कला। ६ द्यूत कला। अनेक प्रकार की क्रीडाओंसे मनोरंजन करने की कला। ७ अनेक आसनों से रति करने की कला।

वैद्य कला १०—१पुष्पोंका आसव और मदिरा बनाने की कला। २ पर में गडे हुए कांटे कंकर को निकालने की कला। ३ भोज्य पदार्थ बनाना तथा अन्न को पचानेवाले औषध बनाना। ४ वृक्षरक्षण कला। ५ पाषाण—धातु मारने की कला। ६ क्षार रस को पकाने की कला। ७ धातु और औषधि को एक करने की कला। ८ धातु को औषधि में से अलग करने की कला। ९ नमक मिलाने और अलग करने की कला। १० एक धातु दूसरी से मिल गई हो तो जुदी २ करने की कला।

धनुर्वेद कला ५—१ शस्त्र चलाने के समय में कहां २ पटे फिराना और दूसरे शस्त्रों का वर्ताव कैसे करना। २ मल्ल युद्ध (दाव पेच के साथ) करने की कला। ३ निशाना ताकने और मारने की कला। ४ बाजे के शब्द पर सेना को चलाने की कला। ५ हाथी, घोडा तथा रथ की चाल पर युद्ध करने तथा दुर्घट किला रचने की कला— चक्रव्यूह, कमल व्यूह इत्यादिक रचना।

सामान्य कला ४२—१ अनेक प्रकार के आसन और मुद्राओं से देवता को प्रसन्न करने की कला। २ अश्वाध्यक्ष और महावत बनने की कला—हाथी

---

१ श्रीकृष्ण भगवान, बलराम, जरासंध और दुर्योधन इस कला को भली भांति जानते थे।

घोड़ो को सिखाने पढ़ाने की कला । ३ मिट्टी, धातु, काष्ट, पत्थर इत्यादिक का उचित व्यवहार करने की कला । ४ इन चारों पदार्थोंपर चित्र बनाने की कला । ५ नौका, रथ और शकट आदि बनाने की कला । ६ तालाब और कुए आदि खोदने और उनके लिये यथोचित स्थान पसंद करने की कला । ७ घड़ी[1] यंत्र बनाने की कला । ८ नाना प्रकार के रंगों से चित्र तैयार करने की कला । ९ जल, वायु, अग्नि इन पदार्थों को रोककर उनके संयोग से कार्य करने[2] की कला १० सूत और सण आदि की डोरी बनाने की कला । ११ भांति २ के डोरों (धागों) के संयोग से बुनने के प्रकार जानने की कला । १२ अच्छे बुरे रत्नों को परखना, तथा विंधे हुये रत्नों की परीक्षा करने की कला । १३ शुद्ध सुवर्णादि धातुओं को परखने की कला । १४ कृत्रिम सुवर्ण और रत्न बनाने की कला । १५ चांदी और सोने के पदार्थों पर मीना करने की कला । १६ मृदंग और ढोल आदिक पर चमड़ा मढने की कला । १७ मृत पशुके शरीर पर से चमडा उतारने की कला । १८ दूध दुहने और दही मक्खन, गोरस और घृत आदिक पदार्थ बनाना जानने की कला । १९ स्त्री की कंचुकी आदिक बनाने की कला । २० तैरने (पैरने) की कला । २१ बरतन साफ करने की कला २२ वस्त्र धोने की कला । २३ क्षौर (हजामत) करने की कला । २४ केशों को साफ और सुथरे रखने की कला । २५ तिल, नारियल और मांसादिक में से तेल निकालने की कला । २६ हल जोतने की कला । २७ वृक्ष पर चढने की कला २८ वृक्ष लगाने की कला । २९ वांस और तृण की टोकरियां इत्यादिक बनाने की कला । ३० कांचके बरतन बनाने की कला । ३१ पौधों को पानी पिलाने की कला । ३२ पानी के बंध बांधने की कला । ३३ लोहे के अस्त्र शस्त्र—तलवार, छुरी, कटारी, बरछी आदिक बनाने की कला । ३४ घोडा, हाथी और ऊंट आदिक पर

---

१ घडी यंत्र अर्थात् घडियाल (घड़ी) परन्तु पानी की घड़ी ।

२ वर्तमान समय के रेल, तार, पवनचक्की, पनचक्की टेलीफोन आदिक पदार्थ इस कला-कुशल पुरुषों के बनाये हुए प्रत्यक्ष देखे जाते हैं । शुक्रनीति का ग्रन्थ २५०० वर्ष पहले बना है उस में इस कला का वर्णन आया है; इस पर से प्रगट होताहै कि हमारे पुरुषा भी इस कला को जानते थे

पलान करने की कला¹। ३५ बालक को बडा करने की कला। बालक को उचकाने (उठालेजाने) की कला। ३६ बालक के साथ खेलने-तद्वत् होने की कला। ३७ अपराधी को युक्ति पूर्वक शिक्षा करने (दंड देने) की कला²।३८

---

१ हाथी, घोडा, ऊंट और बैल वगैरः पर किस प्रकार से आसन कसना कि जिस से उस प्राणी को भी दुःख न हो और बैठनेवाले को भी कष्ट न हो। घोड़े को बहुत दृढता से कसना चाहिये परन्तु बैल उतना दृढ़ नहीं बांधा जाता, उस को ढीला बांधना चाहिये इत्यादिक बातों को जानना।

२ दृष्टान्त। एक समय पर-दुःख-भंजन, महीपति-मुकुटमणि श्री विक्रमादित्य की सभा में चोरी करने के अपराध के लिये चार मनुष्य पकडकर लाये गये। राजाने पहले मनुष्य की मुद्रा देख करके उस को कहा कि 'तुझ सदृश सुजन मनुष्य को यह उचित नहीं, जा चला जा!' दूसरे को कहा 'मूर्ख! तू अच्छे घराने का होकर ऐसा दुष्ट कर्म करता है! जा काला मुंह कर, मुझको फिर से मुंह मत बताना; धिक!' तीसरे के उठकर दो तीन थप्पड मारे और कहा कि 'यह काम करने से तो तेरी मा के पेट में पत्थर पडा होता तो अच्छा था!' ऐसे कह कर फिर दो चार थाप मार विदा किया। चौथे आदमी के लिये यह आज्ञा दी कि इस को गधे पर बिठाकर नगर में फिराओ और ५० कोड़े मारो। इस प्रकार उन का इन्साफ करके विदा किये। सभासद लोगों ने, एकही अपराध के लिये चार आदमियों को। चार तरह का दंड दिया जाना देख करके बड़ा आश्चर्य माना। तिस पीछे एक सभासद के मुख की चेष्टा प्रश्न करने की देख करके राजाने कहा कि 'तुम को इस न्याय से आश्चर्य उत्पन्न हुआ सो स्वाभाविक बात है, परन्तु इस में तत्व क्या है सो जानना चाहिये।' तदनन्तर चारों चोरों के पीछे २ दूत भेजे। उन्हों ने एक घंटेभर में पीछे आकर कहा कि, 'महाराज! जिस को आपने मीठे २ शब्द कहे थे उस ने तो घर जाते ही जीभ चबाकर प्राण त्याग दिये। जिस को आपने अपमान के वाक्य कहे थे उस ने मार्ग में से ही देशनिकाला लिया, और उस के संगे सम्बन्धी बुलाने को आये उन को कहा कि कौनसा मुंह लेकर नगर में आऊं? तीसरा जिस को आपने थप्पड़ मारे थे अपने घर में घुस बैठा है, और किसी से भी मिलना नहीं चाहता। और चौथा अपराधी नगर में फिराया गया। उस के पीछे २ बालक हुरें २ करते हैं उन को कहता है कि 'बोलो बचा जीओ, आज तुम को बहुत दिनों से आनन्द आया है,' और हंसता है। उन की सवारी उस के महल्ले में गई तब उस की स्त्री देखने को बाहर निकली तो उस को कहा कि "गरम पानी तैयार कर, मैं एक महल्ला फिर कर अभी आता हूं।" सभासदोंने इस न्याय का निरूपण देख करके कहा कि 'श्रीमहाराज का ऐश्वर्य अद्भुत है।' त्रुटिरा न्याय में यह

देशदेश के अक्षर जानने की कला । ३९ तांबूलरक्षण करने की कला (१) । ४० सन्मुखवाले मनुष्यका अभिप्राय समझ कर तदनुसार बरतने की कला । ४१ शीघ्रता के साथ काम करने की कला । ४२ शिथिल मनुष्य को उत्साह देने की कला ।

विशेष ७२ कला । (२)

इन कलाओं में एक नवीन भेद है सो तेरे जानने के योग्य समझ कर मैं तुझे बताता हूं; इस से भी बहुत जानकारी होना संभव है । १ लिखना । २ गिनना (गणना करना) । ३ चित्रकारी । ४ गीत । ५ नृत्य । ६ वाद्य । ७ सप्त स्वर जानना । ८ खरजादिक पुष्कर गति के वाद्य बजाना जानना । ९ ताल मान जानना । १० जुआ की कला ? ११ पासों की कला । १२ अष्टापद (चौसर) खेलने की कला । १३ सब में अग्रसर होने की कला । १४ वादविवाद करने की कला १५ नेत्रपल्लवी । १६ भोजन करने की कला । १७ पीने की कला । १८ वस्त्र तैयार करने की कला । १९ विलेपन--अंगराग कला । २० शयन रचना । २१ आर्या छंद बनाना । २२ प्रहेलिका--विनोद करने के छंद बनाने की कला २३ मागधिका, २४ गाथा २५ गीति और २६ श्लोक इन चार प्रकार की कविता बनाने की कला २७ सुवर्ण के सम्बन्ध की कला । २८ योगचूर्ण बनाना २९ योगविद्या सीखना । ३० विधि पूर्वक भूषण पहनना । ३१ स्त्री सेवाकरना ३२ स्त्री की परीक्षा करना । ३३ मनुष्य की परीक्षा करना । ३४ हाथी, ३५ घोडा ३६ बैल, ३७ मणि, ३८ कुक्कुट (मुर्गा), ३९ छत्र और ४० दंड के मर्म का ज्ञान सम्पादन करना । ४१ तलवार का व्यवहार करने की कला । ४२ कोडी के लक्षण और गुण दोष जानने की कला । ४३ वास्तु-गृह प्रतिष्ठा करना कराना । ४४ छावणी छाने की कला । ४५ नगर का परिमाण जानना । ४७ प्रतिचार--शत्रुदूत को पहचानना । ४८ व्यूह रचना । ४९

तत्त्व कहां है ? यहां तो 'झूठा ला लेकिन योग्य ला ' का न्याय है । (१) पानों को किस तरह से रखना, उन में कत्था, चूना, सुपारी कैसे रखना, मुखवास कैसे बनाना, और पान की बीड़ी कैसे बांधना सो जानने की कला । (२) ये और आगे की कलाएं जैन ग्रन्थों में से ली गई हैं । (३) षडज, ऋषभ, गन्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद ये सातस्वर हैं ।

प्रतिव्यूह। ५० युद्ध। और ५१ नियुद्ध जानना। ५२ चक्रव्यूह। ५३ शकटव्यूह। और ५४ गरुडव्यूह की रचना जानना। ५५ अति युद्ध। ५६ असियुद्ध। ५७ मुष्टि युद्ध। ५८ बाहुयुद्ध—इन सब का लडना सीखना। ५९ धनुर्वेद। ६० शस्त्रादिक से युद्ध। ६१ ईसत्थलता युद्ध[1]। ६२ हिरण्यपाक। ६३ सुवर्ण पाक। ६४ वृषदं[2]। ६५ सूत का उपयोग जानने की कला। ६६ वस्त्रादिक बुनना। ६७ क्षेत्रव्यवस्था। ६८ तोलने के कांटे (तराजू)—तोलने की विधि जानना। ६९ काष्ट को घडना और नये २ घाट बनाना। ७० शारीरिक कसरत। ७१ सजीव-करण क्रिया। ७२ निर्जीव-करण क्रिया।

तीसरी ७२ कला।

इन ७२ कलाओं का एक तीसरा प्रकार है सो भी तू सुनले। १ लिखना। २ पढना। ३ संख्या—गणित। ४ गीत। ५ नृत्य। ६ ताल। ७ ढोल बजाना। ८ मृदंग बजाना। ९ वीणा बजाना। १० बांसुरी बजाना और ११ भेरी बजाना। १२ इन सब की परीक्षा करना। १३ हाथी और १४ घोडे को सिखाना। १५ धातु परीक्षा। १६ प्रत्यक्ष और १७ अप्रत्यक्ष विषय को जानना। १८ शरीर में झुर्रियां पडगई हों उन को सुधारना तथा केश काले करने की कला। १९ रत्न, २० नारी और २१ नर के लक्षण जानने की कला। २२ पिंगल २३ तर्क, २४ जाति, २५ तत्व—पदार्थ. २६ कविता, २७ ज्योतिष, २८ वेद, २९ वैद्यक, ३० भाषा, ३१ योग और ३२ रसायन इन सब के लक्षण गुण तथा दोष जानने की कला। ३३ गुप्त रहने के अंजन (अदृश्यांजन बनाने की कला[3]) ३४ लिपिज्ञान। ३५ स्वप्नविचार।

---

१ ये दो कला कैसी है और इन के लक्षण कैसे है सो उन के नाम परसे नहीं समझे गये। तैसे ही तिनके जतियों को पूछने से भी वे इनका खुलासा नहीं कर सके।

२ संस्कृत में वृष अर्थात् धर्म और द अर्थात् देनेवाला; अर्थात् धर्म का देने वाला। प्रयोजन यह कि धर्मोपदेशक होने की कला। इस के सिवाय दूसरी बहुतसी कलाएं हैं जो नहीं समझी जातीं।

३ इस अंजनके विषय में ऐसा कहते है कि जो मनुष्य इस को आंजता है वह अपनी इच्छानुसार चाहे जहां फिरता रहे, परन्तु उस को कोई नहीं पकड सकता। ऐसे अंजन

३६ इन्द्रजाल । ३७ कृषि कला । ३८ वणिक कला । ३९ नृपसेवा कला । ४० शकुन देखना । ४१ जल-प्रवाह को रोकने की कला । ४२ अग्नि को रोकने की कला । ४३ जलमें स्थिर रहने की कला । ४४ नजरबंद करने की कला (मेस्मेरिजम) ४५ दृष्टिको भंग करने की कला । ४६ ऊर्ध्वदृष्टि करने की कला । ४७ किसी को वचनबद्ध अथवा भ्रमित करने की कला । ४८ पत्र छेदन कला । ४९ मर्म भेदन कला (गुप्त बात जानना अथवा मार्मिक बात कहना) ५० भाग में से घटादेने की कला । ५१ वृष्टि का ज्ञान । ५२ लोकाचार जानना । ५३ मनुष्य के अनुकूल होने की कला । ५४ फलादिक को चीरने-तोडने की कला । ५५ तलवार और ५६ छुरी बांधने की कला।५७ मुद्रा (सन्ध्यावंदन करने के समय की जानेवाली अंकुशमुद्रा आदिक) जानना । ५८ अजज्ञान-ब्रह्म लोक का ज्ञान अर्थात् वेदान्त विचार । ५९दन्तादिक की आकृति बनाने की कला (दांत नये बनाना) । ६०काष्टादि के पुतले (कठपुतलियां) बनाना । ६१ साधारण चित्र बनाना । ६२ दृष्टिका युद्ध । ६३ हाथ का युद्ध । ६४ मुष्टि युद्ध । ६५ दंडयुद्ध । ६६ ठसि युद्धसि । ६७ वचन-युद्ध । ६८ गरुड-युद्ध[३] । ६९ समस्त प्राणियों को वश करना । ७० दूतों को वश करना । ७१ योग जानना । ७२ नामालय[४] ।

स्त्रियों के उपयोगी ६४ कला ।

१ गीत-गाना । २ वाद्य-बजाना । ३ नाटय-नाच और नाटक । नाच करके अंग के छः भाव दर्शाना । ४ आलेख्य-चित्र कला । (इस में छः

का उतार [दर्पनाशक] वह है कि जहां ऐसा मनुष्य होय वहां ऐसा धुँआ करना कि जिससे नेत्रों में से टपकते हुए आंसुओं के साथ अंजन धुप जावे और वह मनुष्य प्रगट हो ।

१ घुटनों से दबाकर, छाती तोड़कर अथवा गला घोंटकर मारना । भीम ने दुःशासन को इसी रीति से मारा था ।

२ उछलकूद कर लड़ना ।

३ यह कला समझ में नहीं आती ।

४ इन में से जिस २ कला का उपयोग पहले की नाई है उन का विवेचन पुनर्वार नहीं किया है ।

बातें जानने के योग्य हैं)। १ तरह २ के रंग बनाना। २ अवयवोंका प्रमाण जानना। ३ भाव और लावण्य प्रविष्ट करने की कला। ४ तादृश—हूबहू छवि बनाना। ५ पींछी (ब्रुश) की बनावट और श्रेष्ठता और ६ चित्र का आकार (कद=Size)।

५ विशेषकच्छेद्य—बेंदी देना तथा काच अथवा भोजपत्र पर टीकी लगा कर बेंदी बनाना।

६ तंदुल कुसुम बलि विकार—बिना टूटे हुए चांवल लेकर मंदिरों में तथा घर के आंगन में साठिया[1] बनाना[2]।

७ पुष्पास्तरण—रतिविलास के लिये फूल के आसन (शय्या) बनाना।
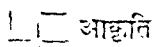
८ दशनवसनांगराग—स्त्रियों को दांत रंगने की अत्यन्त उत्कण्ठा होती है इस लिये दांत रंगने की कला। नये २ रंग के वस्त्र पहनने की कला। और अंग में सुगंधित द्रव्य लगाने की कला।

९ मणिभूमिका कर्म—ग्रीष्म ऋतु में शरीर शान्त होने के लिये मरकत मणि आदि से आंगन पूरना—रंगविलास के लिये यह कला है।

१० शयन रचना—तीन प्रकार की शयन रचना होती है। रक्त, विरक्त और मध्यस्थ (उत्कंठित; अनुत्कंठित और मध्यम उत्कंठित) नायकको पहचान कर शय्या रचना पुनः, ऐसी शय्या रचना कि जिस से आहार पच जावे। पहले के राजा महाराजा तो विशेष करके अपनी रानी से ही ऐसी शय्या की रचना करवाते थे, क्यों कि ऐसा न होने से शत्रु की ओर से विष मिला दिये जाने का भय रहता है।

११ उदकवाद्य कला—कर्नाटक आदिक प्रदेशों की स्त्रियां पानी में मृदंग आदिक बाजे बजाती हैं। यह कला जलतरंग आदिक बाजों के बजाने के काम की है।

१२ उदकाघात—तैरने की कला. जल में तलवार फेरने की कला[3]।

---

१ ऐसी 卍 आकृति

२ अब भी ओसवाल जाति के महाजन जिन को श्रीसंघ भी कहते हैं, जब जिनमंदिर में जाते हैं तो जिनप्रतिमा के सन्मुख पाट पर साठिया बनाया करते हैं।

३ सातवीं कला से बारहवीं तक का उपयोग करना रानियों का कर्तव्य है।

१३ चित्राश्व योग—पति की इच्छा रतिरंग करने की हो, परन्तु अपनी इच्छा न हो तो इन्द्रियों की शिथिलता दर्शाना ।

१४ माल्यग्रन्थन विकल्प—देव पूजा के लिये फूलों की नाना प्रकार की माला बनाना ।

१५ शेखरकापिडयोजन कला—शिर के केशों में टांकने के लिये वेणी, काष्ट क अलंकार, ताज, मुकुट बनाने की कला ।

१६ नेपथ्य प्रयोग—देश काल के अनुसार शरीर पर वस्त्र पुष्प धारण करने की कला ।

१७ कर्णपत्रभंग—हाथी—दांत; शंख, माणक (कृत्रिम) के कानों में पहनने के फूल बनाना ।

१८ गंध युक्ति—अंग को उत्तम सुगंध से विशिष्ट करने की कला ।

१९ भूषण योजना—गहना (जेवर) पहनने की कला । यह दो प्रकार की है—संयोज्य और असंयोज्य । मणिमोती आदिक जो भूषण हैं वे संयोज्य कहे जाते हैं, और कड़े, कुंडल पहुंची इत्यादिक असंयोज्य । कोई कहे कि इन में क्या कला है ? उस का समाधान यह है कि कई एक स्त्रियां अति उत्तम आभूषण पहनती हैं परन्तु वे, चाहे जैसे पहनेहुए होने के कारण से शोभा नहीं देते । आभूषणों को रीति से, यथा स्थान पहनना चाहिये कि जिन से लालित्य और सुन्दरता दीखने लगे । यह इस कला का भेद है ।

२० इन्द्रजाल ।

२१ कौचुमाराश्च योग—कृत्रिम सौंदर्य दर्शाना । इस से पति को अत्यन्त मोह उत्पन्न होता है जिस से वह अन्य स्त्री पर आसक्त न होवे । स्त्री का मुख्य कर्त्तव्य यही है कि पति को प्रसन्न—रंजन करना और दुराचरण से रोकना ।

२२ हस्तलाघव—प्रत्येक कार्य के लिये हाथ की चपलता । थोडे समय में काम करलेने की हथौटी (अभ्यास)

---

१ जैसे वर्तमान समय में पारसी और अंगरेजों की स्त्रियां खूबसूरती दर्शाने के लिये पाउडर आदिक लगाकर टापटीप से रहती हैं इस रीतिसे सुंदरता नहीं दर्शाना किन्तु अंगशोभा और सद्गुणों की वृद्धि से मनहरण करना चाहिये ।

२३ विचित्र शाक यूष विकार क्रिया--शाक, पाक बनाने की कला। शाक १० प्रकार के होते हैं:--१ गांठ वाला (रताळू, सूरण (जमीकंद) आलू इत्यादिक.) २ पत्ते का (मेथी. बथुआ) ३ करीर का (केला प्रभृति) ४ अग्र-भागका) डांभा इत्यादिक शाक मुम्बई की तरफ प्रसिद्ध हैं ५ डंडीका. ६ फलका (अमरूद आदि) ७ फूलका (गोभी, अगस्त्या इत्यादिक) ८ छाल (केला इत्यादिक की)९काटोंका १० फलियां (घीकुवार, ग्वार वगैरह)और भी दाल और कढ़ी आदिक क्वाथ बनाना कि जिनसे तुरन्त पाचन हो। छोंक देने की कला कई एक पानी जैसे द्रव (पतले) और कई एक लोंदे जैसे घट्ट शाक बनाने की क्रिया पुनः इमली आदिक पदार्थ कितने और किस समय डालने से शाक रसमय हो, यह बात जानना चटनियां बनाना ये सब बातें स्त्रियों के लिये अति उपयोगी हैं।

२४ पानक रस रागासव योजना--पीने के पदार्थ (जिन को पणा (पानक) कहते हैं) बनाने की कला। जैसे कि चीभडा के बहुत छोटे २ टुकडे करके उसमें नमक मिरच अथवा चीनी मिलाकर एकमेक करदेना खरबूजे का पणा बनाना, फालसे और जामुन आदिका शरबत बनाना, ऊख (ईख--गन्ना) के रस में मिरच मसाला भरना। बीलसार (चासनी में अदरक, मिरच, ईख के टुकडे डालकर बहुत दिनतक रह सकें ऐसे पदार्थ बनाना.) गुड आदिके आसव चाटने के (मुरब्बा--अवलेह आदि) चूर्ण और पीने के पदार्थ (दुग्धपाक, बासूंदी आदि) ऐसे २ पदार्थ बनानेकी क्रिया का नाम 'पानक रस रागासव योजना है'।

२५ सूचीवान कर्म कला--सीने और बुनन की कला। सीनेके तीन भेद हैं १ कंचुकी, चोली आदि सीना, २ फटे हुए वस्त्रों को सीना, और ३ बखिया मारना। बुनने की कला में टेबल क्लाथ (Table cloth) रूमाल, गुलूबंद आदि का बनाना संयुक्त है।

२६ सूतक्रीडा--यह एक कौतुक--कला है कि जो सूत से बनती है। जैसे कि नली में डोरा (धागा) डालकर एक तरफ से खैंचे तो उसके पांच छः तार निकलें, परन्तु उसी को दूसरी ओर से खैंचने से ५०, और बीच में से

---

१ रसायण रत्नाकर--हुनर हजारा देखिये।

खैंचने से केवल एक धागा निकले । पुनः इन नलियों को इकट्ठी करके धागों (डोरों) की खैंचताण करते हैं । तैसे ही हाथ की उंगलियों में डोरा डालकर उससे मोरपंजे, हाथी के पैर बनाते हैं ; एक पाग (पगडी) के बीचोबीच से कतरे परन्तु पगडी भी बनी रहजाय और टुकडा भी निकाल लिया जावे; रूमाल में अंगूठी (मुद्रिका) रखकर बांध देने पर भी अंगूठी निकाल ली जावे; हाथ पैरों में डोरी बाँधकर उस के दोनों मुँह जोड दिये जावें तो बिना गांठ खोलने के शरीर को खुलासा करना, ये सब सूतक्रीडा हैं । साधु लोग लोहे की एक कडी में दूसरी कडी डाल देते हैं और उनको सुलझाया करते हैं सो भी यही कला है–इस को 'गोरख–धंधा कहते हैं ।

२७ वीणा डमरू वाद्य कला ।

२८ प्रहेलिका–समस्या, अर्थापत्ति, और द्विअर्थी वाक्य पूछने और बताने की कला ।

२९ प्रतिमाला ।

३० दुर्वचक योग कला–किसी को छलना हो अथवा मुखबंध करना हो तो कठिन शब्द और गूढ अर्थ वाले वाक्य बोलना कि जिन को न समझ कर साह्मने वाला मनुष्य कुछ न बोल सके ।

३१ पुस्तक वाचन–स्वरपूर्वक और प्रीति उत्पन्न हो ऐसी रीति से पुस्तक वांचना ।

३२ नाटयाख्यायिका दर्शन–दश प्रकार के नाटक और आख्यायिका जानने की कला ।

३३ काव्य समस्यापूर्ति ।

३४ पट्टिकावेत्र वाण विकल्प–पलंग, चार पाई और कुरसी पर निवार तथा वेत मँढने की कला ।

३५ तक्षकर्माणि–एक में से दूसरे को खैंच निकालना–दूर करना । इस कला को जानने से प्रसव–समय बहुत लाभ होता है । उदर में के गर्भ की थैली इत्यादिक पदार्थ विना अडचन (तकलीफ) के निकालने का ज्ञान इस से होता है ।

३६ तक्षण कला—शय्या पलंग, अलमारे, मेज, कुरसी, दीपक आदि सम्बन्धी घर का साहित्य इन को किस प्रकार से रखना कि जिस से घर की अधिक शोभा हो।

३७ वास्तुविद्या—घर में किस विधि से काम काज करना घर कैसे बांधना [मांडना], अन्नजल आदिक सामग्री को कैसे संभालना।

३८ रौप्य रत्न परीक्षा—चांदी, सोना परखने के संबंध का ज्ञान; ऐसे ही रत्नों की परीक्षा करने की कला। पति की अनुपस्थिति (गैरहाजिरी) में कोई पुरुष न छल जावे तथा लेन देन में भी घाटा (नुकसान) न हो सो इस से जाना जाता है।

३९ धातुवाद—धातुओं की प्रकृति (खासियत) को जानना कि जिस के कारण से कीमिया (रसायण) के धोखे में न आवे। और भी, घर के कामकाज के लिये तांबे पीतल के वरतनों को परख सके मिट्टी और पत्थर आदिमें मिली हुई धातु को शोधने और गलाने की क्रिया भी इसी में है।

४० मणिरागाकर ज्ञान—माणि, रत्न, मोती आदि को डांक देकर शोभावाले वनाने का ज्ञान। नाना प्रकार के रंगों का ज्ञान तथा पुखराज आदिक रत्नों को परखने का ज्ञान भी इस कला में समाया हुआ है।

४१ वृक्षायुर्वेद कला—गृहस्थ के घर के आंगन में छोटा वगीचा हुआ करता है उस के लिये यह कला वडी लाभदायक है। झाड पौधे कैसे वोना, उन को कैसे पालना और जीव जंतुओं से कैसे वचाना इन सव वातों का ज्ञान इस कला से होता है।

४२ मेष कुक्कुट लावक युद्ध कला—मेंढा, मुर्गा तथा वाज पक्षी को लडाने की कला। स्त्री पुरुष के वीच में विनोद के लिये हंसी की शर्त (पैंज) होती है, उस प्रसंग पर इन प्राणियों के युद्ध के परिणाम से निर्णय करते हैं। पुनःकामी स्त्री पुरुष अपने पास मेंढा अवश्य रखते है। उर्वशी अपने साथ में मेंढे के दो वच्चे लाई थी उन को उस ने पुरुरवा राजा को संभाल रखने के लिये दिये थे इस को सजीव द्यूत कहते हैं।

४३ शुकसारिका—प्रलापन कला-तोता मैना को पढाने की कला। इस कला से विनोद में समय कटता है। तथा वे पढे हुए हों तो संदेशा भी लेजा सकतेहैं:

४४ उत्सादन–संग्राहन–केशमर्दन कौशल्य कला–पति के चरण चांपना, मस्तक चांपना, अंग दाबना. और केशों पर हाथ फिराने की कला ।

४५ अक्षर मुष्टिका कथन कला–थोडे अक्षरों में बहुतसा अर्थ बताने की कला । संक्षिप्त शब्द लिखे अथवा चिह्नमात्र करे, परन्तु उस को उस के यथार्थ भाव सहित समझने–समझाने की कला । प्राचीन काल में ऐसे काव्यभी थे जिन को दशधेनु,शद्धेनु,सहस्र धेनु, कोटिधेनु और कामधेनु कहते थे। मात्र १० वा २० अक्षर ही लिखे हुए हों परन्तु उन से, एक लाख से भी अधिक भिन्न २ श्लोक बनते हों उस को कामधेनु कहते हैं । तथा संज्ञा से भी भाव दर्शाते हैं ।

४६ म्लेच्छित विकल्प कला अक्षरों को उलट कर बात को गुप्त रखने का ज्ञान । जैसे अ क प ग के बदले च छ ज झ लिखे परन्तु वांचने वाला तो समझ कर ही वांचे–अर्थात् वांचनेवाला स्वयं समझ जावे पुनः संभाषण करने में भी इस का उपयोग किया जाता है; जैसे कि 'वेद रुपये दे' अर्थात् चार रुपये दे। इन अक्षरों का एक भेद साभास और दूसरा निराभास है; और वह छः प्रकार से प्रगट किया जा सक्ता है । यथा मुट्ठी, पत्र, छटा, पताका, त्रिपताका और अंकुश से । इस को करपल्लवी भी कहते हैं । गुरुजनों के आछत स्त्री पुरुष को परस्पर तारामैत्रक अथवा संकेत करना हो तो यह कला बडी लाभदायिनी है ।

४७ देश भाषा ज्ञान–देश २ की भाषा जानना ।

४८ पुष्पशकटिका–पुष्प के निमित्त कारण से पति के आधीन होना वा पति को आधीन करना ।

---

१ इस विषय में एक उत्तम दृष्टांत जानने के योग्य है । अकबर और उस की जोधपुरवाली रानी के बीच में परस्पर इतना प्रेम था के दोनों को एक निमेष की जुदाई भी असह्य थी । एक समय शाहनशाह शिकार खेलने गये । वहां तीन दिवस व्यतीत हो जाने के कारण रानी को अत्यन्त विकलता हुई, तब उस ने एक खोजे के साथ संदेशा भेजा ? उस ने एक बड़े कागज़ पर लाल स्याही से सा यही एक अक्षर लिख दिया था । उस कागज को देखकर बादशाह ने सब को बुलाकर पूछा कि इस का अर्थ क्या है ? पर कोई नहीं बता सका । तदनन्तर पंडितराज जगन्नाथराय ने इसका भेद कहा कि लालसा—अत्यन्त प्रेम से आतुर अर्थात् रानी आपसे मिलना चाहती है।

२ इस समय भी बहुत से व्यापारी अक्षर फेरने की कला का उपयोग करते हैं ।

४९ निमित्तज्ञान–शकुन जानने की कला।

५० यंत्रमातृका–सजीव–बैल घोडे आदि की गाडी तथा यंत्र की गाडी का उपयोग–उन में की कठिनाई और आसानी को जानने की कला।

५१ धारण मातृका–स्मरण रखने की कला। स्त्री को पांच बातें विशेष याद रखनी पडती हैं–वस्तु, कोष, द्रव्य, लक्षण और चिन्ह।

५२ संपाठ्य कला[1]–मिलकर गान करना।

५३ मानसी काव्य कला–मनमें विचार किया हुआ श्लोक–कवित्त बता देने की कला। यह कला विनोद के लिये है। श्लोक में के अक्षर बता देना भी यही कला[2] है।

५४ से ५७ तक–काव्य क्रिया, अभिधान, छन्दोज्ञान और क्रियाविकल्प कला–इन चारों कलाओं की काव्य रचना में आवश्यकता होती है और इन का उपयोग जगत्प्रसिद्ध है।

५८ छलितक योग कला–वेष बदलकर दूसरे को ठगने की कला। यह कला पुरुष का भेष धारण करके अपने हिराये गये पति को खोजने के काम में आती है। पूतना और शूर्पणखा को यही कला ज्ञात थी।

५९ वस्त्रगोपन कला–वस्त्र पहनने की कला, वस्त्रों को ऐसी रीति से पहनना कि कदाचित् कभी कोई दुष्ट मनुष्य शील भंग करने को सन्नद्ध हो तो कृतकार्य (कामयाब) न हो सके। दो तीन वस्त्र पहने जायं परन्तु दूसरा नहीं जान सके। द्रौपदीने इसी रीति से एक, दो, तीन वस्त्र पहने हों और भगवान ने रक्षा की हो। तैसे ही वस्त्रों को संभालने की विधि भी इसी कला में है।

६० द्यूतविशेष कला–एक प्रकार का विचित्र जुआ खेलना।

६१ आकर्ष क्रीडा–भाव दर्शाकर अपने पति को अपनी ओर खैंचने–ललचाने की कला।

६२ बाल क्रीडन–बालकों के खेलने के लिये खिलोने बनाना।

---

१ Cdorue राग में गरबा गाये जाते है सो।

२ मेरे पास डाकमहसूल के लिये आध आने का टिकट भेजने से अद्भुत कौतुक भेज दिया जावेगा।

६३ वैनायिकी, वैजयिकी और व्यायामिकी कला—विनय दर्शाना, विजय, प्राप्त करना, और कसरत करना ।

६४ विद्या ज्ञान—सामान्य चतुराई जानना ।

इस प्रकार से स्त्रियों की ६४ कलाएं हैं जिन का जानना स्त्रियों के लिये अत्यन्त आवश्यक है । इन में की बहुतसी कलाएं रानियों के लिये हैं, परन्तु विशेष करके तो गृहस्थ की स्त्री के लिये ही आवश्यक हैं । जिस प्रकार से पुरुषों की अनेक कला हैं तैसेही स्त्रियों की भी हैं । उन की और ६४ कला हैं जिन का ज्ञान होना भी आवश्यक है:—

स्त्रियों की दूसरी ६४ कला ।

१ नृत्य । २ योग्यता की कला । ३ चित्र, ४ वाद्य, ५ मंत्र और ६ तंत्र के गुण जानना । ७ परलोक का ज्ञान । ८ व्यवहार ज्ञान । ९ दंभी को परखने की कला । १० जल को रोकने की कला । ११ गीत ज्ञान । १२ मलार राग गाने की कला । १३ वृक्षारोपण । १४ अभिप्राय—गोपन कला । १५ अन्न सिद्ध करने की कला । १६ सन्तति उत्पन्न करने की कला । १७ खेती की विद्या जानना । १८ धर्म विचार । १९ शकुन भाव जानना । २० क्रिया—काम काज जानना । २१ संस्कृत जानना । २२ गृहनीति । २३ धर्मनीति । २४ धीरे २ गमन करना । २५ पति को कामेच्छा हो ऐसे शब्द बोलना । २६ सुवर्ण सिद्धि । २७ नाना प्रकार के रंग भरनेका ज्ञान । २८ सुगंधित तेल काम में लाने और बनाने की कला २९ हाथी और घोडे ३० नर और ३१ नारी इन के लक्षण और मर्म जानना । ३२ अठारह भाषाओं का ज्ञान । ३३ सुवर्ण और रत्नादिक के भेद । ३४ तात्कालिक बुद्धि का ज्ञान । ३५ गृहादिक में यथोचित प्रकार से बरतने की कला । ३६ वैद्यक क्रिया । ३७ कामदेव की क्रिया (**पतिरंजन के लिये**) ३८ जल भरने की कला । ३९ पासे डालने की कला (खेलमें) । ४० चूर्ण—सूंठ हींग आदि को बनाना । ४१ नेत्र आंजने की कला । ४२ हाथ की चपलता । ४३ वचन में चतुराई । ४४ भोजन विधि (उत्तम उत्तम व्यञ्जनों की योजना किस प्रकार करना), ४५ लेनदेन जानना।

४६ मुख श्रृंगार। ४७ चांवलों को खांडना। ४८ काव्य रचना। ४९ कथा वार्ता कहना। ५० रुदन करना [दंभसे] ५१ फूल गूंथना। ५२ वक्रोक्ति कला। ५३ वेष बदलना वस्त्र पहनना। ५४ अलंकार धारण करने का ज्ञान। ५५ अनेक भाषाओं का रहस्य जानने की कला। ५६ पतिसेवा करना। ५७ गृहाचार। ५८ दूसरे के वचन को सुनकर तुरन्त उस का अभिप्राय समझ लेना। ५९ केश बंधन। ६० वीणा बजाने की कला। ६१ लोक—व्यवहार ज्ञान। ६२ अंकादिकं को उलटपलट करने की कला। ६३ व्यर्थवाद—वितंडा वाद की कला। ६४ प्रश्न—समस्या पूछने की कला।

महत् पुरुषों ने इस रीति से अर्थशास्त्र सम्बन्धी कलाओं के अनेक रूप बना दिये है, जिन में का बडा भाग मैंने तुझ को बता दिया है। इन कलाओं का निरूपण कुछ तो योग्य प्रसंग पर समझाया जावेगा और बहुतसा बुद्धिमान् पुरुष स्वात्मप्रकाश सेही जान सकते हैं। अर्थ सम्बन्धी ये कलाएं स्त्री और पुरुष को ज्ञान, यश और आनन्द भली भांति प्राप्त कराते हैं; इस के साथ ही संसार व्यवहार में जो लाभ होता है सो तो अनुपम ही है।

इस भांतिसे तेरहवीं रात्रि को धूर्त्तशिरोमणि मूलदेव महाराजने चंद्रगुप्त को अर्थकला का निरूपण दर्शाकर सभा विसर्जन की।

चौदहवां सर्ग।

सकल (सर्वोत्तम) कला निरूपण।

चौदहवें दिवस मूलदेव महाराज आनन्द—मग्न और उत्साह—पूर्वक विराजमान थे। चन्द्रगुप्त को उन्हों ने यह कहा कि बेटा! सत्य और ग्रहण करने के योग्य कलाएं कितनी और कैसी हैं सो तुझ को आज बताता हूं सो श्रवण कर।

समुद्र को मथन करने के लिये देवता और दैत्य मंदराचल को लेकर सन्नद्ध हुए थे. और अनेक प्रकार के रत्न प्राप्त करने के अनन्तर अन्त में एक अमृत का कुंभ प्राप्त किया, तैसेही आज मैं तुझ को कला रूपी अमृत का कुंभ देता

६३ वैनायिकी, वैजयिकी और व्यायामिकी कला—विनय दर्शाना, विजय, प्राप्त करना, और कसरत करना ।

६४ विद्या ज्ञान—सामान्य चतुराई जानना ।

इस प्रकार से स्त्रियों की ६४ कलाएं हैं जिन का जानना स्त्रियों के लिये अत्यन्त आवश्यक है । इन में की बहुतसी कलाएं रानियों के लिये हैं, परन्तु विशेष करके तो गृहस्थ की स्त्री के लिये ही आवश्यक हैं । जिस प्रकार से पुरुषों की अनेक कला हैं तैसेही स्त्रियों की भी हैं । उन की और ६४ कला हैं जिन का ज्ञान होना भी आवश्यक है:—

स्त्रियों की दूसरी ६४ कला ।

१ नृत्य । २ योग्यता की कला । ३ चित्र, ४ वाद्य, ५ मंत्र और ६ तंत्र के गुण जानना । ७ परलोक का ज्ञान । ८ व्यवहार ज्ञान । ९ दंभी को परखने की कला । १० जल को रोकने की कला । ११ गीत ज्ञान । १२ मलार राग गाने की कला । १३ वृक्षारोपण । १४ अभिप्राय—गोपन कला । १५ अन्न सिद्ध करने की कला । १६ सन्तति उत्पन्न करने की कला । १७ खेती की विद्या जानना । १८ धर्म विचार । १९ शकुन भाव जानना । २० क्रिया—काम काज जानना । २१ संस्कृत जानना । २२ गृहनीति । २३ धर्मनीति । २४ धीरे २ गमन करना । २५ पति को कामेच्छा हो ऐसे शब्द बोलना । २६ सुवर्ण सिद्धि । २७ नाना प्रकार के रंग भरनेका ज्ञान । २८ सुगंधित तेल काम में लाने और बनाने की कला २९ हाथी और घोडे ३० नर और ३१ नारी इन के लक्षण और मर्म जानना । ३२ अठारह भाषाओं का ज्ञान । ३३ सुवर्ण और रत्नादिक के भेद । ३४ तात्कालिक बुद्धि का ज्ञान । ३५ गृहादिक में यथोचित प्रकार से वरतने की कला । ३६ वैद्यक क्रिया । ३७ कामदेव की क्रिया (**पतिरंजन के लिये**) ३८ जल भरने की कला । ३९ पासे डालने की कला (खेलमें) । ४० चूर्ण—सूंठ हींग आदि को बनाना । ४१ नेत्र आंजने की कला । ४२ हाथ की चपलता । ४३ वचन में चतुराई । ४४ भोजन विधि (उत्तम उत्तम व्यञ्जनों की योजना किस प्रकार करना), ४५ लेनदेन जानना।

४६ मुख श्रृंगार। ४७ चांवलों को खांडना। ४८ काव्य रचना। ४९ कथा वार्ता कहना। ५० रुदन करना [दंभसे] ५१ फूल गूंथना। ५२ वक्रोक्ति कला। ५३ वेष बदलना वस्त्र पहनना। ५४ अलंकार धारण करने का ज्ञान। ५५ अनेक भाषाओं का रहस्य जानने की कला। ५६ पतिसेवा करना। ५७ गृहाचार। ५८ दूसरे के वचन को सुनकर तुरन्त उस का अभिप्राय समझ लेना। ५९ केश बंधन। ६० वीणा बजाने की कला। ६१ लोक—व्यवहार ज्ञान। ६२ अंकादिक को उलटपलट करने की कला। ६३ व्यर्थवाद—वितंडा वाद की कला। ६४ प्रश्न—समस्या पूछने की कला।

महत् पुरुषों ने इस रीति से अर्थशास्त्र सम्बन्धी कलाओं के अनेक रूप बना दिये है, जिन में का बडा भाग मैंने तुझ को बता दिया है। इन कलाओं का निरूपण कुछ तो योग्य प्रसंग पर समझाया जावेगा और बहुतसा बुद्धिमान् पुरुष स्वात्मप्रकाश सेही जान सकते हैं। अर्थ सम्बन्धी ये कलाएं स्त्री और पुरुष को ज्ञान, यश और आनन्द भली भांति प्राप्त कराते हैं; इस के साथ ही संसार व्यवहार में जो लाभ होता है सो तो अनुपम ही है।

इस भांतिसे तेरहवीं रात्रि को धूर्त्तशिरोमणि मूलदेव महाराजने चंद्रगुप्त को अर्थकला का निरूपण दर्शाकर सभा विसर्जन की।

चौदहवां सर्ग।

सकल (सर्वोत्तम) कला निरूपण।

चौदहवें दिवस मूलदेव महाराज आनन्द—मग्न और उत्साह—पूर्वक विराजमान थे। चन्द्रगुप्त को उन्हों ने यह कहा कि बेटा! सच्च और ग्रहण करने के योग्य कलाएं कितनी और कैसी है सो तुझ को आज बताता हूं सो श्रवण कर।

समुद्र को मथन करने के लिये देवता और दैत्य मंदराचल को लेकर सन्नद्ध हुए थे. और अनेक प्रकार के रत्न प्राप्त करने के अनन्तर अन्त में एक अमृत का कुंभ प्राप्त किया, तैसेही आज मैं तुझ को कला रूपी अमृत का कुंभ देता

हूं, और जैसे देवता उस का पान करके अमर हुए थे तैसेही तू भी इस कला को पान करके अमर होगा इस में अणुमात्र संदेह नहीं । प्रथम मैं ने तुझ को सच्चरित्रवाली काम की कलाएं बताईं तिस पीछे अर्थ–कलाएं सिखाईं और आज धर्म की कला तुझ को सिखाता हूं । धर्म की ६४ कला और वे यावच्चंद्रदिवाकर रहने वाली हैं । एक समय श्रीविष्णु भगवान शेषशय्या पर विराजमान थे, तिस समय ब्रह्मादिक देवताओं ने विनय पूर्वक कहा कि हम को, मनुष्य और देव सर्व के ग्रहण करने के योग्य तथा कल्याणकारी धर्म की कलाओं का ज्ञान प्रदान कीजिये । उस समय भगवान ने जो कुछ कहा सो मैं तुझ को कहता हूं । धर्म की ६४ कलाएं इस प्रकार से हैं ।

धर्म की ६४ कला ।

धर्म कला–१ प्राणीमात्र पर दया । २ परोपकार । ३ दान । ४ क्षमा । ५ समान भाव । ६ सत्य । ७ उदारता । और ८ विनय. ये आठ धर्म की कला हैं ।

अर्थ कला–१ सदा उत्पन्न (पैदा) करना–धन प्राप्त करना । २ नियम का बराबर पालन करना । ३ व्यवहार में कुशलता । ४ उपज (पैदावारी=आमदनी) के अनुसार खर्च. ५ चातुर्य. ६ उलट और ७ स्त्रीका अविश्वास ये ७ कलाएं अर्थ सम्बन्धी हैं ।

कामकला–१ शरीर को सिंगारना. २ सयानप रखना. ३ मीठापन रखना. ४ सद्गुण ग्रहण करना. ५ अनेक प्रकार के खेल खेलना. और ६ स्त्री के मनकी परीक्षा करना. ये छः काम की कला हैं ।

मोक्ष कला–१ विवेक सहित प्रेम. २ शान्ति. ३ तृष्णा त्याग ४. संतोष. ५ एकान्तवास. ६ आत्म ज्ञान और ७ परब्रह्म का ज्ञान. ये सात मोक्ष की कला हैं ।

इन में धर्म इत्यादिक चार पदार्थ अपनी कलाओं सहित मिलकर ३२ होते हैं. संसार को पार कर जानेवाले विद्वानों की ये मुख्य कला हैं ।

सुखेच्छा कला–१ नम्रता । २ प्रियवादित्व । ३ धैर्य । ४ शान्ति । और ५ परलोक जाने के लिये वैराग्य । ये पांच सुख की कला हैं ।

शील कला–१ सत्संग । २ ब्रह्मचर्य । ३ पवित्रता । ४ गुरु सेवा । ५ सदाचार । ६ निर्मल शास्त्र ज्ञान और ७ यश प्रेम । ये सात शील की मूल कला हैं ।

प्रताप कला—१ तेज। २ बल। ३ बुद्धि। ४ व्यवसाय। ५ नीति। ६ दूसरे का अभिप्राय जानना। ७ दक्षता। ८ उत्तम सहाय। ९ कृतज्ञत्व। १० गुह्य वार्त्ता की रक्षा। ११ त्याग। १२ प्रेम। १३ प्रताप। १४ मित्रों का संग्रह। १५ कोमलता १६ सादगी (सरलता)। और १७ अपने आश्रित पर प्रीति। ये सत्रह कला प्रताप की हैं।

मान कला—१ मौनी रहना। २ जडत्व दर्शाना। और ३ किसी से भी नहीं मांगना ये तीन कला मान की हैं। ये सब मिलाकर ६४ कला होती हैं; और इन सब को, गुण और दोषों के साथ अवश्यमेव जानना चाहिये।

पुनः योग की २३ कलाएं हैं, जो इस लोक और परलोक में आत्मा का कल्याण करने के लिये बडी उपयोगी है सो तुझ को अवश्य जानना चाहिये। इन के जाने विना मनुष्य अथवा देवता कोई भी पूर्णता को नहीं पहुंचता। योग की कलाएं इस प्रकार हैं:—

योग की २३ कला।

१ अणिमा—इस कला को जानने से मनुष्य अथवा देवता स्थूल और बृहत् शरीर से सूक्ष्म रूप धारण कर सकते है।

२ महिमा—इस कला को जाननेवाला अत्यन्त सूक्ष्म शरीर को बडा--विराट के तुल्य कर सकता है।

३ लघिमा—इस कला से भारी से भारी शरीर को अत्यन्त हलका—तिल जैसा कर सकते हैं।

४ गरिमा—इस कला के प्रभाव से अत्यन्त हलके शरीर को पर्वत सदृश भारी—बोझवाला करसकते हैं।

५ प्राप्ति इस कला को जाननेवाला समस्त प्राणियों की इन्द्रियों के साथ उन उन इन्द्रियों के देवस्वरूप से सम्बन्ध रख सकता है—अर्थात् सर्व प्राणी उन के वशीभूत होते हैं।

६ ईशिता—ईश्वर में माया की और दूसरों में माया के अंशों की प्रेरणा करने की शक्ति प्राप्त होती है।

७ वशिता—इस कला के कारण विषय-रस में असंग बुद्धि होती है-जिससे महत् सुख की प्राप्ति होती है।

८ प्राकाम्य—जिस २ सुख की इच्छा हो उस २ सुख के अन्त को पहुंचना—अर्थात् जो कदाचित् इच्छा हुई हो कि विलास—सुख भोगना तो, वह उसमें ऐसा पारंगत होवे कि जिस को कोई भी नहीं पहुँच सके. जिस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान अनेक गोपियों के संग रंग उमंग खेले और वे सब तृप्त हुईं परन्तु स्वयं निर्लेप रहे; अब जहां पुरुष एक स्त्री को संतुष्ट करने में भी असमर्थ है तहां १६१०८ स्त्रियों को श्रीकृष्णजीने रमसुख प्रदान किया यह ऐसा वैसा सामर्थ्य नहीं. परन्तु ये आठ कलाएं तो इतनी दुर्गम और कठिन हैं कि इस पापयुक्ता भूमि के मनुष्य को कदापि नहीं प्राप्त होतीं परन्तु आगे लिखी कलाएं अधिक परिश्रम के साथ मिलती हैं, इन ऊपर कही हुई आठ कलाओं का दूसरा नाम अष्टसिद्धि है।

९ अनुर्भूमित्व—इस कला से खानपान की इच्छा नहीं रहती।

१० दूरश्रवण—इस कला से चाहे जितनी दूर से चाहे तो कोटि कोस दूर हो चाहे स्वर्ग लोक, गौलोक अथवा ब्रह्मलोक में कोई वात करता हो तो सुन सकता है।

११ दूरदर्शन—बहुत लम्बी दृष्टि पहुंचती है और इन ही नेत्रों से इस कला के प्रभाव के कारण सब कुछ देख सक्ता है।

१२ मनोजय--जिस जगह मन पहुंचे वहीं क्षणमात्र में शरीर भी पहुंच सक्ता है, इसको मनोजय कला कहते हैं।

१३ काम रूप-अपनी इच्छानुसार रूप धारण करने की कला।

१४ परकाय—प्रवेशन--इस कलासे दूसरे के शरीरमें अपना प्रांण प्रविष्ट किया जा सकता है और अपना इच्छित कार्य सिद्ध हो सकता है। (महाराज विक्रमादित्य इस कला को जानते थे, श्रीशंकराचार्य जी महाराजने मंडनमिश्र की स्त्री को निरुत्तर करने के लिये छः मास की अवधि लेकर मृतराजा के शरीर में प्रवेश किया था वहां रानी से काम शास्त्रका ज्ञान सम्पादन किया था)।

१५ स्वच्छन्द मृत्यु--जब मन में धारे तब और इच्छा हो उस रीति से मृत्यु पाने की कला।

१६ देवसहक्रीडा का दर्शन--इन्द्रादिक देवता अप्सराओंके साथ अपने २ लोक में जो विलास वैभव भोगें जो क्रीडा करें उसका दर्शन होय, और भी उनके साथ आप भी क्रीडा कर सके।

१७ संकल्प संसिद्धि कला--जो विचारे सो करे और जिसकी इच्छा हो सो मिले।

१८ अप्रतिहताज्ञा---किसी भी स्थल में आज्ञा का भंग ही न हो। इस कला से समस्त लोक आज्ञानुवर्ती बने रहते हैं।

१९ त्रिकालज्ञत्व--तीनों काल----भूत वर्त्तमान और भविष्यत का ज्ञान होना।

२० अवद्वंद्व--धूप, ठंढ, बरसात आदि किसी भी रीति से पराजय नहीं हो उस कला को अवद्वंद्व कला कहते हैं।

२१ परचित्ताद्यभिज्ञता--दूसरे के मनमें क्या है सो इस कला से जाना जाता है कि जिस से बड़ी विजय होती है।

२२ प्रतिष्टम्भ--अग्नि में जलाना, विष देना, पर्वत पर से गिरादेना, जलमें गिरा देना, हाथी से पददलित कराना, तोप के मुँह देना, फांसी चढाना इत्यादिक चाहे जो हो तो भी शरीर की किसी भांति से हानि न हो वह प्रतिष्टम्भ कला कही जाती है। यह कला दैत्य-भक्त प्रह्लाद को ज्ञात थी कि जिस से उस की विजय हुई थी।

२३ अपराजय कला--यह कला सम्पादन की हो तो कहीं भी लडने झगडने से किसी प्रकार भी पराजय न हो।

ये २३ कला सर्वोपरि है, पर ये शरीर से प्राप्त हो सकने वाली नहीं है किन्तु इन्द्रियों को दमन करने से प्राप्त होती हैं। यदि तेरी इच्छा हो तो भर्तृहरि पर्वत पर जाकर सद्योगियो के पास से सीख।

विशेष दश कला---१ जो अपना शत्रु अपनी अपेक्षा अधिक बलवान हो तो अपने को वहां से हट जाना चाहिये अथवा नम कर चलना चाहिये।

२ परन्तु उस के सन्मुख हो कर अपनी मूर्खता नहीं दर्शाना।

३ ज्योंही अपनी चढती (उन्नत स्थिति) हो तब उन के साथ वैर करना।

४ दुःखी होते हुए मनुष्य को धर्म से प्रेम रख कर यथाशक्ति उस का आचरण करना चाहिये।

५ और आपत्ति काल में धीरज धरना चाहिये ।

६ सुख प्राप्त हो उस समय हर्ष में नहीं आना ।

७ धन प्राप्त हो—वैभववान् हो तव समानदृष्टि रखना ।

८ सत्पुरुषों पर स्नेह रखना ।

९ जव राज्यखटपट हो तव बुद्धि का उपयोग करना ।

१० और निन्दापात्र हो उस पर उदासीनता रखना-उस की संगति नहीं करना । ये दश कला औषधि के समान गुण करने वाली हैं ।

इस भांति जयशालिनी दश कलाएं तुझ को कहीं । परन्तु याद रखना कि कीर्ति सव पदार्थों में श्रेष्ट है कि जिस के वरावर दूसरा कोई भी पदार्थ नहीं; क्यों कि सम्पूर्ण वस्तुएं काल पाकर नष्ट होती हैं परन्तु कीर्ति तो कभी नष्ट नहीं होती । अतः कीर्ति **सम्पादन** करना चाहिये

सत्पुरुषों की निर्माण की हुई १०० कलाओं का दर्शन । ग्रहण करने के योग्य कला—सद्गुण दुर्गुण का विवेचन ।

१ स्मरण रखना चाहिये कि सत्य पदार्थमात्र में **सत्य साररूप गुरुका वचन** गिना जाता है ।

२ सम्पूर्ण कार्यों में **सार रूप कार्य** जैसे **गौ, ब्राह्मण** और अपने **इष्ट-देव** की पूजा है ।

३ सन्ताप उत्पन्न करानेवाले समस्त पदार्थों में मुख्य **सन्ताप करानेवाला** पदार्थ क्रोध है ।

४ गुण मात्र में **सार रूप गुण** जैसे **बुद्धिमानी** गिनी जाती है.

५ परम धनाढय पुरुषों में **सच्चा धनवान कीर्तिवान** पुरुष है ।

६ असह्य दुःखों में **मुख्य दुःख सेवाधर्म** है ।

७ कालरूप सर्प की फांसियों में मुख्य **फांसी** जैसे **आशा** गिनी गई है ।

८ रत्न के भंडारों में **रत्न का सच्चा भंडार** जैसे दान गिना जाता है ।

९ सुख के समस्त स्थानों में **मुख्य सुखस्थान** जैसे सव के साथ की हुई **सम्माति (मैत्री)** है ।

१० अपमान करानेवाली वस्तुओं में मुख्य **अपमान** कराने वाली वस्तु जैसे **याचना** है ।

११ सम्पूर्ण पश्चात्तापों में मुख्य पश्चात्ताप जैसे दरिद्रावस्था गिनी जाती है।

१२ मार्ग में खाने के निमित्त लिये हुए पदार्थों में मुख्य पाथेय जैसे धर्म कहा गया है।

१३ मुख को पवित्र करनेवाले पदार्थों में मुख्य मुखपवित्रकर्त्ता पदार्थ जैसे सत्य गिना जाता है।

१४ रोगों में मुख्य रोग दुःख गिना जाता है।

१५ गृह की सम्पत्ति का नाश करनेवाली वस्तुओं में मुख्य नाशक पदार्थ जैसे आलस है।

१६ प्रशंसा करने के योग्य पदार्थों में मुख्य प्रशंसनीय पदार्थ निस्पृहता है।

१७ समस्त मधुर वस्तुओं में मुख्य मधुर जैसे मित्र का वचन है।

१८ अंधेरा करने वाली वस्तुओं में मुख्य अंधकार फैलानेवाली वस्तु जैसे अहंकार है।

१९ उपहास करने के योग्य पदार्थों में उपहास करने के योग्य जैसे दम्भ गिना जाता है।

२० पवित्र पदार्थों में परम पुनीत जैसे भूतदया गिनी जाती है।

२१ व्रतमात्र में मुख्य व्रत जैसे शान्ति गिनी गई है।

२२ अनभावती वस्तुओं में मुख्य अनभावती वस्तु जैसे चुगलपन है।

२३ क्रूराचरण में मुख्य क्रूराचरण जैसे किसी की आजीविका का नाश करना है।

२४ पुण्यों में मुख्य पुण्य जैसे दयालुता गिनी गई है।[1]

२५ पुरुषत्व के चिह्नों में मुख्य पुरुषत्वसूचक चिह्न जैसे कृतज्ञता समझी गई है।

२६ मोहजनक पदार्थों में मुख्य मोह पैदा करनेवाली जैसे माया-कपट है।

---

१ तुलसी दया न छांडिये, जबलग घट में प्रान।

२७ नरक में गिरानेवाली वस्तुओं में मुख्य नरकमें ले जाने वाली वस्तु जैसे चोरी गिनी गई है ।

२८ कपटी चोरों में मुख्य कपटी चोर जैसे कामदेव समझा जाता है ।

२९ ज्ञातिभेदों में मुख्य ज्ञातिभेद जैसे स्त्री का भाषण है ।

३० चांडालों में मुख्य चांडाल कसाई गिना जाता है ।

३१ कलियुग के अवतारों में मुख्य कलिका अवतार जैसे मायावी गिना जाता है ।

३२ मणि के दीपकों में मुख्य मणिदीपक जैसे सच्छास्त्र गिना जाता है ।

३३ अभिषेकमात्र में मुख्य अभिषेक जैसे शास्त्रोपदेश कहा जाता है ।

३४ क्लेश मात्र में मुख्य क्लेश जैसे वृद्धत्व गिना जाता है ।

३५ मृत्यु के सदृश समस्त दुःखों में मुख्य मरण दुःख जैसे रुग्नता है ।

३६ भयंकर विषों में मुख्य विष जैसे स्नेह का टूटना है ।

३७ कोढों में मुख्य कोढ जैसे वेश्याके साथ किया हुआ प्रेम गिना जाता है ।

३८ परलोक के कुटुम्बियों में मुख्य कुटुम्बी जैसे पुत्र गिना जाता है ।

३९ अपार दुःख में मुख्य अपार दुःख जैसे शत्रु गिना जाता है ।

४० स्त्रियों में मुख्य स्त्री जैसे तरुणावस्था गिनी जाती है ।

४१ सुन्दर शृंगार को शोभित करने वालों में मुख्य शृंगारका शोभित करनेवाला जैसे रूप गिना जाता है ।

४२ राज्यों में साररूपराज्य जैसे संतोष गिना जाता है ।

४३ चक्रवर्ती के वैभवों में मुख्य वैभव जैसे सत्संग गिना जाता है ।

४४ शरीर को सुखादेनेवाले पदार्थों में मुख्य जैसे चिन्ता गिनी जाती है ।

४५ कोठे के भीतर बंद कर ऊपर से अग्नि छोडे उस से भी अधिक दुःखदायक जैसे द्वेष गिना जाता है।

४६ विश्वासों में मुख्य—साररूप विश्वास जैसे मित्रता गिनी जाती है.

४७ उत्तम साधनों में मुख्य साधन जैसे स्वतंत्रता गिनी जाती है.

४८ व्याधिओं में मुख्य व्याधि जैसे कृपणता है.

४९ पानी आदि के अंधेरे कुंओं में मुख्य अंधा कुआ जैसे खलता है.

५० निर्मल वस्तुओं में मुख्य निर्मल करनेवाली जैसे कोमलता है.

५१ उत्तम रत्नों के मुकुटों में मुख्य रत्नमुकुट जैसे विनय गिना जाता है.

५२ दुराचरणों में मुख्य दुराचरण जैसे द्यूत गिना जाता है.

५३ पिशाचों में मुख्य—वडा पिशाच जैसे नपुंसकता है.

५४ मणि के कडों में मुख्य मणिका कडा जैसे उज्ज्वलदान गिना जाता है.

५५ कान में पहनने के उज्ज्वल रत्नों में मुख्य रत्न जैसे शास्त्रश्रवण है.

५६ चपल वस्तुओं में मुख्य चपल पदार्थ जैसे खलकी मित्रता गिनी जाती है.

५७ वृथा जानेवाले परिश्रमों में मुख्य वृथा जानेवाला परिश्रम खल की सेवा है.

५८ वगीचों में मुख्य वगीचा जैसे निवृत्ति—शान्ति गिनी जाती है.

५९ अमृत की वृष्टि में मुख्य अमृतवृष्टि जैसे (मन) मित्र का दर्शन गिना जाता है.

६० सम्पादन करनेके योग्य वस्तुओं में मुख्य सम्पादन योग्य वस्तु जैसे सत्य प्रेम है.

६१ अविवेक मे मुख्य अविवेक जैसे मूर्ख की सभा गिनी जाती है.

६२ फलवाले झाडों में मुख्य फलसम्पन्न झाड जैसे कुलीन गिना जाता है.

६३ सत् युग के अवतारों में मुख्य अवतार जैसे सौभाग्य गिना जाताहै.

६४ शंका करने के योग्य वस्तुओं में मुख्य शंकायोग्य पदार्थ जैसे राजद्वार है.

६५ स्वभाव से ही कुटिल वस्तुओं में मुख्य कुटिल जैसे स्त्रियों का हृदय है.

६६ प्रशंसा करने के योग्य पदार्थों में मुख्य प्रशंसनीय पदार्थ जैसे विनय-मर्यादा है.

६७ चन्दनादिक लेपों में मुख्य सुगंधितलेप जैसे गुण पर किया हुआ प्रेम गिना जाता है.

६८ शोक उत्पन्न करने वाले पदार्थों में मुख्य शोक-जनक पदार्थ जैसे कन्या है,

६९ सौभाग्यों में मुख्य सौभाग्य वैभव गिना जाता है,

७० दया करने के योग्य वस्तुओं में मुख्य दयायोग्य पदार्थ जैसे मूर्ख है;

७१ कीर्ति के मूलों में मुख्य कीर्तिमूल जैसे अपने पर की हुई दूसरे पुरुष की प्रीति है.

७२ पिशाचों में मुख्य पिशाच जैसे मद्य (दारू) है।

७३ हाथियों और भयंकर यक्षों में जैसे मुख्य यक्ष मृगया है.

७४ शान्ति करनेवाले पदार्थों में मुख्य शान्तिकारक जैसे विराम है.

७५ तीर्थो की यात्रा में मुख्य तीर्थ यात्रा जैसे आत्मप्रेम-आत्मज्ञान-देह में अप्रीति गिनी जाती है।

७६ निष्फल गये हुए मनुष्यों में मुख्य निष्फल गया हुआ जैसे लोभी गिना जाता है।

७७ स्मशान में मुख्य स्मशान जैसे अनाचार गिना जाता है।

७८ रक्षा करने के योग्य स्त्रियों में मुख्य रक्षायोग्य स्त्री जैसे नीति रानी है

७९ प्रतापों में मुख्य प्रताप जैसे इन्द्रिय विजय गिना जाता है।

८० हजारों यक्षों में मुख्य यक्ष जैसे दूसरे की ईर्षा गिनी जाती है।

८१ अतिशय अपवित्र स्थान में मरण पाने की अपेक्षा भी विशेष निन्द्राके योग्य जैसे अपयश गिनाजाता है।

८२ मंगलकारी वस्तुओं में मुख्य मंगलकारी जैसे माता गिनी जाती है।

८३ पुण्योपदेश करनेवालों में मुख्य पुण्य-पवित्र उपदेश देनेवाला जैसे पिता गिना जाता है।

८४ कष्ट में भी कष्टकारक जैसे मारपीट गिनी जाती है।

८५ तल्वार आदिक तीक्षण हथियारों में मुख्य हथियार जैसे कटाना गिना जाता है।

८६ कोप को शान्त करनेवाले पदार्थों में मुख्य शान्तिकारक जैसे प्रणाम गिना जाता है।

८७ कठिन याचनाओं में मुख्य कठिन याचना जैसे 'मित्रता कर' ऐसा कहना गिना जाता है।

८८ पोषण करनेवालों में मुख्य पोषणकर्त्ता जैसे मान गिना जाता है।

८९ संसार में सारमय जैसे सत्कीर्ति है।

९० नीति में मुख्य नीति जैसे भगवद्भक्ति गिनी जाती है।

९१ सुख देनेवाले मार्गों में मुख्य सुखद मार्ग जैसे संग्राम में मृत्यु है।

९२ कल्याणों में मुख्य कल्याण जैसे विनय है।

९३ सिद्धियोंमें मुख्य सिद्धि जैसे उत्साह गिना जाता है।

९४ सम्पादन करने के योग्य वस्तुओं में मुख्य सम्पादनीय वस्तु जैसे पुण्य गिना जाता है।

९५ प्रकाश में मुख्य प्रकाश जैसे ज्ञान गिना जाता है।

९६ गाने में मुख्य गाना जैसे प्रभुनामरटन गिना जाता है।

९७ शास्त्रों में सच्छास्त्र जैसे पूर्णब्रह्मका ज्ञान गिना जाता है।

९८ पुत्रों में सुपुत्र जैसे ज्ञान धर्म गिना जाता है.

९९ वल्लभ में वल्लभ वस्तु जैसे धन गिना जाता है.

१०० तैसेही पृथ्वी पर वसनेवाले मनुष्यों को आवश्यक—सदा तृष्णा रखने के योग्य—उत्तम वस्तु यशस्वी कीर्ति गिनी जाती है। वह कीर्ति सब मनुष्यों के प्राप्त करने के योग्य—उत्तम—अनुपम पदार्थ है, इस से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है.

सर्वोत्तम श्रेष्ठ कला १।

परन्तु हे वत्स! काल पाकर इन सब कलाओं का आवर्जन विसर्जन सदा होता रहता है। समय करके उन में न्यूनाधिकता होती है। जो कला आज उपयोगी है वह कल्ह के दिन कोडी की हो जाती है—उस को जानना और न जानना दोनों बराबर है। ये तो चंद्रमा की नांई वढती घटती हैं—कालानुक्रम से इनका आवर्जन विसर्जन हुआही करता है। परन्तु जिस कला में न्यूनाधिकता नहीं होती, जिस का आवर्जन विसर्जन नहीं होता, जो क्षय वृद्धि को प्राप्त नहीं होती; परन्तु सदा सर्वदा जैसी की तैसी स्थिरचिर रहती है, जिस कला में से सदा अमृत टपका करताहै,उस अमृत के प्रभाव से महादेव के मस्तक पर विराजमान हुए चन्द्रमा से झरते हुए अमृत के समागम से निर्जीव रुंडमालास्थित भी सजीवता को प्राप्त होते हैं तैसे ही एक सर्वोत्तम—सर्वेश्वर कला है और जो अवश्य तेरे जानने के योग्य है सो यह है. कि—

श्रीपरमात्मा में सदासर्वदा एकचित्त रहना।

जो कोई इस कला को जानता है उस को किसी बात की न्यूनता नहीं रहती और न तीनों लोक में उस का कोई पराभव कर सकता है।

हे चन्द्रगुप्त! ऊपर लिखे अनुसार शुभ और अशुभ फल देनेवाली अनेक कलाएं मैंने तुझ को कह बताई हैं। इन कलाओं में जो निपुणता प्राप्त करता है वह सब तत्त्वों का यथार्थ ज्ञान लब्ध कर, वर्णमात्र में जैसे ब्राह्मण, विद्या

के संबन्धसे श्रेष्ठ गिने जाते हैं तैसे ही कला–कुशल पुरुष भी माननीय, पूज्य और गुरु गिना जाता है । कलाप्रवीण मनुष्य व्यवहार में अपने द्रव्य का उपयोग सप्रयोजन—योग्यता से करता है परन्तु अयोग्य रीति से कदा नहीं करता ।

इस प्रकार मूलदेव ने चन्द्रगुप्त को १४ दिवस में ? रत्नों से भी अधिक मूल्यवाली चौदह कलाओं का अध्ययन कराया । तदनन्तर चन्द्रगुप्त विपुल धन अपने गुरु देव की भेंट कर तथा आज्ञा लेकर अपने पिता के पास विदा हुआ ॥

समाप्तश्चायं ग्रन्थः ।

पुस्तक मिलनेका पता–
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस–बम्बई.